मुद्रक—श्री० सत्यव्रत, अभ्युदय प्रेस, प्रयाग।
प्रकाशक—पं० रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी-मंदिर प्रयाग।

भूमिका

संस्कृत बहुत प्राचीन भाषा है। भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास इसी भाषा में है। प्राचीन ऋषियों और पण्डितों ने इस भाषा में ऐसे ऐसे ग्रंथ लिखे, जिनसे भूमण्डल पर भारतवर्ष का गौरव चिरस्थायी हो गया है। इस भाषा में शब्दों की संख्या बहुत ही अधिक है। प्रकृति, प्रत्यय और विभक्ति के संयोग से शब्दों की ऐसी रचना की जा सकती है जिनसे मनुष्य के हृदय के गूढ़ से गूढ़ भाव प्रकट हो सकते हैं। ऐसी शक्ति संसार की अन्य भाषाओं में बहुत ही कम है। संस्कृत भाषा के व्याकरण के समान पूर्ण व्याकरण तो संसार की किसी भाषा में नहीं। विद्वानों का कथन है कि संस्कृत ही समस्त आर्य-भाषाओं की जननी है। भारतवर्ष के लोग इस भाषा को देववाणी कहते हैं। कोई समय ऐसा था कि संस्कृत इस देश की साधारण बोलचाल की भाषा थी। पर अब यह मृतभाषा कही जाती है।

संस्कृत भाषा के ग्रंथ साधारणतः दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—एक धर्मग्रंथ, दूसरे साहित्य। धर्मग्रंथ अठारह भागों में विभक्त हैं, जिन्हें अठारह विद्या कहते हैं। उनके नाम यह हैं—चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग, चार उपाङ्ग। चारों वेदों के नाम हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। क्रमशः चारों उपवेदों के नाम हैं—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थशास्त्र। छः वेदाङ्गों के नाम शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द, तथा चार

उपाङ्गों के नाम पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र हैं। इनमें से एक एक विषय से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ग्रंथ हैं। धर्मग्रंथों में भी साहित्य विषयक बहुत सी बातें हैं और साहित्यग्रंथों में धर्म विषयक बातों की चर्चा है। फिर भी धर्म और साहित्य दो भिन्न भिन्न विषय माने गये हैं।

साहित्य-ग्रन्थों में मुख्य काव्यग्रंथ हैं जो दो भागों में बाँटे गये हैं, एक को श्रव्य और दूसरे को दृश्य कहते हैं। श्रव्य काव्य तीन प्रकार के होते हैं—एक पद्यमय, जैसे रघुवंश आदि; दूसरे गद्यमय, जैसे कादम्बरी आदि; और तीसरे गद्य-पद्य-मय, जिन्हें चम्पू कहते हैं, जैसे नल-चम्पू आदि। दृश्य काव्य नाटक कहलाते हैं। कविता-कौमुदी का विषय केवल साहित्यिक है। साहित्य में भी श्रव्य काव्यों की ही चर्चा इस में की गई है, और उन्हीं में से उदाहरण उद्धृत किये गये हैं।

सम्पादक महाशय ने इस पुस्तक के लिखने में बहुत परिश्रम किया है। कवियों के उत्तम उत्तम श्लोक चुनचुन कर उन्होंने संग्रह किये हैं, जिनसे सहृदय पाठकों को अपूर्व आनन्द प्राप्त होगा। कवियों के समय-निरूपण में बड़ा मत-भेद है। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक महाशय ने अपनी स्वतंत्र सम्मति प्रकट की है। खेद है, कि प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ ज्यों की त्यों रह गई हैं। जिनके लिये हम अपने पाठकों से क्षमा प्रार्थी हैं। अगले संस्करण में सब अशुद्धियाँ ठीक कर दी जायँगी।

कविता-कौमुदी के प्रेमी पाठक इस पुस्तक के लिये बहुत दिनों से लालायित हैं। हमारे पास सैकड़ों पत्र आये

हैं जिनमें देरी करने के लिये हमें उलहना दिया गया है। उनसे हमारा सविनय निवेदन है कि अनेक कार्यों में व्यग्र रहने के कारण हम साहित्य-सेवा में कुछ पिछड़ गये हैं अवश्य, पर हमारा उत्साह कम नहीं हुआ है। इसके बाद उर्दू या अङ्गरेज़ी की कविता-कौमुदी में से जो पहले तैयार होगी, पाठकों की सेवा में उपस्थित करने की हम तैयारी कर रहे हैं।

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।
रामनवमी, १६८९

प्रकाशक

हिन्दी-मन्दिर प्रयाग द्वारा प्रकाशित पुस्तकें



कविता-कौमुदी, पहला भाग-हिन्दी	३)
" " दूसरा भाग-हिन्दी	३)
" " तीसरा भाग-संस्कृत	३)
" " चौथा भाग-उर्दू (तैयार हो रहा है)	३)
स्त्रीकवि-कौमुदी—स्त्रीकवियों की जीवनी और कविताओं का संग्रह (तैयार हो रहा है)	३)
पथिक (खंडकाव्य)	॥)
" राजसंस्करण, सचित्र, सजिल्द	१)
मिलन (खंडकाव्य)	।)
कुल-लक्ष्मी—विवाह से पहले पढ़ने की पुस्तक, सजिल्द	१।)
दम्पति-सुहृद्—विवाह के बाद पढ़ने की पुस्तक "	१।)
सुभद्रा—उपन्यास	॥)
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	।=)
हिन्दी-पद्य-रचना (पिंगल)	।)
रहीम—सुप्रसिद्ध रहीम कवि की जीवनी और कविता	≡)
नीति-शिक्षावली—नीति के श्लोक अर्थसहित	=॥
आकाश की बातें—	≡)
बाल-कथा कहानी, पहला भाग	।)
" " दूसरा भाग	।-)

प्रेम ।/

रानी जयमती—उपन्यास, सजिल्द ॥≈

रीडरें—बालकों के लिये

पहली पुस्तक— =)

दूसरी पुस्तक— ≡)

तीसरी पुस्तक— ।-)

चौथी पुस्तक— ।)

कन्याओं के लिये—

कन्या-शिक्षावली प० भा० -)

" " दू० भा० =)

" " ती० भा० ≡)

" " चौ० भा० ।)

सम्मेलन-परीक्षा तथा हिन्दी के सब सुप्रसिद्ध प्रकाशकों की पुस्तकें मिलने का एकमात्र पता—

हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग।

सूची ।

कविता-कौमुदी

अकाल जलद

अकालजलद का असली नाम क्या था, इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, उनके साथ कर्ता का नाम "दाक्षिणात्य" लिखा है। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया था कि नहीं, अभी तक इसका भी पता नहीं लगा है।

ये महाकवि राजशेखर के पितामह थे। राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार लिखा है—

"स मूर्तो यत्रासीद् गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।

इस श्लोक में अकालजलद गुणी बतलाये गये हैं। ये दक्षिण देश के निवासी थे और यायावर कुल में उत्पन्न हुए थे। ये नवीं सदी में उत्पन्न हुए थे।

इनका अकालजलद नाम नहीं था, किन्तु एक श्लोक इन्होंने बनाया और उस श्लोक में अकालजलद शब्द का बड़े

कविता-कौमुदी

अकाल जलद

अकालजलद का असली नाम क्या था, इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, उनके साथ कर्ता का नाम "दाक्षिणात्य" लिखा है। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया था कि नहीं, अभी तक इसका भी पता नहीं लगा है।

ये महाकवि राजशेखर के पितामह थे। राजशेखर ने बालरामायण की प्रस्तावना में अपना परिचय इस प्रकार लिखा है—

> " स मूर्त्या यत्रासीद्गुणगण इवाकालजलदः
> सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा।
> न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
> महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।

इस श्लोक में अकालजलद गुणी बतलाये गये हैं। ये दक्षिण देश के निवासी थे और यायावर कुल में उत्पन्न हुए थे। ये नवीं सदी में उत्पन्न हुए थे।

इनका अकालजलद नाम नहीं था, किन्तु एक श्लोक इन्होंने बनाया और उस श्लोक में अकालजलद शब्द का बड़े

अच्छे ढंग से विन्यास किया । वह ढंग लोगों को बहुत पसन्द आया; तब से इनका नाम ही अकालजलद पड गया । इनका यह नाम इतना प्रसिद्ध हुआ कि उसने इ[illegible] असली नाम का लोप कर दिया । वह श्लोक नीचे लि[illegible] जाता है ।

" भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
पाठीनैः पृथुपंकपीठलुठितैर्यस्मिन् मुहुर्मूर्च्छितम्,
तस्मिन् शुष्कसरस्यकालजलदे नागत्य तच्चेष्टितम्,
येनाकण्ठनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते ।

यहाँ अकाल जलद के कुछ मनोहर श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

मुग्धे मुञ्च विषादमत्र बलभित्कम्पो गुरुस्त्यज्यतां
सद्भावं किल पुण्डरीकनयने मान्यानिमान्मानय ।
लक्ष्मीं बोधयतः स्वयंवरविधौ धन्वन्तरेर्वाग्छला-
दन्यत्र प्रतिषेधमात्मनि विधिं शृण्वन्हरिः पातु वः ॥ १ ॥

मुग्धे ! विषाद छोड़ो, बल तोड़नेवाले इस कंप का त्याग करो, पुण्डरीकनयने ! उत्तम सद्भाव करो; इन माननीयों का आदर करो, स्वयम्वर के समय धन्वन्तरि ने इस प्रकार वाक्छल से लक्ष्मी को समझाया जो दूसरों के लिए प्रतिषेध हुआ उसको अपने लिए विधि सुनते हुए विष्णु तुम्हारी रक्षा करें ।

मधुरमालमनीव साधु सुविधं [illegible] धरायामिदं
कोऽन्यः कम् [illegible] मरेव यत्ने कर्तुं दुष्करम् ।
[illegible] यानि [illegible] समाप्तानि
[illegible] दृष्टः ॥ ६ ॥

उदाशी मेघराज! तुम धन्य हो, पृथिवी के बुद्धिमान् तुम्हारा ध्यान करेंगे। दूसरा कौन ऐसा कर सकता है! यह कठिन काम तुम्हें ही शोभता है दूसरा कौन ऐसा कर सकता है सबको लाभ पहुँचानेवाले खेतों पर तो तुमने पत्थर बरसाये और किसी को लाभ न पहुँचानेवाले चान्द के बन में तुमने पानी बरसाया।

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः
  पाठीनैः पृथुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहुर्मूर्च्छितम्॥
तस्मिञ्शुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितं
  येनाकुम्भनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते॥ ३॥

कोटर में रहने वाले मेंढक मरने के समान हो गये, कछुए पृथ्वी के भीतर घुस गये, मछलियाँ कीचड़ में लोट लोट कर जिस तालाब में मूर्च्छित हो गयी थीं, उस सूखे तालाब में आकर अकालजलद ने वह काम किया, जिससे हाथियों का यूथ गला डुबा डुबा कर पानी पी रहा है।

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशान् विशन्तु प्रभो
  धातस्त्वां शिरसा प्रणम्य कुरु मामित्यद्य याचे पुनः॥
तद्वापीषु पयस्तदीयमुकुरे ज्योतिस्तदीयालय
  व्योम्नि व्योम तदीय वर्त्मनि धरा तत्तालवृन्तेऽनिलम्॥ ४॥

शरीर नष्ट हो जाय, पञ्चभूत पञ्चभूतों में मिल जाँय, पर विधाता! प्रणाम करके मैं आपसे यह माँगता हूँ कि आप मुझे उसके तालाब का जल, उसके दर्पण का प्रकाश, उसके घर के आकाश का आकाश, उसके मार्ग की भूमि और उसके पंखे की हवा बनावें।

अप्पय दीक्षित

अप्पय दीक्षित दक्षिण के निवासी थे और शैव थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं। वेदान्त, अलङ्कार आदि विषयों के इनके ग्रन्थों में से कतिपय ग्रन्थ पाये गये हैं। इनके भाई का नाम नीलकण्ठ दीक्षित था। इन्हीं नीलकण्ठ दीक्षित के पौत्र नारायण दीक्षित ने नीलकण्ठचम्पू नामक ग्रन्थ बनाया है। उन्हों चम्पू के बनाये जाने का समय १६३७ बतलाया है। इस अनुमानतः अप्पयदीक्षित का समय सोलहवीं सदी का अन्तिम भाग निश्चित किया जाना चाहिए।

अप्पय दीक्षित के ग्रन्थ

१ आत्मार्पण स्तुति
२ उपक्रम पराक्रम
३ कुवलयानन्द
४ चतुर्मतसार संग्रह
५ चन्द्रकलास्तुतिः
६ चित्रमीमांसा
७ दशकुमारचरितसंक्षेप,
८ नामसंग्रहमाला
९ ब्रह्मतर्कस्तव,
१० भक्तिशतक
११ भारततात्पर्यसंग्रह
१२ मध्वमतविध्वंस
१३ रत्नत्रयपरीक्षा
१४ रसिकरञ्जनी
१५ रामायणसारस्तव
१६ वरदराजशतक
१७ वादनक्षत्रमालिका
१८ विधिरसायन सुखोपजीवी
१९ वीरशैव
२० वृत्ति वार्तिक
२१ वैराग्यशतक
२२ शब्दप्रकाश
२३ शारीरिकन्यायरक्षामणि
२४ शिवकर्णामृत

२५ शिवतत्वविवेक	२८ शिवार्चनचन्द्रिका
२६ शिवादित्यमणिदीपिका	२९ सिद्धान्तलेशसंग्रह
२७ शिवाद्वैतनिर्णय	३० हरिवंशसारचरितम्

यहाँ इनके कुछ मनोहर श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:—

के चोराः के पिशुनाः के रिपवः केऽपि दायादाः
जगदखिलं तस्य वशे यस्य वशे स्यादिदं चेतः ॥ १ ॥

चोर कौन है, चुगलखोर कौन है, शत्रु कौन है, और भाई बन्धु कौन हैं? यह समस्त संसार उसके वश में है, जिसने अपने चित्त को अपने वश में कर लिया है।

पुष्यति पुरुषे सलिलैर्मुष्णाति पुष्पं फलं च तरुरिव
वर्तन्ते सन्तः सममुपकर्तरि चापकर्तरि च ॥ २ ॥

जिस प्रकार वृक्ष जल से सींचने वाले अथवा फल फूल तोड़ने वाले दोनों के साथ समान व्यवहार करता है उसी प्रकार अपकार करने वाले या उपकार करने वाले दोनों के साथ सज्जनों का समान व्यवहार होता है।

पितृभिः कलहायन्ते पुत्रानध्यापयन्ति पितृभक्तिम्
परदारानुपयन्तः पठन्ति शास्त्राणि दारेषु ॥ ३ ॥

पिता के साथ तो कलह किया जाता है, और पुत्रों को पितृभक्ति पढ़ाई जाती है। स्वयं परस्त्री का उपभोग करते हैं, और स्त्री को शास्त्रोपदेश सुनाते हैं।

नीतिज्ञा नियतिज्ञा वेदज्ञा अपि भवन्ति शास्त्रज्ञाः
ब्रह्मज्ञा अपि लभ्या स्वाज्ञानज्ञानिनो विरला ॥ ४ ॥

नीति जानने वाले हैं: भाग्य जानने वाले, वेद जानने वाले और शास्त्र जानने वाले भी हैं ब्रह्म को भी जानने वाले मिल सकते हैं: पर अपने अज्ञान को जानने वाले बहुत कम हैं।

अश्नीत पिवत खादत जाग्रत संविशत तिष्ठत वा
सकृदपि चिन्तयतान्हः सावधिको देहबन्ध इति ॥ ५ ॥

खाओ, पीओ, जागो, बैठो, ठहरो: पर दिन में एक बार
यह बात सोच लो कि इस शरीर का नाश निश्चय है।

भोगाय पामराणां योगाय विवेकिनां शरीरमिदम्
भोगाय च योगाय च न कल्पते दुर्विदग्धानाम् ॥ ६ ॥

मूर्खों के लिए यह शरीर भोग साधन है और विवेकियों के लिए योग का साधन है। पर दुर्विदग्धों के लिए न तो यह भोग का साधन है और न योग का।

अयुतं नियुतं वापि प्रदिशन्तु प्राकृताय भोगाय।
क्रीणन्ति न बिल्वदलैः कैवल्यं पञ्चषैर्मूढाः ॥७॥

संसार के भोग के लिए तो मूढ़जन हज़ारों लाखों खर्च किया करते हैं। पर पाँच छः बिल्वपत्र से मुक्ति
नहीं खरीदी जाती।

अङ्गाः कथमङ्गा कथमित्यनुयुङ्क्ते वृथा देशान्।
कीदृक् कृतान्तपुरमिति कोऽपि न जिज्ञासते लोकः ॥८॥

वङ्गदेश कैसा है? अङ्गदेश? कैसा है? इस प्रकार
देशों के संबंध में प्रश्न किया जाता है। पर यमराज की पु
कैसी है? इस विषय में कोई भी मनुष्य कुछ प्रश्न नहीं करता

त्यक्तव्यो ममकारस्त्यक्तुं यदि शक्यते नासौ
कर्तव्यो ममकारः किन्तु स सर्वत्र कर्तव्यः ॥ ९ ॥

ममभाव (यह मेरा है, ऐसा भाव) का त्याग कर देना
चाहिए। यदि उसका त्याग करना कठिन हो तो ममकार
करना चाहिए और यह सर्वत्र करना चाहिए। समस्त
संसार को अपना समझना चाहिए।

पुत्रा इति दारा इति पोष्यान् मूर्खो जनान्न स्ते
अन्धे तमसि निमग्नमात्मा पोष्य इति नावैति ॥ १० ॥

मूर्ख मनुष्य पुत्रों और स्त्रियों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं, पर अज्ञान में डूबती अपनी आत्मा की रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं समझते।

अमरुक

अमरशतक नाम से एक पुस्तक इनकी प्रसिद्ध है। उसमें इनके बनाये स्फुट श्लोकों का संग्रह है। ये सब श्लोक शृङ्गार के हैं। इनकी कविता बड़ी ही उत्तम होती थी। ये जाति के सोनार थे। इनके विषय में लिखा है "विश्वप्रख्यात-नाडीन्धमकुलतिलको विश्वकर्माद्वितीयः"। इनके विषय में एक किम्वदन्ती प्रचलित है। कहते हैं, शङ्कराचार्य से शास्त्रार्थ करने के लिए जब मण्डन मिश्र की स्त्री तैयार हुईं और उन्होंने कामशास्त्र के प्रश्न किये तब शङ्कराचार्य ने कुछ समय माँगा। ये सन्यासी थे। उन्हें कामशास्त्र की बातें मालूम न थीं, अतएव उन्होंने नेपाल के राजा (जिनका उसी समय देहान्त हुआ था) के शरीर में प्रवेश किया और कामशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया। इस किंवदन्ती में कितनी प्रामाणिकता है, इसका निश्चय पाठक करेंगे।

ये कवि नवमशतक के हैं। आनन्दवर्द्धन ने अपने ध्वन्यालोक में इनके श्लोक उद्धृत किये हैं। इससे ये नवमशतक में प्रसिद्ध थे यह बात साबित होती है। ऐसी दशा में शङ्कराचार्य के ये समकालीन नहीं हो सकते।

हूँ; थोड़े ही दिनों में मेरा आना होगा यह जानकर तुम शोक मत करना । प्रिय की यह बात सुनकर मुग्धा ने यह किया जिससे दूसरों के सभी कष्ट अकस्मात् शान्त हो गये। अर्थात् वह मर गयी और दूसरे पथिकों का जाना बन्द हो गया ।

> लोलाक्ष्या गुरुसन्निधौ मम कृतं गोदवमस्यादृशं
>   संलापावसरा न यान्ति करुणाः कर्तुं नया पारिताः ।
> प्रस्थानाभिमुखस्य संततगलद्वाष्पौघया मुग्धया
>   दीर्घोष्णश्वसितैरसह्य मदनव्याधिः समावेदितः ॥ ३ ॥

नायक घर से चलने के समय की बातें कहता है—जब मैं चलने को तैयार हुआ, तब चञ्चलाक्षी ने मुँह भारी नहीं किया। क्योंकि वहाँ माता पिता आदि थे। इसीसे वह अति दीन बातें भी न कर सकी । केवल आँसुओं की धारा बहाती रही और लम्बे और गर्म श्वासों से मदन-व्याधि की असहनीयता उसने बतलायी ।

> आदृष्टि प्रसरात्प्रियस्य पदवीमुद्वीक्ष्य निर्विण्णया
>   विच्छिन्नेषु पथिष्वहःपरिणतौ ध्वान्ते समुत्सर्पति ।
> दत्त्वैकं सशुचा गृहं प्रतिपदं पान्थस्त्रियास्मिन्क्षणे
>   माभूदागत इत्यमन्दवलितग्रीवं पुनर्वीक्षितम् ॥ ४ ॥

जहाँ तक दिखायी पड़ता था वहाँ तक उसने पति के मार्ग को देखा । तदनन्तर वह दुःखी हुई, दिन ढल गया, अन्धकार फैलने लगा, इससे रास्ता साफ़ साफ़ दिखायी न पड़ा। पुनः दुःख से पथिक की स्त्री ने घर पग दिया। उसी समय
१ उसे सन्देह हुआ कि कहीं आये तो नहीं, इससे पुनः वह फिर
२ कर देखने लगी ।

धवलनयने शून्या दृष्टिः कृता खलु केन ते
क इह सुकृती द्रष्टव्यानामुपाहं पुरः पराम् ।
यमभिलिखितप्रख्यैरङ्गैर्न मुञ्चसि चेतसा
वदनकमलं पाणौ कृत्वा निमीलितलोचना ॥ ५ ॥

हे सुन्दरनेत्रे, किसने तुम्हारी आँखों को शून्य बनाया? कौन पुण्यात्मा द्रष्टव्य वस्तुओं की सीमा बना हुआ है? अर्थात् वह सुन्दर पुरुष कौन है जिसका ध्यान तुम कर रही हो। चित्रलिखित के समान होकर जिसे तुम हृदय से नहीं छोड़ती और हाथों पर मुखकमल रखकर तथा आँखें बन्द कर जिसकी तुम पूजा कर रही हो।

अन्योन्यग्रथिताङ्गुलिनम्रपाणिद्वयोपरि,
न्यस्योद्दामविकम्पिताधरदलं निःश्वासशून्यं मुखम् ।
आमीलायतलोचनान्तगलितैः शोकाश्रुभिः किं त्वया
कस्येदं सुहृदः प्रतिदिनं दीनतया स्मर्यते ॥ ६ ॥

किसी विरहिणी से कोई पूछता है — दोनों हाथों की अँगुलियों को मिलाने से नमित हुए हाथों पर तुमने अपना मुख रखा है, जल्दी जल्दी साँस के चलने से अधर काँप रहा है, दुःख से मुँह फिट्ट हो गया है, बन्द आँखों के कोनों से अश्रुधारा बह रही है। इस प्रकार तुम किस अच्छे या बुरे मनुष्य की मित्रता का प्रतिदिन दीनता पूर्वक स्मरण कि करती हो?

निःश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तंदिवं रुद्यते ।
अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः
सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः ॥ ७ ॥

[illegible] मुँह [illegible] रहते हैं, [illegible] हृदय [illegible] रहा है, नींद नहीं आती और प्रिय का मुख भी दिखाई नहीं पड़ता, [illegible] रहते हैं, [illegible] पद पर पड़े हुए प्रिय [illegible] सखियो। [illegible] गुण के [illegible] प्रिय पर मान [illegible]।

[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible] ॥ ४ ॥

हृदय [illegible] है, [illegible] उद्विग्नता से मन [illegible] हो रहा है, [illegible] हो रहे हैं, आँखों से आँसू [illegible] है, [illegible] मान के [illegible] यह दशा है [illegible] किया। [illegible] समझती हैं।

[illegible]
[illegible]।
[illegible]
[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] और [illegible] मान [illegible] और [illegible] यदि [illegible] हुई [illegible]।

[illegible]
[illegible]।

मानो रोगि जनो न [illegible]मानः स्वयं
कान्तो यानि [illegible] [illegible]मिति दुर्गं मनश्चिन्तया ॥१०

मैं मानरूपी रोग से दुःखी हूँ, मैं स्वयं उनके पास
समय नहीं जा सकती और कोई चतुर सखी भी नहीं है
जबरदस्ती मुझे ले जाय। वे भी मानी हैं, अपनी लघुता के
से नहीं आते। समय बीत रहा है, जीवन चञ्चल है, इन विचारों
से मेरा मन चंचल हो रहा है।

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते
मानं धत्स्व धृतिं विधान ऋजुतां दूरीकुरु प्रेयसि।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचस्तामाह भीतानना
नीचैः शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति ॥११॥

वाले। क्या बालपन से ही समस्तकाल बिताना चाह
हो। मान करना सीखो, धैर्य धारण करो, प्रिय के प्रति सिधा
अच्छी नहीं। सखी ने जब इस प्रकार समझाया, तब डरती
डरती वह बोली, धीरे धीरे बोलो, नहीं तो हृदय में रहने वाले
प्राणेश्वर तुम्हारी ये बातें सुन लेंगे।

चपलहृदये किं स्वातन्त्र्यात्तथा गृहमागत-
श्चरणपतितः प्रेमार्द्रार्द्रः प्रियः समुपेक्षितः।
तदिदमधुना यावज्जीवं निरस्तसुखोदया
रुदितशरणा दुर्जातानां सहस्व रुषां फलम् ॥१२॥

चञ्चल हृदयवाली। प्रिय घर में आया था, वह तुम
चरणों पर पड़ता था, पर उस प्रेमी प्रिय की तुमने उपे
की, अब तुम्हारे जीवन के सब सुख दूर हुए, अब रो
करो और अपने क्रोधों का फल भोगो।

पत्रं न श्रवणेऽस्ति बाष्पगुरुणोर्नो नेत्रयोः कज्जलं
रागोपूर्वं इवाधरे चरणयो रलक्ता न चालक्तकः।
वार्त्ताम्भित्तिषु निष्ठुरेति भवता मिथ्यैव संभाव्यते
सालेखं लिखतु च्युतोऽपकरया न्यायेन केनाधुना ॥१३॥

कानों में गहने नहीं हैं, आँसुभरे आँखों में काजल नहीं
पहले के समान ओंठ पर लाली भी नहीं है, पैरों पर महा-
भी नहीं है, सिर्फ़ बातें न करने के कारण तुम्हारा
को निष्ठुर समझना झूठा मालूम होता है। वह जब पत्र
वने लगती है, तो हाथ से कलम कागज छूट जाते हैं, अब
किस प्रकार लिखे ?

म्लाने नयने विपाण्डुरधरः क्षामं कपोलद्वयं
त्रस्ते बाहुलते शिरोरुहचयो व्यस्तश्चिरेतिःस्वनः।
नैवं मद्गमवार्त्तयापि हि दशामन्त्यां समारोहिता
याते मा मयि जीवतीति वचनं भ्रान्तं संभाव्यते ॥१४॥

आँखें मलिन हो गयी हैं। ओंठ पीला पड़ गया है।
नों गाल दुर्बल हो गये हैं। बाँह कंधे से उतरी हुई मा-
लूम होती है। सिर के बाल उलझे हुए हैं। मेरे जाने की
न सुनकर ही जिसकी ऐसी दशा हो जाती है, जो मरने
ती है, वह मेरे चले आने पर जीती है, भाई! यह बात सम-
झ में नहीं पड़ती।

याताः किं न मिलन्ति सुन्दरि पुनश्चिन्ता त्वया मत्कृते
नो कार्या नितरां कृशासि कथयत्येवं सबाष्पे मयि।
लज्जामन्थरतारकेण निपतत्पीताश्रुणा चक्षुषा
दृष्ट्वा मां हसितेन भाविमरणोत्साहस्तया सूचितः ॥१५॥

गये हुए पुनः मिलते हैं इसलिए हे सुन्दरी! तु
चिन्ता मत करना। क्योंकि तुम बहुत दुर्बल हो
आँसू भर कर जब मैंने यह कहा, तब लज्जा से उस
स्थिर हो गई, गिरते आँसू को उसने पी लिया
ओर देखकर हँसती हुई भावी मृत्यु के लिए अपना
बतलाया।

अच्छिन्नं नयनाम्बु बन्धुषु कृतं तापः सखीष्वाहितो
न्यस्तं दैन्यमशेषतः परिजने चिन्ता गुरुभ्योऽर्पिता।
अद्यश्वः किल निर्वृतिं व्रजति सा श्वासैः परं खिद्यते
विस्रब्धो भव विप्रयोगजनितं दुःखं विभक्तं तया ॥ १६ ॥

सदा बहनेवाली अश्रुधारा बन्धुओं को दे दी, त
सखियों में रख दिया, अपनी समूची दीनता साथ रहनेवाल
को दी, माता पिता आदि को उसने चिन्ता अर्पित की
आजकल वह बहुत सुखी है, केवल प्राण कष्ट दे रहे हैं,
आप निश्चिन्त रहें। वियोग व्यथा को उसने इस प्रकार बाँट
दिया है।

भ्रमद्भ्रो नार्य न च खलु गुणैरेष रहितः
प्रिये मुक्ताहारस्तव चरणमूले निपतितः।
गृहाणैनं मुग्धे यदनु निजकण्ठस्थपतिना-
मुपायो नान्यस्त्वत्स्वहृदयसंतापशमने ॥ १७ ॥

यह बुरा नहीं है और गुणहीन भी नहीं है, यह प्रिय
मुक्ताहार तुम्हारे चरणों पर पड़ा है। इसको उठा लो और
गले में धारण करो। तुम्हारे हृदय के सन्ताप को दूर करने के
लिए दूसरा उपाय नहीं है। दूती प्रिय के सामने नायिका को
अनुरक्ता से समभाती है।

इससे प्रसन्न हो जाओ, अपना काम है, नहीं तो पछताना पड़ेगा।

क प्रस्थितासि करभोरु घने निशीथे प्राणाधिको वसति यत्र निजः प्रियो मे।
एकाकिनी वद कथं न बिभेषि बाले शूरोस्ति पुङ्खितशरो मदनःसहायः ॥१८॥

हे करभोरु! इस अँधेरी रात में कहाँ के लिए तुमने प्रस्थान किया है? जहाँ प्राणाधिक प्रिय रहते हैं। बाले तुम अकेली हो, डर नहीं लगता? वीर कामदेव धनुर्बाण लेकर साथ है।

अमितगति

ये एक जैन ग्रन्थकार हैं। ये धारा नगरी के प्रसिद्ध राजा भोजदेव के चाचा मुंजदेव की सभा में थे। इन्होंने धर्म-परीक्षा, सुभाषितरत्नसन्दोह, श्रावकाचार आदि ग्रन्थ लिखे हैं। इन्होंने सुभाषितरत्नसन्दोह के अन्त में उसकी समाप्ति का समय इस प्रकार लिखा है:—

समारूढ़ेतस्मिँस्त्रिदशवसतिं विक्रमनृपे
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पंचाशदधिके
समाप्तं पञ्चम्यां भवति धरणिं मुंजनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्।

विक्रम के स्वर्गारोहण के एक हज़ार पचास वर्ष बीतने पर, मुंजराज के राज्य के समय पौष शुक्ल पञ्चमी के दिन निर्मल और विद्वानों का हितकारक यह शास्त्र समाप्त हुआ। अर्थात्

विक्रमी १०५० संवत् में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ, जिसका ई
सन् ९९३ होता है।

यहाँ इनके कुछ उत्तम श्लोक दिये जाते हैं।

कोपोस्ति यस्य मनुजस्य निमित्तमुक्तो,
नो तस्य कोऽपि कुरुते गुणिनोऽपि भक्तिं।
आशीविषं भजति को ननु दंदशूकं,
नानोग्ररोगशमिना मणिनापि युक्तं ॥ १ ॥

जो मनुष्य बात बात में क्रोध करता है, अपनी और दूस
की आत्मा को दुःख पहुँचाता है, वह मनुष्य चाहे गुणी—अनेक
गुणों का भण्डार भी क्यों न हो; कोई उसकी भक्ति—सेवा
शुश्रूषा, नहीं करता, क्योंकि उससे अशांति का भय रहता
है। देखो, नाना प्रकार के रोगों को शांत करने वाली मणि
से युक्त भी दंदशूक जाति के सर्प को कोई नहीं पालता या
पकड़ता, क्योंकि वह हानि पहुँचाता है, विष से संयुक्त होता
है और पकड़ने पर मनुष्य को काट लेता है।

पुण्यं चितं व्रततपोनियमोपवासैः
क्रोधः क्षणेन दहतींधनवद्धुताशः।
मत्वेति तस्य वशमेति न यो महात्मा
तस्याभिवृद्धिमुपयाति नरस्य पुण्यं ॥ २ ॥

जो महात्मा पुरुष यह सोचकर कि, "जिस प्रका
अग्नि इंधन के समूह को क्षण भर में जलाकर भस्म कर देत
है, उसी प्रकार यह क्रोध भी व्रत, तप, यम, नियम और उप
वासों द्वारा उत्पन्न हुए पुण्य को बात की बात में नष्ट कर देता
है, उसके वश नहीं होता – क्रोध नहीं करता – वह (महात्मा)
अपने पुण्य की वृद्धि करता है, उसका पुण्य बढ़ता है।

दोषं न तं नृपतयो रिपवोऽपि रुष्टाः कुर्वन्ति केसरिकरीन्द्रमहोरगा वा।
धर्मं निहत्य भवकाननदाववह्निं यं दोषमत्र विदधाति नरस्य रोषः ॥ ३ ॥

इस संसार में इस जीव का जितना अहित (हानि) क्रोध करता है, उतना न तो कुपित हुए राजा और न शत्रु ही कर सकते हैं, न सिंह, हाथी और सांप ही कर सकते हैं, क्योंकि ये तो अधिक से अधिक यदि हानि कर सकते हैं तो एक भव जन्म में केवल प्राणों ही का घात कर सकते हैं और यह क्रोध तो संसार रूपी वन को जलाने वाले धर्म का नाश कर जन्म जन्म में नाना दुःख देता है।

यः कारणेन कुपितोऽपि नरो मनुष्यः
सोऽपि प्रयाति शमनं तदभावतश्च
यस्तत्र कुप्यति विनापि निमित्तमंगी
नो तस्य कोऽपि शमनं विदधातुमीशः ॥ ४ ॥

जो मनुष्य ऐसे तो सर्वदा शांत रहता है, परंतु किसी कारणवश क्रुद्ध हो जाता है, तो उसका यह क्रोध उस कारण के नष्ट हो जाने से नष्ट हो जाता है परंतु जो मनुष्य बिना कारण ही कुपित होता रहता है, उसके क्रोध को कौन शांत कर सकता है ?

आयासशोकभयदुःखमुपैति मानी
मानेन सर्वजननिन्दितवेषरूपः
विद्यादयादमयमादिगुणौघ हंति
ज्ञात्वेति गर्वपथमेति न शुद्धबुद्धिः ॥ ५ ॥

मनुष्य मान के कारण मानसिक पीड़ा, कोप, भय, और दुःख को प्राप्त होता है, निंदित रूप और वेष को धारण करता है, एवं विद्या, दया, यम आदि समस्त गुणों से हाथ धो बैठता

है। इस लिए जो श्रेष्ठ बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे कर्मो
करते। वे सदा अपने को अगुणी ही समझा करते

लोकार्चितोऽपि कुलजोऽपि बहुश्रुतोऽपि,
धर्मस्थितोऽपि विरतोऽपि शमान्वितोऽपि ।
अक्षार्थपन्नगविषाकुलितो मनुष्य-
स्तन्नास्ति कर्म कुरुते न यदत्र निंद्यम् ॥ ६ ॥

इन्द्रियविषय रूपी सर्प के विष से पीड़ित लोग नी
नीच काम भी कर डालते हैं. और यहाँ तक कि अपने लौ
सम्मान, कुलीनता, पाण्डित्य, धर्मात्मापन, विरागिता, श
आदि समस्त गुणों को बिल्कुल भूल जाते हैं, अर्थात् लौकि
सम्मानादि गुणों से विशिष्ट पुरुष भी विषयों में फंस निंद
निंद्य काम करने में नहीं चूकते ।

लोकार्चितं गुरुजनं पितरं सवित्रीं,
बन्धुं सनाभिमबलां सुहृदं स्वसारं ।
भृत्यं प्रभुं तनयमन्य जनञ्च मर्त्यो,
नो मन्यते विषयवैरिवशः कदाचित् ॥ ७ ॥

इन्द्रिय विषय भोग रूपी वैरी के वश में पहुँच कर
मनुष्य अपने हितू और प्यारे लोग जो गुरु, माता, पित
भाई, बहिन, स्त्री, पुत्र, मित्र, स्वामी, सेवक आदि हैं उन्हे भ
भूल जाते हैं और इनकी कुछ भी चिंता नहीं करते ।

येनेंद्रियाणि विजितान्यतिदुर्धराणि,
तस्याविभूतिरिह नास्ति कुतोपि लोके ।
श्लाघ्यं च जीवितमनर्घविमुक्तमुक्तं,
पुंसां विविक्तमतिपूजिततत्त्वबोधैः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्य ने इन दुर्जेय इन्द्रियों का जय कर लिया है, इनके वश में न होकर इनपर ही अपना अधिकार जमा लिया है, उस मनुष्य के समान इस संसार में किसी की भी विभूति नहीं है और न किसी का जीवन ही प्रशंसनीय है। भावार्थ – हरएक मनुष्य को इन्द्रियों का जय करना ही योग्य है और उसी से अपने जीवन को कृतार्थ मानना चाहिये।

जनयति वचोऽव्यक्तं वक्त्रं तनोति मलाविलं
स्खलयति गतिं हन्ति स्थाम लघीकुरुते तनुम् ।
दहति शिथिलत्सर्वांगानां च यौवनकाननं ।
गमयति वपुर्मर्त्यानां या करोति जरा न किम् ॥ ९ ॥

बुढ़ापे के आने से मनुष्य के वचन अव्यक्त हो जाते हैं, जीभ लड़खड़ाने लगती है, मुँह सर्वदा मल से भरा रहता है (लार, कफ आदि बहने लगते हैं) गति स्खलित हो जाती है चलने पर पैर कहीं रखने पर कहीं पड़ जाते हैं, सामर्थ्य नष्ट हो जाता है, शरीर शिथिल होने लगता है, अग्नि से जलाए गए वन के समान यौवन खाक में मिल जाता है और कहाँ तक कहें जिस का पहले कभी अनुमान भी नहीं कर सकते, वह अवस्था बुढ़ापे से इस शरीर की हो जाती है।

प्रबलपवनपातध्वस्तप्रदीपशिखोपमै-
रलिमलनिभैः कामोद्भूतैः सुखैर्विषसन्निभैः ।
समपरिचितैर्दुःखप्रान्तैः सतामतिनिंदितै-
रितिकृतमनाः शंके वृद्धः प्रकम्पयते करौ ॥ १० ॥

हमारा अनुमान है कि बुढ़ापे के कारण जो मनुष्य हाथ कँपाते हैं वे सर्वदा अपने अंतरंग के इस प्रकार के भाव प्रकट करते रहते हैं। वे कहते हैं – भाइयो! हमने जो यौवनावस्था में

कामजन्य सुख भोगे थे, वे अब विषतुल्य हानिकारक सिद्ध हुए। आँधी के वेग से बुझाई गई दीपक की लौ के समान क्षण विनाशी और महादुःख के स्थान निकले। सज्जन लोग पहले से इनकी निंदा करते हैं, सो बिलकुल ठीक है, उस तनिक भी झूट नहीं। इसलिए इनका भोगना सर्वथा अनुचित ही है।

चलयति तनुं दृष्टेर्भ्रान्तिं करोति शरीरिणां
रचयति बलादव्यक्तोक्तिं तनोति गतिक्षतिं।
जनयति जनैर्नाना निंदामनर्थपरंपरां
हरति सुरभिं गन्धं देहाज्जरा मदिरा यथा॥ ११॥

जिस प्रकार मदिरा पीने से शरीर को चल विचल देती है, आँखों को घुमा देती है, अस्फुट वचन कहलवाती चलने में बाधा डालती है, लोगों में निन्दा का पात्र बना देती है, और देह की सुगंधि हर उसे दुर्गंधित कर देती है उसी प्रकार जरा (वृद्धावस्था) भी शरीर को कँपा देती है, आँखों की ज्योति कम कर देने से दृष्टि में भ्रांति कर देती है, टूटे फूटे कुछ के कुछ शब्द बुलवाती है, पूर्व की भांति ठीक ठीक नहीं चलने देती, लोगों में नाना प्रकार की निंदाएं करवाती है और शरीर को दुर्गन्धमय कर देती है।

भवति मरणं प्रत्यासन्नं, विनश्यति यौवनं,
प्रभवति जरा सर्वाङ्गीना विनाशविधायिनी।
विरमत बुधाः कामार्थेभ्यो वृथे कुरुतादरं
वदितुमिति वा कर्णोपान्तस्थितं पलितं जने॥ १२॥

वृद्धावस्था आने के समय जो कुछ केश श्वेत हो जा ये लोगों के कान के पास आकर अपने आगमन से इस

सुचना देते हैं कि हे विद्वानो, हिताहितविवेकियो ! रा मरण अब समीप है,। शीघ्र ही मरण आने वाला है, । की अवधि पूरी हो चुकी, यह सीखाव नए होने के ही । हैं । देखो ! यह तुम्हारे पीछे, पीछे बुढ़ापा आ रहा है, से कि तुम्हारे ये अंग जो कि इस समय काम करने में हैं, शक्तिहीन हो जायँगे । इसलिए काम, अर्थ को छोड़ो; जो अब तक भोग चुके सो भोग चुके, अब धर्म र ध्यान दो। अंत के दिनों में भी कुछ अपना हित ो।

तृष्णां चित्ते शमयति मदं ज्ञानमाविष्करोति,
नीतिं सूते हरति विपदं संपदं संचिनोति ।
पुंसां लोकद्वितयशुभदा संगतिः सज्जनानाम्,
किंवा कुर्यान्न फलममलं दुःखनिर्नाशदक्षा ॥ १३ ॥

ज्जनों की संगति करने से चित्त की तृष्णा(डाह) बुझ है, मद नष्ट हो जाता है, ज्ञान की वृद्धि होती है, नीति का आचरण करना आने लगता है, विपत्ति दूर भाग है, सम्पत्ति एकत्र होकर आश्रय करने लगती है, और लोक में शुभ फल प्राप्त होता है। इसलिए बहुत कहने । ! समस्त दुःखों के नाश करने में समर्थ सज्जनों की से क्या क्या उत्तम फल नहीं प्राप्त होते ?

चित्ताह्लादि व्यसनविमुखं शोकतापापनोदि,
प्रज्ञोत्पादि श्रवणसुखदं न्यायमार्गानुयायि । ✓
तथ्यं पथ्यं व्यपगतमदं सार्थकं मुक्तवादं,
यो निर्दोषं रचयति वचस्तं बुधाः सन्त साधुः ॥ १४ ॥

जो पुरुष मित्र को प्रसन्न करने वाले, स्वजनों के हि
शोक सन्ताप के नाशक, बुद्धि के बढ़ाने वाले, सुनने में हि
न्यायमार्ग के अनुसरण करने वाले, सच्चे, हितकार
अर्थवाले, पापरहित, निर्मद और निर्वैर वचन बोलनेवा
होते हैं, उन्हें विद्वान लोग सज्जन कहते हैं। भावार्थ–जो
मनुष्य सज्जन बनना चाहें उन्हें चाहिए कि वे उपर्युक्त गुण
वाले वचन बोलें।

अश्वघोष

महाकवि अश्वघोष कब उत्पन्न हुए थे? इसके निश्चय करने
का कोई उपाय नहीं है। यह बौद्ध थे: क्योंकि भदन्त अश्वघोष
के नाम से इनका परिचय पाया जाता है। भदन्त बौद्ध
सन्यासियों को कहते थे। अन्यान्य ग्रन्थों के देखने से पता
मिलता है कि बुद्धचरित के अतिरिक्त और भी ग्रन्थ इनके
बनाये हैं। कुछ लोगों का कहना है कि यह बौद्ध नहीं थे और
इनके नाम के साथ भदन्त शब्द भ्रम से जोड़ा गया है
उस भ्रम का कारण केवल यही है कि इन्होंने बुद्धचरि
नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, पर यही किसीके बौद्ध
अबौद्ध होने का प्रमाण नहीं है: क्योंकि महाकवि व्यासदास
क्षेमेन्द्र ने भी तो "बोधिसत्वावदान कल्पलता" नाम की पुस्तक
बनायी है जो कि बौद्ध धर्म से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तक
। पर वे बौद्ध नहीं थे। बुद्धचरित की समाप्ति और
रम्भ की शैली देखने से भी इनके बौद्ध होने का पूरा
ाण नहीं मिलता।

बुद्धचरित का वर्णन रामायण और रघुवंश से समानता रखता है। आदिकवि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास ने जिस तरह प्रसाद गुण का आदर किया है और उसमें अपना अनुराग प्रकट किया है, उसी तरह इस महाकवि ने भी। कालिदास के पीछे होनेवाले कवियों के ग्रन्थों में जिस रीति की प्रधानता देखी जाती है, उसका परिचय इस महाकवि के ग्रन्थ में कहीं नहीं है। इससे इस बात के मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि यह महाकवि कालिदास के पहले या पीछे उत्पन्न हुआ था।

इस समय इस महाकवि का बनाया केवल एकही ग्रन्थ "बुद्धचरित" पाया जाता है। इस ग्रन्थ में शान्तरस प्रधान है और करुणरस अप्रधान। प्रसाद और माधुर्यमयी वैदर्भी रीति है। इनके ग्रन्थ में शान्तरस की जैसी पुष्टि हुई है, जैसा मधुर,वर्णन हुआ है, वैसा अन्यान्य कवियों के प्रबन्धों में, कालिदास के प्रबन्धों को छोड़कर, दूसरी जगह नहीं पाया जाता। इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ बुद्धचरित से कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं, जिनसे इनके विषय में ऊपर कही हुई बातों की पुष्टि होगी।

ततस्तथा भर्तरि राज्यनिस्पृहे तपोवनं याति विवर्णवाससि।
भुजौ समुत्क्षिप्य ततः स वाजिभृद्भृशं विचुक्रोश पपात च क्षितौ ॥ १ ॥

जब राज्य से निस्पृह होकर फटे कपड़ों से महाराज (बुद्ध) वन में गये, तब घोड़े का साईस दोनों हाथों को उठाकर रोने लगा और वह भूमि पर गिर पड़ा।

विलोक्य भूयश्च रुरोद सस्वरं हयं भुजाभ्यामुपगूह्य कन्थकम्।
ततो निराशो विलपन्मुहुर्मुहुर्ययौ शरीरेण पुरं न चेतसा ॥ २ ॥

पुनः वह कन्थक नाम के घोड़े को दोनों हाथों से प
कर चिल्ला चिल्लाकर रोने लगा। जब बुद्ध के लौट चलने क
आशा जाती रही, तब वह केवल शरीर से नगर की ओ
चला, चित्त से नहीं।

यमेकरात्रेण तु भर्तुराज्ञया जगाम मार्गं सह तेन वाजिना।
इयाय भर्तुर्विरहं विचिन्तयँस्तमेव पन्थानमहोभिरष्टभिः ॥ ३ ॥

स्वामी (बुद्ध) की आज्ञा से जिस मार्ग को उसने उ
घोड़े के साथ एक रात में तै किया था, उसी मार्ग में स्वा
के विरह के कारण उसको आठ दिन लग गये।

निशम्य च स्रस्तशरीरगामिनौ विनागतौ शाक्यकुलर्षभेण तौ।
मुमोच बाष्पं पथि नागरो जनः पुरा रथे दाशरथेरिवागते ॥ ४ ॥

शाक्य कुल के दीपक के बिना शिथिल अङ्ग से चलने
वाले उन दोनों को देखकर मार्ग में नगरवासियों ने आंसू
बहाये। जैसे पहले रामचन्द्र को वन में छोड़ कर लौटे हुए
रथ को देखकर नगरवासी रोये थे।

पुनः कुमारो विनिवृत्त इत्यथो गवाक्षमालाः प्रतिमंदिरेऽङ्गनाः।
विविक्तपृष्ठं च विलोक्य वाजिनं पुनर्गवाक्षाणि पिधाय चुक्रुशुः ॥ ५ ॥

नगर की स्त्रियों ने सुना कि कुमार लौट आये, अतः वे
अटारी पर चढ़कर खिड़की खोलकर देखने लगीं। पर जब
उन लोगों ने घोड़े की पीठ खाली देखी, उस समय खिड़की
बन्द कर वे रोने लगीं।

...हमानश्च नरेन्द्रमन्दिरं विलोकयन्नश्रुवहेन चक्षुषा।
... पुत्रेण रराव कन्थको जनाय दुःखं प्रतिवेदयन्निव ॥ ६ ॥

जब वह राजभवन में गया, तब उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वह उन्हीं आँखों से चारों ओर देख रहा था। वह अपने पुष्ट स्वर से रोता था, मानो अपना दुःख लोगों को बतला रहा था।

ततः सबाष्पा महिषी महीपतेः प्रनष्टवत्सा महिषीव वत्सला ।
प्रगृह्य बाहू निपपात गौतमी विलोलपर्णा कदलीव काञ्चनी ॥ ७ ॥

तब महाराज की प्रधान रानी गौतमी जिसकी आँखें आँसू से भर गयी थीं और जिसकी दशा बछड़े के नष्ट होने पर वत्सला भैंस के समान थी; वह हाथ बाँध कर गिर पड़ी, जैसे चञ्चल पत्ते वाली सोने की कदली गिरती है।

तथैव रोषप्रविरक्तलोचना विषादसम्बन्धकषायगद्गदम् ।
उवाच निश्वासचलत्पयोधरा विगाढशोकाश्रुधरा यशोधरा ॥ ८ ॥

यशोधरा (बुद्ध की स्त्री) की आँखें शोकावेग के कारण आँसू से भर गयी थीं, क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गयी थीं, अधिक शोक होने के कारण वह बोल नहीं सकती थी, निश्वास से उसकी छाती धड़कती थी। वह बोली –

निशि प्रसुप्तामवशां विहाय मां गतः क्व स छन्दक मन्मनोरथः ।
उपागते च त्वयि कन्थके च मे समं गतेषु त्रिषु कम्पते मनः ॥ ९ ॥

हे छन्दक (सेवक) रात को निद्रा में अचेत पड़ी हुई मुझको छोड़कर वह मेरा मनोरथ कहाँ चला गया ? तुम तो लौट आये, और कन्थक भी आया। तीनों के एक साथ जाने से मेरा हृदय काँप रहा था।

प्रियेण वश्येन हितेन साधुना त्वया सहायेन यथार्थकारिणा ।
गतोऽर्यपुत्रो ह्यपुनर्निवृत्तये रमस्व दिष्ट्या सफलः श्रमस्तव ॥ १० ॥

तुम [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] दीय [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पति नहीं [illegible] के [illegible] आनन्द करो, तुम्हारा परिश्रम [illegible] हुआ।

वरं प्रज्ञावान् रिपुः [illegible] [illegible] [illegible]।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ॥११॥

मनुष्य का शत्रु यदि बुद्धिमान हो तो [illegible] अच्छा है, [illegible] और समय न समझनेवाला मित्र अच्छा नहीं। मित्र कहलाने वाले मूर्ख तुमने मेरे समस्त कुल का आज नाश कर दिया।

अनर्थकारी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।
जहार सर्वस्वमतस्करोऽपि मे [illegible] [illegible] निशि [illegible] [illegible] ॥१२॥

यह चञ्चल घोड़ा भी निश्चय मेरा अनिष्ट चाहने वाला है, जिसने मेरा सर्वस्व रात को सब लोगों के सोने पर चोर के समान ले गया।

यदा समर्थः खलु सोढुमागतानिषुप्रहारानपि किं पुनः कशाः।
गतः कशापातभयात् कथं त्वयं श्रियं गृहीत्वा हृदयं च मे समम् ॥१३॥

यह घोड़ा जब आये हुए बाणों को भी सह सकता है, इसके लिए कोड़ा कौन सी वस्तु है, जो यह कोड़े के डर से मेरी सम्पत्ति और मेरा हृदय लेकर चला गया।

अनार्यकर्मा भृशमद्य हेषते नरेन्द्रधिष्ण्यं प्रतिपूरयन्निव।
यदा तु निर्यापयति स्म मे प्रियं तदा हि मूकस्तुरगाधमोऽभवत् ॥१४॥

यह दुराचारी आज बार बार बोल रहा है। महाराज मकान को अपने शब्द से गूँजा रहा है, पर जिस समय

मेरे प्रिय थे। ऐसा कहकर वह ... अधम थोड़ा चुप हो गया था।

...कृत्वा ... वृन्दं ... निपपात ...।
... ... ॥ १५ ॥

महाराज का ज्यों ज्यों ... हुआ, ज्यों ही ... उन्होंने कह दिया, त्यों ही ... महाराज दशरथ के ... विचलित हो गये जैसे वज्र के मारे से हाथी विचलित होता है।

निरीक्ष्य ... ... च ... ।
... ... ॥ १६ ॥

इन्द्रध्वज और कल्पवृक्ष को देखकर तथा अपने पुत्र का निश्चय सुनकर महाराज अचेत होकर गिर पड़े, जिस प्रकार इन्द्र के उत्सव में वृक्षध्वज गिरता है।

गतेऽर्धमुहूर्ते सुतशोकमोहितो ... पातितः ।
निरीक्ष्य कृच्छ्रात् ... महीपतिः ॥१७॥

थोड़ी देर तक महाराज पुत्रशोक से अचेत थे, उनको बन्धु बान्धव सम्हाले हुए थे। महाराज आंसू भरी आँखों से कैकेयी को देखकर भूमि में पड़े पड़े विलाप करने लगे।

बहूनि कृत्वा समरे प्रियाणि मे महत्त्वया कल्पक विप्रियं कृतम् ।
गुणप्रियो येन वने स मे सुतः प्रियोऽपि शत्रुप्रियवत्प्रवासितः ॥ १८ ॥

कल्पक, रणों में तुमने मेरे बहुत से प्रिय काम किये हैं, पर आज तुमने मेरा बड़ा ही अपकार किया, क्योंकि गुणप्रिय मेरे प्रिय पुत्र को तुमने शत्रु के समान वन में भेज दिया।

तदद्य मां वा नय तत्र यत्र स मज द्रुतं वा पुनरेनमानय ।
ऋतेहि तस्मान् मम नास्ति जीवितं विगाढरोगस्य सदौषधादिव ॥१९॥

तो आज तुम मुझको वहाँ ले चलो जहाँ मेरा वह पुत्र है। अथवा तुम स्वयं शीघ्र जाकर उसीको ले आओ। क्योंकि उसके बिना मेरा जीना असम्भव है। जैसे किसी रोगी का जीवन अच्छे औषध के बिना असम्भव होता है।

प्रचक्ष्व मे भद्र तदाश्रमाजिरं हृतस्त्वया यत्र स मे जलाञ्जलिः ।
इमे परिप्सन्ति हि मे पिपासवो ममासवः प्रेतगतिं यियासवः ॥२०॥

ऐ भलेमानुस, मुझे बतलाओ वह स्थान कहाँ है ! जहाँ मेरी जलाञ्जलि (जल देने वाले पुत्र) को तू ले गया है। मेरे प्यासे ये प्राण जो प्रेत—गति को जाने वाले हैं, उसको चाहते हैं।

इति तनयवियोगजातदुःखः क्षितिसदृशं सह विहाय धैर्यम् ।
दशरथ इव रामशोकवश्यो बहु विललाप नृपो विसंज्ञकल्पः ॥२१॥

पुत्र के वियोग से महाराज को बहुत दुःख हुआ। पृथिवी के समान उनकी स्वाभाविक धीरता जाती रही। राम के शोक से जैसे दशरथ ने विलाप किया था, उसी प्रकार अचेत होकर महाराज विलाप करने लगे।



आनन्दवर्द्धन

ये ध्वन्यालोक नामक अलङ्कार ग्रन्थ के कर्ता थे। काश्मीर राज अवन्तिवर्मा के समय में ये वर्तमान थे, यह बात राजतरङ्गिणी से जानी जाती है। राजा अवन्ति वर्मा ने ई० नवीं सदी के ५५ से ले ८४ तक काश्मीर का राज्य किया था। राजतरङ्गिणी में लिखा है—

> "मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः
> प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।

इनके बनाये ग्रन्थों के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

१—ध्वन्यालोक।
२—विषमबाणलीला (प्राकृत काव्य)
३—हरिविजय
४—अर्जुनचरित
५—मतपरीक्षा
६—धर्मोत्तमविनिश्चयटीका
७—देवीशतक

महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में लिखा है,

> "ध्वनिनातिगभीरेण काव्यतत्त्वनिवेशिना।
> आनन्दवर्द्धनः कस्य नासीदानन्दवर्द्धनः॥

इनके कुछ मनोहर श्लोक नीचे लिखे जाते हैं:—

अविरताम्बुजगद्भ्रमितसङ्कुलदहल्लेखसरस्तलिलेव यः।
कलितकज्जलविमानसुधोद्धतभङ्गुरदा तनुतामशुभोपितान॥

सदा स्नान के कारण यमुना के निकट संसर्ग से जो शीतल हो गया है और उत्तम वस्तुओं के निर्माण के दूर से जो रोमाञ्चित हो रहा है, वह ब्रह्मा का शरीर आपका कल्याण करे।

एकस्य' जीवितेशो त्वयि सकलजगत्सारमालोकयामः।
श्यामे चक्षुस्तवास्मिन्वपुषि निविशते कस्य पुण्यस्य पुंसः॥
कस्यान्यस्मिन्नमृतेऽस्मिन्नतिविपुला दृष्टिरेवामृतं ते।
दैत्यैरित्युच्यमानो मुनिभिरपि हरिः स्त्रीस्वरूपधारी॥१॥

प्राणेश, आपमें समस्त जगत् का सार मैं एक स्थान पर देखता हूँ। तुम्हारे इस श्याम शरीर को बड़े पुण्यात्मा देखते हैं। इस अमृत को छोड़ कर किस मनुष्य का अनुराग दूसरी वस्तु में होगा? तुम्हारी बड़ी बड़ी आँखें ही अमृत हैं। स्त्री-रूपधारी हरि को दैत्य और मुनि दोनों ने इस प्रकार कहा। हरि आपकी रक्षा करें।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
एतत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तमाभाति लावण्यमिवाङ्गनासु॥२॥

महाकवियों की वाणी में जो बात मालूम होती है वह कुछ और ही है। जिस प्रकार स्त्रियों के शरीर में प्रसिद्ध अङ्गों के अतिरिक्त लावण्य एक विलक्षण ही शोभा देता है।

या साधूनिव साधुवादमुखरान्कान्स्वयंमूकानपि
प्रोच्चैर्नो कुरुते सतां मलिनतां दृष्टिर्न सा वास्तवी॥
या याताः श्रुतिगोचरं च सहसा हर्षाहृपत्कंधरा
स्तिर्यञ्चोऽपि न मूकशास्यकवलास्ताः किं कवीनां गिरः॥४॥

जो देश मूक बने हुओं को भी साधुओं के समान साधुवाद देने के लिए चञ्चल करता है वह बुद्धिमान सज्जनों की

दृष्टि यथार्थ दृष्टि नहीं है और जिसके सुनाई पड़ते ही सहसा पत्थरों का भी कलेजा हर्ष से उल्लसित न हो जाय, और वे दोनों बातें न छोड़ दें, यह क्या कवियों की वाणी है?

ये श्रमं हर्तुमीहन्ते महतां चिरसञ्चितम्।
वन्द्यास्ते सज्जनानां दुर्जनाः सज्जना इव ॥ ५ ॥

बहुत दिनों का संचित सज्जनों का परिश्रम जो हरण करना चाहते हैं, वे दुर्जन भी सज्जनों के समान नमस्करणीय हैं।

यः प्रार्थयति नरो नर मर्त्यं देवतासु वरदासु सतीषु।
मुग्धबोधमल्पधनस्पृहयालुं मूर्खमग्रिममहं गणयामि ॥ ६ ॥

वर देनेवाले देवताओं के रहते जो मनुष्य दूसरे मनुष्य की प्रशंसा धन के लोभ से करता है, वह मूर्ख है और मैं उसे पहला मूर्ख समझता हूँ।

सन्त्वमूनि बहूनि महांसि चन्द्रोऽप्यलं भुवनमण्डलमण्डनाय।
सूर्यादृते न कुरुतेऽपि न चालमेति येनोदितेन दिनमस्तमितेन रात्रिः ॥७॥

ये अनेक बड़े बड़े प्रकाश उदित होते हैं, चन्द्रमा भी संसार की शोभा ही बढ़ाता है, पर उदय होना तो एक सूर्य का है, जिसके उदय होने से दिन होता है और अस्त होने से रात्रि होती है।

लोकानन्दयितुमति न यः क्षीयमाणोऽपि भूयः
स्वःस्थे तस्मिन्निह दिनमुखं भुवनं नावबिम्बत्
एवं कौतुकमपि यथा गन्तुमात्मानमेव
स्वामी कार्यं गमयति सखे सौम्यमयं पश्य चन्द्रः ॥ ८ ॥

स्वयं क्षीण होने पर भी जो सदा लोकों को आनन्दित करता है, उसके स्वर्ग में रहने पर क्या प्रातःकाल नहीं

होता। पर भाग्य कैसा है, यह चन्द्रमा भी आना ही मरः करने के लिए व्याकुल रहता है और इसीमें उसका स समय बीतता है।

नास्योच्चूयपती तनुर्न दृशनी मोदोर्घदीर्घः करः
सत्यं वारण नैव कंगति क्रिमुन्मडम्बरैः स्पर्धते ॥
में जीवीजममलस्य हृदये न्यस्तं पुरा वेधसा।
तादृक् त्वादृशमेव येन सुतरां भोज्यं पशुं मन्यते ॥९

उसका लंबा शरीर नहीं है, बड़े दो दांत भी नहीं हैं और न बड़ा बड़ा कर (सूंड़) है। हाथी. यह ठीक है कि आडम्बर में यह सिंह का बच्चा तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता, पर इसके हृदय में ब्रह्मा ने एक बड़ा तेजोबीज रक्खा है, जिससे तुम्हारे समान पशुओं को यह अपना भोजन समझता है।

केलिं कुरुष्व परिभुङ्क्ष्व सरोरुहाणि।
गाहस्व शैलतटनिर्झरिणीपयांसि ॥
भावानुरक्तकरिणीकरलालिताङ्ग।
मातङ्ग मुञ्च मृगराजरणाभिलाषम् ॥१०॥

आनन्द करो, कमलों को खाओ, पहाड़ी नदियों के जल का अवगाहन करो, पर मातङ्ग! सिंह से युद्ध की इच्छा छोड़ दो, क्योंकि प्रेमिका हथिनी के हाथों से तुम्हारे अङ्ग लालित होते हैं।

मनोरथशतैर्यो भुवननाथचूडोचित—
स्तृणैरलमधः कृतः कृपणदः क्वचिद्रावसु ॥
व्रजत्यपि सचेतसां विषयमीदृशां यो दृशो।
लुठत्यचलकन्दरे विधुर एष चिन्तामणिः ॥११॥

जो कर्म [illegible] से [illegible] किया जाता है और राजाओं [illegible] है, उस [illegible] को [illegible] लिया, उस समय [illegible] में वही उसे [illegible] था, केवल मनुष्यों के हृदय में जो [illegible] से [illegible] है [illegible] चिन्तामणि ठुकराया जाता है।

[illegible] —
[illegible] ॥
[illegible] वृष्टिः [illegible] —
[illegible] ॥ १२ ॥

तुम्हारा गर्जन ही रोदन है, वृष्टि अश्रुधारा है, तुम्हारे वियोग में [illegible] की वेदनाएँ [illegible] के समान हैं, मेरे हृदय में कविता की स्फूर्ति है, और तुम्हारे भीतर चन्द्रमा है, हे मेघ! इस प्रकार हमारी तुम्हारी दोनों की दशा समान है, फिर मित्र, तुम मुझको ही जलाने के लिए क्यों तैयार रहते हो।

[illegible] ।
[illegible] कुसुमितं फलितं च ॥१३॥

अर्जुन की सृष्टि में जो महारूप-निर्माण बीज अङ्कुरित हुआ था, वह आज तुम्हारे उदय के समय कुसुमित और फलित देखा जाता है।

त्वयि जनार्दन भक्तिरचञ्चला यदि भवेदफलात्मतया मम।
[illegible] पुनरपीह शरीरपरिग्रहम् ॥ १४ ॥

जनार्दन, यदि आपके चरणों में मेरी कामनारहित स्थिर भक्ति हो तो मैं मुक्ति को छोड़ कर पुनः शरीर ग्रहण करने की इच्छा करता हूँ।

कल्हण

ये कवि काश्मीर देश के निवासी थे। काश्मीर के इतिहास "राजतरङ्गिणी" का निर्माण इन्होंने ही किया है। काश्मीर-राज जयसिंह के समय में इन्होंने राजतरङ्गिणी बनायी थी। जयसिंहाभ्युदय नामक एक काव्य भी इन्होंने बनाया है। इन्होंने राजतरङ्गिणी बनाने का समय राजतरङ्गिणी में इस प्रकार लिखा है—

लौकिकेऽब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम् ।
सप्तत्याभ्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः ॥

१०७० शक में इन्होंने राजतरङ्गिणी बनायी। ये काश्मीर राज्य के प्रधान मन्त्री भी थे।

अन्य काश्मीरक कवियों के समान इनकी कविता भी प्रौढ़ और सरस है। देखिए—

वृत्तिं स्वां बहुमन्यते हृदि शुचं धत्तेऽनुकम्पोक्तिभि-
र्व्यक्तं निन्दति योग्यतां मितमतिः कुर्वन्स्तुतीरात्मनः ॥
गर्होपायनिवेशनं कथयति स्वाशु यदन्यायजं ।
श्रुत्वा दुःश्रवमुग्रतां वितनुते पीडां जनः प्राकृतः ॥ १ ॥

दुर्जन मनुष्य अपनी वृत्ति—दुर्जनता को अच्छा समझता है, दया की बातों से उसका हृदय दुःखी होता है, अपनी प्रशंसा करता है और योग्यता की निन्दा करता है, क्योंकि उसकी बुद्धि थोड़ी होती है। अनेक प्रकार की आशंकाओं का उल्लेख करके बुरे उपायों के अवलम्बन का समर्थन करता है, दुःख का नाम सुनकर अति तीव्र पीड़ा पहुँचाता है।

पाकर्मेव कुसुमस्तमेदय वदनो प्रागेव मादास्थितु
स्वार्थभ्रेष भयात्म हिंत भजते दीनात्मवन्धुमपम् ॥

मत्तो दम्भ इहोत्सवः श्रीयदि न तत्पुरुषः किमेव स्वनि—
दित्यन्तःपुरुषोऽधमः कलयति प्रायः कृतोपक्रियः ॥ २ ॥

दुर्जन मनुष्य किसी के द्वारा उपकृत होने पर प्रायः इस प्रकार सोचता है, यदि आज मेरे भाग्यों का उदय नहीं हुआ तो आज के पहले ही इन्होंने क्यों नहीं दिया ? यदि मुझसे स्वार्थसिद्धि की आशा न होती; तो ये अपने गरीब भाई बन्धुओं को ही क्यों न देते ? मैं इसकी बुराइयों को जानता हूँ इसी डर से यह मुझको देता है, नहीं तो यह कृपण कब का देनेवाला है, उपकृत होने पर अधम पुरुष इसी प्रकार सोचते हैं।

कर्णे तत्कथयन्ति दुन्दुभिरवै राष्ट्रे युदुद्घोषितं
तद्व्याहृतया वदन्ति करणं यस्मात्त्रपावान्भवेत् ॥
श्लाघन्ते यदुदीर्यते यदरिणाप्युभं न मर्मान्विकं
ये केचित्तु शाठ्यमौग्ध्यनिधयस्ते भूभृतां रञ्जकाः ॥ ३ ॥

नगारे की आवाज़ के साथ जो देश में घोषित किया गया है, वह भी जो कानों में कहता है, लज्जा देने वाली बातों को नम्रतापूर्वक प्रकाशित करता है, हृदय को जलाने वाली जो बातें, शत्रु नहीं कह सकते उनकी जो तारीफ़ करता है, इस प्रकार की जिसमें शठता और भोलापन होता है, वे ही राजाओं को प्रसन्न कर सकते हैं।

हा कष्टं तटवासिनोपि विफलं मामम्बुमालोक्य मा—
मन्यत्रैव पिपासवः प्रतिदिनं गच्छन्त्यमी जन्तवः ॥
इत्थं स्वयं जलातिभारवहनप्रोद्भूतखेदादिव
स्वांमूर्तिं वड़वानले जलनिधिर्मन्ये जुहोत्यन्वहम् ॥ ४ ॥

यह बड़े कष्ट की बात है कि मेरे इस जलराशि को विफल समझ कर मेरे तीर पर रहनेवाले जन्तु भी पिपासा से

पीड़ित होकर दूसरी जगह जाते हैं, इस प्रकार जलराशियों के वहन करने से उत्पन्न श्रम से समुद्र अपना जल वड़वानल में हवन करता है।

मर्यादा परिपालनेन महतां क्षोणीभृतां रक्षणा—
स्थित्यास्य म... स्तरस सुचिरं यदिह विश्रामादिना ॥
गाम्भीर्योचितमात्मनो जलधिना तन्मन्थनाभ्रमा
देवेभ्योऽमृतमर्पयद्भुतमहो सर्वं तदुन्मूलितम् ॥ ५ ॥

यहाँ की मर्यादा के पालन करने से, पर्वतों की रक्षा करने से और विष्णु के विश्राम करने के लिए स्थान देने से समुद्र ने जो अपनी गम्भीरता का उचित फल पाया था, वह सब मन्थन पीड़ा की घबड़ाहट से देवताओं को अमृत देकर उसने नष्ट कर दिये।

आश्चर्यं वड़वानलः स भगवानाश्चर्यमम्भोनिधि—
र्यस्कर्मातिशयं विचिन्त्य मनसः कम्पः समुत्पद्यते ॥
एकस्याश्रयघस्मरस्य पिबतस्तृप्तिर्न जाता जलै—
रन्यस्यापि महात्मनो न वपुषि स्वल्पोऽपि जातः श्रमः ॥ ६ ॥

आश्चर्य वड़वानल के लिये है, विष्णु के लिए है और समुद्र के लिए भी है, जिसके अद्भुत काम को सोचकर मनुष्य का मन कम्पित होने लगता है, एक को —जो अपने आश्रय को ही खाता है —जल पीने से तृप्ति नहीं हुई। अर्थात् वड़वानल आज तक जलपीने से तृप्त नहीं हुआ, और विष्णु को वहाँ सोने में कोई कष्ट नहीं हुआ। और दूसरे महात्मा के शरीर को थोड़ा भी श्रम नहीं हुआ।

नोद्वेगं यदि यासि यद्यवहितः कर्णं ददासि क्षणं
त्वां पृच्छामि यदम्बुधे किमपि तन्निश्चित्य देह्युत्तरम् ॥

नैराश्यात् गयानिराशनिर्जित निःश्वस्य यद्दृश्यते
   तृष्णद्भिः पथिकैः किमस्तदधिकं स्वार्थीर्वदाहादतः ॥ ७ ॥

यदि तुम घबड़ा न जाओ और यदि तुम सावधान हो कर सुनो, तो मैं तुमसे पूछता हूँ – सोच कर उत्तर दो, प्यासा पथिक तुम्हारे यहाँ आकर निराशा-जनित तीव्र पश्चात्ताप से गर्म सांस लेकर जो तुम्हारी ओर देखता है, उससे बड़वानल का दाह कितना अधिक है।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्य तदीयद्विषा-
   मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ॥
इतश्च बड़वानलः सहसमस्तसंवर्तकैः-
   रहो विततमूर्जितं भरसहं च सिन्धोर्वपुः ॥ ८ ॥

एक ओर विष्णु सोते हैं, दूसरी ओर विष्णु के शत्रुओं का समूह सोता है, एक ओर शरण में आये हुए पर्वतों का समूह वास करता है, एक ओर संवर्तक नाम के मेघों के साथ बड़वानल है। ओह, समुद्र का शरीर कितना बड़ा है और वह कितना भार सहता है।

वैकुण्ठाय श्रियमभिनवं शीतभानुं भवाय
   प्रादादुच्चैःश्रवसमपि वा वज्रिणे तत्क गण्यम् ॥
तृष्णार्ताय स्वमपि मुनये यद्ददातिस्म देहं
   कोऽन्यस्तस्माद्भवति भुवनेष्वम्बुधेर्वाधिसत्त्वः ॥ ९ ॥

लक्ष्मी विष्णु को दी, नवीन चन्द्र शिव को दिया और इन्द्र को उच्चैःश्रवा दिया, इनकी तो कोई गिनती नहीं; प्यासे मुनि को (अगस्त को), समुद्र ने अपना शरीर तक दे दिया, इस समुद्र से बढ़कर संसार में कौन बड़ा त्यागी है ?

दोच्छलाः प्रविकिरँल्लहरीः समीरैरब्धि. क्रियेत यदि रुद्धतटाभिमुख्यः ।
पोर्थिनः स खलु भाग्यविपर्ययाणां दातुमंनागपि न तस्य तु दातृतायाः १०

रत्न के समान उज्ज्वल लहरियों को वायु के द्वारा फैलाने वाले समुद्र के तट यदि रोग लिये जांय, तो यह याचकों के भाग्य का ही दोष है, दाता की दानशक्ति का दोष नहीं है।

अन्तर्यं सततं सुकन्यगणिनास्तानेव पाथोपरे-
राधानापतनस्तरंगवल्यैरालिङ्ग्य गृह्णसौ ॥
व्यक्तं मौक्तिकरत्नतां जलकणान्नापयत्यम्बुधिः
प्रायोऽन्येन कृतादरो लघुरपि प्राप्यते स्वामिभिः ॥ ११ ॥

जो जल के कण सदा समुद्र में ही रहते हैं, उन्हेंही मेघ लेजाकर जब पुनः समुद्र को देता है, तब तरङ्गों से आलिङ्गन कर के समुद्र उनका ग्रहण करता है और उन्हींको मोती बना देता है। छोटा भी हो, यदि उसका दूसरे आदर करते हैं, तो स्वामी भी उसका आदर करता है।

परामृशति सस्पृहं मुहुरपेलवं वीक्ष्यते
महत्किमपि रत्नमित्यसममर्दं गूहते ॥
कुतोपि परिपेलवच्छविमवाप्य काचोपले
वहत्यतिकदर्थनां यत वराकः पामरः ॥ १२ ॥

विचारा मूर्ख मनुष्य कहीं से कांच का टुकड़ा पाता है सो उसे बड़ी लालसा से छूता है, बार बार उसे देखता है, यह बड़ा भारी कोई रत्न है यह समझ कर प्रसन्नता पूर्वक उसे छिपाता है, इस प्रकार वह अनेक कष्ट उठाता है।

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरहो चन्द्रो न संभाव्यते
नो देवः कुसुमायुधो न च मधुर्दूरे विरिञ्चः प्रभुः ॥
एतस्मै मतमुत्थितं यममृतात्काचित्स्वयं सिंधुना
या मन्थाचललोडितेन हरये दत्वाश्रियं रक्षिता ॥ १३ ॥

इसको सृष्टि करने के लिए चन्द्रमा प्रजापति नहीं बना था। कामदेव भी प्रजापति नहीं था। फिर ब्रह्मा के प्रजापति होने की बात तो दूर ही है। मैं तो समझता हूँ कि यह अमृत से स्वयम् उत्पन्न हुई है और मन्थन के समय समुद्र ने विष्णु को लक्ष्मी देकर इसकी रक्षा की थी। अर्थात् लक्ष्मी से भी यह सुन्दरी है। इसी श्लोक के समान कालिदास का भी श्लोक है।

भास्वद्विम्बाधरा कृष्णकेशी सितकरानना ॥
हरिमध्या शिवाकारा सर्वदेवमयीव सा ॥ १४ ॥

इसका बिम्बाधर भास्वत (सूर्य या प्रकाशमान है) है, केश कृष्ण है, मुँह चन्द्रमा है, मध्यभाग हरि (सिंह या विष्णु) के समान है, उसका आकार शिव (सुन्दर या महादेव) है, वह सर्वदेवमयी है।

सच्छेत्रप्रतिपादितः प्रियवचोबद्धालवालावलि
निर्दोषेण मनःप्रसादपयसा निष्पन्न सेकक्रियः ॥
दातुस्तत्तदभीप्सितं किल फलत्कालेपि बालोप्यसौ
राजन्दानमहीरुहो विजयते कल्पद्रुमादीनपि ॥ १५ ॥

अच्छे क्षेत्र (पात्र) में दिया हुआ दानवृक्ष कल्पद्रुम आदि को भी जीत लेता है। प्रियवचनों द्वारा इसके आलवाल बनाये जाते हैं और दोषरहित मानसिक प्रसन्नतारूपी जल से यह सींचा जाता है, छोटा होने पर भी यह दाता के मनोरथों को पूर्ण करता है।

यो यं जनापकरणाय सृजत्युपायं तेनैव तस्य नियमेन भवेद्विनाशः ॥
धूमं प्रसौति नयनान्ध्यकरं यमग्निर्भूत्वाम्बुदः सशमयेत्सलिलैस्तमेव ॥१६॥

क्यों कि वैसा करना हिम्मत का काम है, साहस का काम है। उन मतों के समर्थन करने की शक्ति मुझमें नहीं है। एक विद्वान ने कालिदास को गुप्त राजाओं का समकालीन बतलाया है और अपने इस मत में उन लोगों ने प्रमाण यह दिया है कि कालिदास ने रघुवंश में "गुप्त" शब्द का प्रयोग किया है। इस मत का समर्थन करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। इस मत का जब मैं समर्थन करना चाहता हूँ, उस समय "सद्गुप्तमूल प्रत्यन्तः" के गुप्त-शब्द में ऐसी कोई योग्यता दिखाई नहीं पड़ती, जो गुप्त राज्य के समय कालिदास के होने को प्रमाणित करे। यहाँ गुप्त शब्द रक्षित के अर्थ में आया है, यह सामान्त प्रयोज्य गुप्त शब्द नहीं है। यदि इसी प्रकार किसी प्रयुक्त शब्द को देख कर किसी के समय का अनुमान किया जा सकता है, तब ऐसा कोई काल नहीं, जिसमें कालिदास का होना प्रमाणित न किया जा सके। कालिदास पुरुरवा के समय हुए थे, क्योंकि शब्द ही नहीं, किन्तु पुरुरवा पर इन्होंने विक्रमोर्वशीय नाटक बनाया है। इसी प्रकार दुष्यन्त, शिव और रघु, अज, दशरथ, राम आदि सभी के समय कालिदास हुए थे क्योंकि इन सब का इन्होंने वर्णन किया है। इन्हीं कारणों से मैं कहता हूँ, उन खोजों का सङ्कलन करना मेरे लिए आवश्यक नहीं है। हाँ, कालिदास के विषय में संस्कृत कवियों की जो उक्तियाँ मिलती हैं, उनका संग्रह कर देना ही मेरे लिए पर्याप्त और प्रामाणिक है।

अभिनन्द महाकवि ने कवियों के संबन्ध में एक श्लोक लिखा है, उसमें कतिपय कवि और उनके आश्रयदाता राजाओं का वर्णन है।

हालेनोत्तम पूजया कविवृषः श्री पालितो लालितः
ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना
श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणी फलम्
सद्यः सत्क्रियाभिनन्दमपि च श्रीहार वर्षोऽग्रहीत् ॥

इस श्लोक से मालूम होता है कि शक विजयी विक्रम
दित्य के यहाँ कालिदास रहते थे। कुछ लोग कहते हैं, कि
इस श्लोक में बहुवचन का प्रयोग किया गया है, जिस
कम से कम तीन कालिदासों का होना सिद्ध होता है
इस संबन्ध में महाकवि राजशेखर का एक श्लोक भी उद्धृ
किया जाता है, जिसमें तीन कालिदासों का होना स्प
लिखा है—

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

इस प्रकार नवमसदी के पहले तीन कालिदास हुए थे
यह बात मालूम होती है। कालिदास के नाम से इस समय जो
ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, उनमें कौन किस कालिदास का बनाया है
इसका निर्णय करना कठिन है, क्योंकि इसका कोई पुष्
प्रमाण नहीं मिलता।

कालिदास कब हुए थे? उनका समय क्या है? यह बड़ा ही
जटिल विषय बनाया गया है। विक्रमादित्य की सभा में कालि-
दास थे और विक्रमादित्य का जो समय है अर्थात् ईसवी
सदी से पहले, वही समय कालिदास का समय है, यह भारतीय
पण्डितों का कहना है। पर पश्चिमी पण्डित कालिदास का
समय ५वीं या ६वीं सदी मानते हैं। धारा नगरी के राजा सिन्धु-
राज की सभा में परिमल नाम के एक कवि रहते थे, जिन्होंने

अपने को अभिनव कालिदास लिखा है। इससे कुछ लोग इन्हींको कालिदास समझते हैं और सिन्धुराज का समय कालिदास का बतलाते हैं। कुछ लोग कहते हैं कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नामक नाटक में शुङ्गराज अग्निमित्र का वर्णन किया है और उनके युद्ध का उल्लेख किया है जो आँखों देखे के समान वर्णन हुआ है। इससे कालिदास का होना ई० स० से पहले मानना चाहिए। रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, अभिज्ञान शाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र और विक्रमोर्वशीय ये छः ग्रन्थ कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये सब ग्रन्थ एकही कालिदास के बनाये हैं,या भिन्न भिन्न कालिदासों के, इसका निर्णय करना कठिन है। पर इनकी भाषा पर ध्यान देने से इनके एककर्तृत्व होना मानने की इच्छा होती है। इनके अतिरिक्त ऋतुसंहार, नलोदय आदि ग्रन्थ भी कालिदास के नाम से प्रसिद्ध है, इनके कर्ता कोई दूसरे कालिदास होंगे।

ज्योतिर्विदाभरण नामक ज्योतिष ग्रन्थ के कर्ता भी कालिदास थे; पर ये कालिदास प्रसिद्ध कालिदास से भिन्न थे।

(रघुवंश से)

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां रामाभिधानो हरिरित्युवाच ॥ १ ॥

भगवान रामचन्द्र पुष्पक विमान के द्वारा आकाश मार्ग से लङ्का से चले। वहाँसे उन्होंने समुद्र को देखा। उस समय उनके मनमें समुद्र के विषय में जो भाव उत्पन्न हुए वे रामचन्द्रजी ने अपनी स्त्री से कहे।

वैदेहि पश्यामलयाद्विभक्तं मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्
छायापथेनेव शरत्प्रसन्नमाकाशमाविष्कृतचारुतारम्

वैदेहि, देखो, मेरे सेतु के द्वारा यह फेनिल स
चल तक दो भागों में विभक्त हुआ मालूम प
समुद्र शरत्काल के आकाश के समान मालू
जिसमें सुन्दर तारागण छिटकी हों और जो छायाप
दो भागों में विभक्त हुआ हो ।

गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये रसातलं संक्रमिते तुरंगे
तदर्थमुर्वीमवदारयद्भिः पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः ॥

इस समुद्र को मेरे पूर्वजों ने ही बढ़ाया है । कि
करना चाहते थे कपिल उनके यज्ञीय अश्व को रसा
लेकर चले गये । उसी अश्व के लिए मेरे पूर्वजों ने
खोदी और उसमें यह समुद्र बढ़ा ।

गर्भं दधत्यर्कमरीचयोऽस्माद्विवृद्धिमत्राश्नुवते वसूनि ।
अबिन्धनं वह्निमसौ बिभर्ति प्रह्लादनं ज्योतिरजन्यनेन ॥ ४ ॥

इस समुद्र से सूर्य की किरणें गर्भ धारण करती हैं,
समुद्र में रत्नों की वृद्धि होती है । बिना ईंधन के जलनेवाल
आग यह समुद्र धारण करता है और प्रसन्न करनेवाल
ज्योति रात्रि का धारण करता है ।

तां तामवस्थां प्रतिपद्यमानं स्थितं दश व्याप्य दिशो महिम्ना ।
विष्णोरिवास्यानवधारणीयमीदृक्तया रूपमियत्तया वा ॥ ५ ॥

यह अनेक अवस्थाएँ धारण करता है । अपनी महिमा से
दसों दिशाओं में फैला हुआ है । विष्णु की महिमा के समान

इसकी भी महिमा ऐसी है और इतनी है इसका निश्चय नहीं किया जा सकता है।

नाभिप्ररूढाम्बुरुहासनेन संस्तूयमानः प्रथमेन धाता।
अमुं युगान्तोचितयोगनिद्रः संहृत्य लोकान्पुरुषोऽधिशेते ॥ ६॥

प्रलय काल में भगवान् विष्णु समस्त लोकों को एकत्र करके इस समुद्र में शयन करते हैं और यहां ही विष्णु के नाभिकमल से उत्पन्न आदि ब्रह्मा उनकी स्तुति करते रहते हैं।

पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः।
नृपा इवोपप्लविनः परेभ्यो धर्मोत्तरं मध्यममाश्रयन्ते ॥ ७॥

इन्द्र पर्वतों का पक्ष-छेदन करने लगे। तब अनेक पर्वत इसकी शरण गये, जिस प्रकार पीड़ित राजा उदासीन धर्मात्मा राजा की शरण में जाते हैं। कहते हैं कि मैनाक आदि कई पर्वत समुद्र की शरण में अब तक वर्तमान हैं।

रसातलादादिभवेन पुंसा भुवः प्रयुक्तोद्वहनक्रियायाः।
अस्याच्छमम्भः प्रलयप्रवृद्धं मुहूर्तवक्त्राभरणं बभूव ॥ ८॥

वराहावतार में जब भगवान रसातल से पृथवी को अपने दाँतों पर रखकर निकाल रहे थे, तो उस समय बढ़ा हुआ प्रलयकालीन इसका स्वच्छ जल, एक मुहूर्त उनके मुख की शोभा के लिए हुआ था।

मुखार्पणेषु प्रकृतिप्रगल्भाः स्वयं तरंगाधरदानदक्षः।
अनन्यसामान्यकलत्रवृत्तिः पिबत्यसौ पाययते च सिन्धुः ॥ ९॥

नदियाँ समुद्र की ओर मुख करने में स्वभाव से ही प्रगल्भ हैं और समुद्र भी अपना तरङ्गरूपी अधर देने में दक्ष

है। समुद्र का अपनी स्त्रियों के प्रति यह व्यवहार अनुपम
वह नदियों का अधर स्वयं पीता है, अपना उनको पीने
लिए देता है।

ससत्वमादाय नदीमुखाम्भः संमीलयन्तो विवृताननत्वात्।
अमी शिरोभिस्तिमयः सरन्ध्रैरूर्ध्वं वितन्वन्ति जलप्रवाहान्॥ १

इन तिमी नाम की मछलियों ने नदी के मुहाने पर
प्राणिसहित जल अपने मुँह में लिया। खाने की इच्छा से ज
इन्होंने अपना मुँह बन्द किया, तब इनके रन्ध्रयुक्त मस्तक
जलधारा निकलने लगी।

मातङ्गनक्रैः सहसोत्पतद्भिर्भिन्नान्द्विधा पश्य समुद्रफेनान्।
कपोलसंसर्पितया य एषां व्रजन्ति कर्णक्षणचामरत्वम्॥ ११॥

यह देखो, जल के हाथी कूद रहे हैं, उनके कूदने के समय
समुद्र फेन दो भागों में विभक्त हो जाता है, जो फेन इनके
कपोलों पर लगा रहता है, यह एक क्षण के लिए चामर
समान मालूम पड़ता है।

वेलानिलाय प्रसृता भुजंगा महोर्मिविस्फूर्जथुनिर्विशेषाः।
सूर्यांशुसम्पर्कसमृद्धरागैर्व्यज्यन्त एते मणिभिः फणस्थैः॥ १२॥

समुद्र के तीर पर बड़े बड़े अजगर सर्प पड़े हुए हैं,
समुद्र की बड़ी बड़ी लहरियों में मिल गये हैं। सूर्य की किरण
के पड़ने से इनके फण के मणि जब प्रकाशित होते हैं, तब
पहचाने जाते हैं।

तवाधरस्पर्धिषु विद्रुमेषु पर्यस्तमेतत्सहसोर्मिवेगात्।
ऊर्ध्वाङ्कुरप्रोतमुखं कथंचित्क्लेशादपक्रामति शङ्खयूथम्॥ १३

तुम्हारे अधर की समानता करने वाले मूँगों पर लहरियों के वेग से यह शंखों का समूह फैल गया है और मूँगों के ऊपर उठते हुए टहनियों में शंखों का मुँह फँस गया है, जिस कारण वे कठिनता से वहाँ से निकल पाते हैं।

प्रवृत्तमात्रेण पयांसि पातुमावर्तवेगाद्भ्रमता घनेन ।
आभाति भूयिष्ठमयं समुद्रः प्रमथ्यमानो गिरिणेव भूयः ॥ १४ ॥

मेघ ने जल पीना प्रारम्भ ही किया था कि जल के चक्कर के वेग से वह घूमने लगा, ऐसी दशा में मालूम होता है यह समुद्र पुनः पर्वत के द्वारा मथा जाता है।

दूरादयश्चक्रनिभस्य तन्वी तमालतालीवनराजिनीला ।
आभाति वेला लवणाम्बुराशेर्धारानिबद्धेव कलङ्करेखा ॥ १५ ॥

वह लवण समुद्र लोहे के चक्के के समान है, दूरसे छोटी मालूम पड़ने वाली उसकी तीरभूमि, जो ताल ताली आदि वृक्षों से नीली होरही है—कलङ्क रेखा के समान मालूम पड़ती है।

वेलानिलः केतकरेणुभिस्ते संभावयत्याननमायताक्षि ।
मामक्षमं मण्डनकालहानेर्वेत्तीव बिम्बाधरबद्धतृष्णम् ॥ १६ ॥

समुद्रतीर का वायु केतकरेणु से तुम्हारे मुख को शोभित कर रहा है, वह जानता है कि तुम्हारे बिम्बाधर का मैं अभिलाषी हूँ। और उसके सजाने आदि में जो समय लगेगा, उसके सहने में मैं असमर्थ हूँ।

एते वयं सैकतभिन्नशुक्तिपर्यस्तमुक्तापटलं पयोधेः ।
प्राप्ता मुहूर्तेन विमानवेगात्कूलं फलावर्जितपूगमालम् ॥ १७ ॥

एक मुहूर्त में ही विमान के वेग से हम लोग समुद्र के उस तीर पर पहुँच गये हैं, जहाँ तीर की रेतीली ज़मीन पर

फूटी हुई सीपों में मोतियां फैली हुई हैं और फलपूर्ण
सुपारी के वृक्ष हैं ।

> दूरस्थ तावत्करभोरु पश्चान्मार्गे मृगप्रेक्षिणि दृष्टिपातम्।
> एषा विदूरीभवतः समुद्रात्सकानना निष्पतीव भूमिः ॥ १८ ॥

हे करभोरु, तुम्हारे नेत्र मृग के समान हैं, इसलिए तुम
पीछे—जिस मार्ग को हम लोग छोड़ आये हैं—देखो, यह
समुद्र से दूर होनेवाली भूमि और वन मानों पास दौड़े
आते हैं ।

> क्वचित्पथा संचरते सुराणां क्वचिद्घनानां पततां क्वचिच्च ।
> यथाविधो मे मनसोऽभिलाषः प्रवर्तते पश्य तथा विमानम् ॥१९

कभी देवताओं के मार्ग से, कभी मेघ मार्ग से और कभी
पक्षियों के मार्ग से यह विमान चल रहा है, इसके चलने के
विषय में जैसी मेरे मन की इच्छा होती है, वैसेही यह विमान
भी चलता है ।

> असौ महेन्द्रद्विपदानगन्धिस्त्रिमार्गगावीचिविमर्दशीतः ।
> आकाशवायुर्दिनयौवनोत्थानाचामति स्वेदलवान्मुखे ते ॥ २० ॥

यह आकाश—वायु जो इन्द्र के हाथी के मदगन्ध से
वासित है और गङ्गा की तरङ्गों के संसर्ग से शीतल हो
है—दोपहर के कारण तुम्हारे मुंह पर जो पसीना आ
उसे पोंछता है ।

> करेण वातायनलम्बितेन स्पृष्टस्त्वया चण्डि कुतूहलिन्या ।
> आमुञ्चतीवाभरणं द्वितीयमुद्भिन्नविद्युद्वलयो घनस्ते ॥ २१ ॥

हे चंडि, कुतूहलिनी होकर तुमने खिड़की से हाथ निकाल क
मेघ को छुआ, उससे मेघ का विद्युत्‌रूपी आभरण प्रक

शित हो गया और मालूम पड़ने लगा कि यह तुम्हे दूसरा आभरण पहना रहा है।

अमी जनस्थानमपोढविघ्नं मत्वा समारब्धनवोटजानि।
अध्यासते चीरभृतो यथास्वं चिरोज्झितान्याश्रममण्डलानि ॥ २२ ॥

जनस्थान के सभी बाधाविघ्न दूर हो गये, यह समझ कर ये मुनिगण नये झोपड़े बना रहे हैं और अपने अपने आश्रमों में जो बहुत दिनों से छूटा हुआ था—रहे हैं।

सैषास्थली यत्र विचिन्वता त्वां भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्।
अदृश्यत त्वच्चरणारविन्दविश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम् ॥ २३ ॥

यही भूमि है जहाँ तुम को ढूँढ़ते हुए मैंने पृथिवी पर गिरा हुआ तुम्हारा एक नूपुर देखा था, जो तुम्हारे चरणों के वियोग दुःख से मानो चुपचाप पड़ा था।

त्वं रक्षसा भीरु यतोऽपनीता तं मार्गमेताः कृपया लता मे।
अदर्शयन्वक्तुमशक्नुवत्यः शाखाभिरावर्जितपल्लवाभिः ॥ २४ ॥

हे भीरु, राक्षस तुमको हर कर जिस मार्ग से ले गया यह मार्ग कृपाकर इन लताओं ने मुझे बतलाया था। वे बोल नहीं सकती थीं, पर पल्लवहीन शाखाओं के द्वारा इन्होंने बतलाया।

मृग्यश्च दर्भाङ्कुरनिर्व्यपेक्षास्तवागतिज्ञं समबोधयन्माम्।
व्यापारयन्त्यो दिशि दक्षिणस्यामुत्पक्ष्मराजीवविलोचनानि ॥ २५ ॥

तुम्हारा पता मुझे इन मृगियों ने बताया। इन्हों ने घास खाना छोड़ दिया, और विकसित कमल के समान अपनी आँखें दक्षिण दिशा की ओर उठायीं, इससे तुम्हारा दक्षिण दिशा में जाना मुझे मालूम हुआ।

एतद्गिरेर्माल्यवतः पुरस्तादाविर्भवत्यम्बरलेखि शृङ्गम् ।
नवं पयो यत्र घनैर्मया च त्वद्विप्रयोगाश्रु समं विसृष्टम् ॥ २६ ॥

इस माल्यवान् पर्वत के आगे जो आकाश को छूने वाला पर्वत का शिखर दिखायी पड़ता है, वहां मेघों ने तो नवीन जल बरसाया और मैंने तुम्हारे वियोग से उत्पन्न आंसू।

गन्धश्च धाराहतपल्वलानां कादम्बमर्धोद्गतकेशरं च ।
स्निग्धाश्च केकाः शिखिनां बभूवुर्यस्मिन्नसह्यानि विना त्वया मे ॥२७॥

जहां तुम्हारे विना मुझे ये सब चीज़ें असह्य मालू पड़ती थी—वृष्टि के कारण छोटे छोटे जलाशयों से उत्प गन्ध, अर्धविकसित कदम्ब पुष्प और मयूरों की मनोह कूक।

पूर्वानुभूतं स्मरता च यत्र कम्पोत्तरं भीरु तवोपगूढम्
गुहाविसारीण्यतिवाहितानि मया कथंचिद्घनगर्जितानि ॥ २८ ॥

भीरु, उस समय पहले का अनुभूत तुम्हारा सकम्प आलिङ्गन मैंने स्मरण किया और उसी स्मृति से गुहा में फैलनेवाला मेघगर्जन का समय मैंने किसी प्रकार बिताया।

आसारसिक्तक्षितिबाष्पयोगान्मामक्षिणोद्यत्र विभिन्नकोशैः ।
विडम्ब्यमाना नवकन्दलैस्ते विवाहधूमारुणलोचनश्रीः ॥ २९ ॥

उस शिखर पर मैंने विकसित कन्दली के नये पुष्प देखे वृष्टि से सींची हुई भूमि के भाफ के कण उसमें लगे हुए थे उनको देखने से मुझे विवाह के धूम से लाल हुई तुम्हारी आंखों का स्मरण हो गया और उससे मुझे बड़ा कष्ट हुआ।

उपान्तवानीरवनोपगूढान्यालक्ष्यपारिप्लवसारसानि ।
दूरावतीर्णा पिबतीव खेदादमूनि पम्पासलिलानि दृष्टिः ॥ ३० ॥

यह पम्पा का जल समीपस्थ बेतस वन से छिपा हुआ है। पर चञ्चल सारस थोड़ा दिखायी पड़ते हैं। उस पम्पा जल को दूर से पड़ी हुई मेरी दृष्टि मानों थक कर पान कर रही है अर्थात् वहाँ से हटना नहीं चाहती।

अत्राविमुक्तानि रथाङ्गनाम्नामन्योन्यदत्तोत्पलकेसराणि।
द्वन्द्वानि दूरान्तरवर्तिना ते मया प्रिये सस्पृहमीक्षितानि ॥३१॥

यहाँ पम्पासर पर मैंने अवियुक्त चक्रवाक दम्पती को देखा था। वे आपस में एक दूसरे को कमल केशर दे रहे थे उनको तुमसे दूर रहने वाले मैंने बड़ी स्पृहा से देखा था।

इमां तटाशोकलतां च तन्वीस्तनाभिरामस्तवकाभिनम्राम्।
त्वत्प्राप्तिबुध्या परिरब्धुकामः सौमित्रिणा साश्रुरहं निषिद्धः ॥३२॥

इस पतली पम्पातीर की अशोकलता को, जो गुच्छरूपी स्तनों के कारण नय गयी है, देख कर मैंने समझा कि तुम मिल गई और आलिंगन करने के लिए चला, पर रोते हुए लक्ष्मण ने मुझे वैसा करने से रोक दिया।

अमूर्विमानान्तरलम्बिनीनां श्रुत्वा स्वनं काञ्चनकिङ्किणीनाम्।
प्रत्युद्व्रजन्तीव खमुत्पतन्त्यो गोदावरीसारसपङ्क्तयस्त्वाम् ॥ ३३ ॥

विमान के भीतर लटकनेवाली सुवर्ण की घंटियों का शब्द सुन कर आकाश में उड़ने वाली यह गोदावरी के सारसों की पंक्ति तुम्हारी ओर आ रही है।

एषा त्वयापेशलमध्ययापि घटाम्बुसंवर्धितबालचूता
आनन्दयत्युन्मुखकृष्णसारा दृष्टा चिरात्पञ्चवटी मनो मे ॥ ३४॥

यह पंचवटी है, जहाँ छोटे छोटे आम के वृक्षों को घड़े के जल से तुमने बढ़ाया था, जिसमें कृष्णमृग ऊपर की ओर

रहे रहे हैं। बहुत दिनों पर देखने के कारण यह पंचवटी मुझे आनन्दित कर रही है।

अत्रानुगोदं मृगयानिवृत्तस्तरंगवातेन विनीतखेदः।
रहस्त्वदुत्सङ्गनिषण्णमूर्धा स्मरामि वानीरगृहेषु सुप्तः॥ ३५॥

यहाँ गोदावरी के तीर पर मैं शिकार से लौट कर आया। गोदावरी की तरंगों से मेरी थकावट दूर हुई और तुम्हारी गोद में मैं सोगया। मैं बेतस गृह का अपना सोना स्मरण करता हूँ।

भ्रूभेदमात्रेण पदान्मघोनः प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार।
तस्याविलाम्भःपरिशुद्धिहेतोर्भौमो मुनेःस्थानपरिग्रहोऽयम्॥३६॥

जिन्होंने भृकुटि के संचालन मात्र से नहुष को इन्द्रपद से हटा दिया था, उस मुनि का—जो गोद ले जल को शुद्ध बनाते हैं यह पृथ्वी का स्थान है, अर्थात् अगस्त्य का आश्रम है।

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम्।
घ्रात्वा हविर्गन्धिरजोविमुक्तः समश्नुते मे लघिमानमात्मा॥३७॥

उस महर्षि के तीनों अग्नियों का धूम जिसमें हवि की गन्ध है, विमानमार्ग तक आरहा है, उसके सूँघने से मेरा मन निष्पाप होगया है और वह हलका मालूम पड़ता है।

एतन्मुनेर्मानिनि शातकर्णेः पञ्चाप्सरो नाम विहारवारि
आभाति पर्यन्तवनं विदूरान्मेघान्तरालक्ष्यमिवेन्दुबिम्बम्॥ ३८॥

हे मानिनी, यह शातकर्णी मुनि के पञ्चाप्सर नामक क्रीड़ासर है जो चारों तरफ़ से वन से घिरा हुआ, मेघों से छिपे चन्द्रमा के समान मालूम पड़ता है।

पुरा स दर्भाङ्कुरमात्रवृत्तिश्चरन्मृगैः सार्धमृषिर्मघोना ।
समाधिभीतेन किलोपनीतः पञ्चाप्सरोयौवनकूटबन्धम् ॥३९॥

पहले ये मुनि दर्भाङ्कुर खाते थे और मृगों के साथ रहते थे। इनकी तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र ने पाँच अप्सराओं को भेज कर कपट जाल रचा था।

तस्यायमन्तर्हितसौधभाजः प्रसक्तसंगीतमृदङ्गघोषः ।
वियद्गतः पुष्पकचन्द्रशालाः क्षणं प्रतिश्रुन्मुखराः करोति ॥४०॥

छिपी हुई अटारी में रहनेवाले इस मुनि के यहाँ सदा बजनेवाले मृदङ्ग का शोर, पुष्पक विमान के ऊपरवाले कमरे को प्रतिध्वनित कर रहा है।

हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटंतपसप्तसप्तिः ।
असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णश्चरितेन दान्तः ॥४१॥

सौम्यचरित सुतीक्ष्ण नाम के ये दूसरे तपस्वी तपस्या करते हैं, ये पंचाग्नि तप कर रहे हैं, पंचाग्नि में चार तो अग्नि हैं और पाँचवाँ सूर्य है।

अमुं सहासप्रहितेक्षणानि व्याजार्धसंदर्शितमेखलानि ।
नालं विकर्तुं जनितेन्द्रशङ्कं सुराङ्गनाविभ्रमचेष्टितानि ॥४२॥

यद्यपि इनकी तपस्या से भी इन्द्र को शङ्का होगयी है, इसने इनके लिए भी अप्सरायें भेजी हैं। पर मुस्कुराहट और तिरछी चितवन से देखना, फिर बहाने करधनी का दिखलाना तथा उनके और विलास व्यवहार इनको विचलित नहीं कर सके।

एषोऽक्षमालावलयं मृगाणां कण्डूयितारं कुशसूचिलावम्
सभाजने मे भुजमूर्ध्वबाहुः सव्येतरं प्राध्वमितः प्रयुङ्क्ते ॥४३॥

ये ऊर्ध्व बाहु हैं, हमारे स्वागत के लिए इन्होंने
भुजा हमारी ओर उठायी है, उसमें अक्षमाला का
धारण किया है और वह हाथ मृगों की खुजलाहट दूर
है तथा कुश लाता है ।

वाचंयमत्वात्प्रणतिं ममैष कम्पेन किंचित्प्रतिगृह्य मूर्ध्नः ।
दृष्टिं विमानव्यवधानमुक्तां पुनः सहस्रार्चिषि संनिधत्ते ॥४

ये मौनी हैं, इस कारण शिर थोड़ा हिला कर इन्होंने
प्रणाम ग्रहण किया है, विमान के व्यवधान से मुक्त हुई दृष्टि
पुनः सूर्य की किरणों में ये लगाते हैं ।

अदः शरण्यः शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः ।
चिराय संतर्प्य समिद्भिरग्निं यो मन्त्रपूतां तनुमप्यहौषीत् ॥४५

यह अग्निहोत्री शरभंग मुनि का पवित्र तपोवन है
जहाँ शरणार्थियों की रक्षा होती है। लकड़ियों से बहुत
दिनों तक अग्नि को सन्तुष्ट कर जिसने अन्त में मन्त्रपूत
अपने शरीर का भी हवन कर दिया ।

छायाविनीताध्वपरिश्रमेषु भूयिष्ठसंभाव्यफलेष्वमीषु ।
तस्यातिथीनामधुना सपर्या स्थिता सुपुत्रेष्विव पादपेषु ॥४६॥

आज शरभंग के अतिथियों की परिचर्या सुपुत्र के समान
उनके आश्रम के वृक्षों पर है, ये वृक्ष अपनी छाया द्वारा पथिकों
के परिश्रम को दूर करते हैं, और अनेक प्रकार के फल देते हैं।
अर्थात् महर्षि अब नहीं हैं ।

धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्कः ।
बध्नाति मे बन्धुरगात्रि चक्षुर्दृप्तः ककुद्मानिव चित्रकूटः ॥४७॥

दरीरूपी मुख से धारा शब्द हो रहा है, जिसके शृङ्ग
(शिखर या सींग) मेघ रूपी पङ्क लगा हुआ है, हे बन्धुरगात्रि,

गात्रि, यह चित्रकूट पर्वत मस्त बैल के समान मेरी आँखों को बांध रहा है।

> एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी।
> मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमेः ॥ ४८ ॥

यह मन्दाकिनी नदी बहुत दूर होने के कारण छोटी मालूम पड़ती है, इसका प्रवाह सुन्दर और निश्चल है, पर्वत के पास यह नदी पृथ्वी के गले में पड़ी हुई मोतियों की माला के समान मालूम पड़ती है।

> अयं सुजातोऽनुगिरं तमालः प्रवालमादाय सुगन्धि यस्य।
> यवाङ्कुरापाण्डुकपोलशोभी मयावतंसः परिकल्पितस्ते ॥ ४९ ॥

पर्वत के पास सुन्दर उत्पन्न हुआ यह तमाल वृक्ष दिखाई पड़ता है, जिसके सुगन्धित पल्लव लेकर यवाङ्कुर के समान पीले तुम्हारे कपोलों पर शोभने वाला कर्णभूषण मैंने बनाया था।

> अनिग्रहत्रासविनीतसत्त्वमपुष्पलिङ्गात्फलबन्धि वृक्षम्।
> वनं तपः साधनमेतदत्रेराविष्कृतोदग्रतरप्रभावम् ॥ ५० ॥

यह अत्रि मुनि की तपस्या का वन है, जहाँ उनका विशाल प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। बिना दण्ड और भय के ही यहाँ के जन्तु विनीत हैं और पुष्प के बिनाही वृक्ष फल देते हैं।

> अत्राभिषेकाय तपोधनानां सप्तर्षिहस्तोद्धृतहेमपद्माम्।
> प्रवर्तयामास किलानुसूया त्रिस्रोतसं त्र्यम्बकमौलिमालाम् ॥ ५१

अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया ने यहाँ तपस्वियों के स्नान आदि के लिए गंगा को प्रवाहित किया है, जिस गंगा से सप्तर्षिगण सुवर्ण-कमल तोड़ते हैं और जो गङ्गा शिवजी के मस्तक की माला है।

वीरासनैर्ध्यानजुषामृषीणाममीसमध्यासितवेदिमध्याः।
निवातनिष्कम्पतया विभान्ति योगाधिरूढा इव शाखिनोऽपि ॥५२॥

जिस वेदी पर वीरासन से बैठ कर ऋषि लोग ध्य करते हैं, उस वेदी पर के वृक्ष वायु के न होने के कार निष्कम्प हैं और वे योगी के समान मालूम पड़ते हैं।

त्वया पुरस्तादुपयाचितो यः सोऽयं वटः श्याम इति प्रतीतः।
राशिर्मणीनामिव गारुडानां सपद्मरागः फलितो विभाति ॥ ५३ ॥

तुमने पहले जिससे प्रार्थना की थी, यह वही प्रसिद्ध श्यामवट है, जो हरित मणि के राशि के समान मालूम होत है और फलने पर पद्मराग युक्त हरितमणि के राशि के समान मालूम पड़ता है।

क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा।
अन्यत्र माला सितपंकजानामिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ॥ ५४ ॥

गङ्गा और यमुना की तरङ्गों के आपस में मिलने से मालूम पड़ता है कि मुक्तामयी यष्टि में प्रकाशमान इन्द्रनील जड़े हों और श्वेत कमल की माला के समान मालूम पड़ता है उसके बीच बीच में नील कमल गूथे गये हों।

क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः।
अन्यत्र कालागुरुदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनकल्पितेव ॥ ५५ ॥

कहीं मानसरोवर के प्रेमी श्वेत हंसों की पंक्ति—जिसमें काले हंसों से मिली हुई सी मालूम होती है, और कहीं भूमियों पर चन्दन से चित्र बनाया गया है जो काले अगर की बीच बीच में रेखा खींची गयी सा मालूम पड़ता है।

क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबली कृतेव।
अन्यत्र शुभ्रा शरदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभःप्रदेशा ॥ ५६ ॥

कहीं छाया में छिपे अन्धकार से मिली हुई चन्द्रमा की प्रभा के समान और कहीं शरद् के शुभ्र मेघ के समान मालूम पड़ता है जिसके मध्य में आकाश दिखाई पड़ता है।

क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गैः ॥ ५७ ॥

कहीं महादेव के शरीर के समान मालूम पड़ती है, जिसमें काले सर्प लिपटे हैं और जो भस्म के कारण श्वेत है। हे सुन्दराङ्गि, यमुना की तरङ्गों से मिलने के कारण गङ्गा ऐसी मालूम पड़ती हैं, यह तुम देखो।

अभिज्ञानशाकुन्तल से

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया,
कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृश मही स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः ॥ ५८ ॥

आज शकुन्तला जायगी, इससे मेरा हृदय उत्कंठित हो गया है, गले में वाष्प के रुक जाने से आवाज़ नहीं निकलती, आँखों से कुछ दिखाई नहीं पड़ता। मैं वनवासी हूँ, फिर भी स्नेह के कारण इतना व्याकुल होगया हूँ। तब संसारी जन कन्या के नवीन वियोगदुःख से क्यों पीड़ित न होते होंगे।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्याभवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ ५९

वृक्षों को सम्बोधन करके महर्षि कण्व कहते हैं,
रन को बिना जल दिये जो स्वयं पहले जल न पीती
यपि उसको गहने प्यारे थे तथापि स्नेह से आप स
त्ते न तोड़ती थी, जब आप सब के पहले पहल फूल
ा, उस समय जो उत्सव करती थी, वह शकुन्तला
पने पतिगृह में जाती है, आप सब आज्ञा दें।

यस्य त्वया व्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविद्धे,
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते ॥ ६० ॥

जिस मृग को कुश का डाभ लगने से घाव होगया
र उसमें इङ्गुदी का तेल तुमने लगाया था, क्योंकि वह
व भरने के लिए प्रसिद्ध है, जिसको तुमने साँवा की
र पाला था, वह तुम्हारा कृत्रिम पुत्र मृग तुम्हारा स
ं छोड़ता।

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैःकुलं चात्मनः
त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम्,
सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया,
भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधूबन्धुभिः ॥ ६१ ॥

मुनि शकुन्तला के लिए राजा को सन्देशा कहते हैं—
। तपस्वी हैं इस बात को सोच कर अपने ऊँचे कुल

ओर देख कर और बान्धवों की आज्ञा के बिना भी इसने जो तुम पर प्रेम किया है, उसकी ओर देख कर तुम अपनी स्त्रियों में इसे साधारण प्रतिष्ठा का पद देना, इसके बाद जो कुछ है वह भाग्याधीन है, यह कन्या के स्वजनों के कहने की बात नहीं है।

शुश्रूषस्व गुरून् कुरु प्रियसखीवृत्तं सपत्नीजने,
भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः,
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः ॥ ६२ ॥

पतिगृह में जाने के समय मुनि ने शकुन्तला को उपदेश दिया—बड़ों की सेवा करो, अपनी सौतों से प्रियसखी के समान व्यवहार करो, पति यदि अपमान भी करें तो क्रोध से उनके विरुद्धाचरण मत करो, नौकर चाकरों के साथ उदारता पूर्वक व्यवहार करो। अपने भाग्य का गर्व मत करो, स्त्रियाँ इसी प्रकार गृहणी पद पाती हैं, इससे विपरीताचरण करनेवाली कुल की कण्टक होती हैं।

अर्थोहि कन्या परकीय एव
तामद्य सम्प्रेष्य परिगृहीतुः
जातो ममायं विशदः प्रकामं
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ ६३ ॥

कन्या परकीय धन है, उसको पति के पास भेज कर मेरी आत्मा हल्की होगयी है, जिस प्रकार किसी की थाती लौटाने पर आत्मा प्रसन्न होती है।

मेघदूत से

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धिमामम्बुवाहं
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्,
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्,
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ ६४ ॥

यक्ष मेघ से अपनी स्त्री से कहने के लिए सन्देश कह है। मैं तुम्हारे पति का मित्र हूँ, मुझे तुम मेघ समझो तुम्हारे पति का संदेश लेकर मैं आया हूँ, मेरा गर्जन सुन क मार्ग में विश्राम करनेवाले वे पथिक जाने के लिए जल्द करते हैं, जो अपनी स्त्री के वियोगिनी चिन्ह वेणी बंध खुल वाने के लिए उत्सुक रहते हैं।

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य संभाव्य चैव,
श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्यसीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः संगमात् किंचिदूनः ॥ ६५ ॥

जब तुम ऐसा कहोगे तो वह हनुमान को जानकी के समान उत्कण्ठित होकर तुम्हारी ओर देखेगी और तुम्हारा सत्कार करेगी। इसके पश्चात् सावधान होकर तुम्हारी बातें सुनेगी। सौम्य स्त्रियों के लिए पति का संदेश उसके मित्र के द्वारा यदि मिले तो संगम से थोड़ा ही कम है।

तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ६६ ॥

अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः ॥ ६९ ॥

गेरू आदि धातुओं से पत्थर पर मैं तुम्हारी प्रणय कुपि
मूर्ति अङ्कित करता हूँ, और उस मूर्त्ति के चरणों पर ज
पड़ना चाहता हूँ उस समय आँसू से आँखें भर जाती हैं,
भाग्य ऐसी दशा में भी हम लोगों का सङ्गम नहीं देख सक

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु,
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थली देवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिशलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ७० ॥

स्वप्न में जब कभी मैं तुमको पाता हूँ, तब गाढालिङ्गन
करना चाहता हूँ और गाढालिङ्गन करने के लिए आकाश
में—शून्य में हाथ बढ़ाता हूँ, मेरी यह दशा देख कर वन देव
ताओं के बड़े बड़े अश्रुबिन्दु वृक्षों के पत्तों पर गिरते हैं।

भित्त्वा सद्यः किशलयपुटान् देवदारुद्रुमाणाम्
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ७१ ॥

देवदारू वृक्ष के पत्तों से होकर और उसके दूध से सुग
जो हिमालय की वायु दक्षिण की ओर से चलती है उसक
इस अभिप्राय से आलिङ्गन करता हूँ कि पहले इस वा
तुम्हारे अंगों का संयोग हुआ होगा।

कुमारदास

इन्होंने जानकीहरण नाम का काव्य लिखा है, इनका यह काव्य कालिदास के काव्यों के बराबरी का है। महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में इस प्रकार लिखा है:—

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति
कविः कुमारदासो वा रावणो वा यदि क्षमौ।

कुछ लोगों का कहना है कि ये कुमारदास सिंहल के राजा थे और कालिदास के मित्र थे। छठी सदी में कुमारदास नाम का एक राजा सिंहल द्वीप में था, इसका पता मिलता है। सम्भव है तीन कालिदासों में का दूसरा या तीसरा कालिदास इनका मित्र भी रहा हो। सतीशचन्द्र विद्याभूषण ने बतलाया है कि कालिदास की समाधि का पता सिंहल में लगा है।

जो हो, इन बातों से यह मानना कि रघुवंश कर्ता कालिदास के मित्र कुमारदास थे यह ठीक नहीं; क्योंकि दोनों के समय में विशेष अन्तर है। हां सिंहल के राजा की रामचन्द्र में ऐसी प्रगाढ़ भक्ति का होना अवश्य ही एक आश्चर्य की बात है।

कुमारदास की कविता बड़ी ही सरस और स्वाभाविक होती थी, इन्होंने अपना काव्य रघुवंश को आदर्श मान कर बनाया है, दुःख की बात है कि आज इसका प्रचार नहीं। इनके कुछ श्लोक सुनिये।

शिशिरशीकरवाहिनि मारुते
चरति शीतभयादिव सत्वरः।

मनसिजः प्रविवेश वियोगिनी-
हृदयमाहितशोकहुताशनम् ।

शिशिर ऋतु में ठंढे जलकण लेकर जब हवा बहती थी तब शीत के भय से कामदेव शीघ्रही वियोगिनियों के हृदय में घुस गया, क्योंकि वियोगिनियों के हृदय में शोकाग्नि रक्खी हुई है।

भ्रान्त्वा चिरत्वाप्य दक्षिणाशा,
मालम्ब्य सर्वत्र करप्रसारी,
ऋत्विक्ततो निःस्व इव प्रतस्थे
वसूपलब्ध्यै धनदस्य काष्ठाम् ।

दरिद्र पुरोहित जिस प्रकार दक्षिणा की आशा से चारों तरफ हाथ फैलाता फिरता है और धन के लिए दाता के पास जाता है। उसी प्रकार सूर्य दक्षिणाशा दक्षिण दिशा में घूम कर उसने सब जगह कर—हाथ फैलाये और प्रकाश प्राप्त करने के लिए कुबेर की दिशा—उत्तर दिशा में चला गया।

अयि विजहीहि दृढोपगूहनं
त्यज नवसंगमभीरु वल्लभं,
अरुणोद्गम एष वर्तते
वरतनु सम्प्रवदन्ति कुक्कुटाः,

दृढ़ आलिङ्गन अब छोड़ो, नवसंगम से डरने वाली, छोड़ो यह अरुणोदय होरहा है, कुक्कुट बोल रहे हैं।

पश्यन इतो मन्मथकृशितानैः
शक्तो विधातुं न निमीलय चक्षुः
स्तन विधाता हि कृतो कथं ना-
स्थितवान् भवनं सुमनोभिर्नवं।

यदि देखता हुआ बनाता तो कामदेव के दृष्टिपात से अवश्य मारा जाता और आँखें बन्द कर बनाने की उसमें शक्ति ही नहीं है, फिर ब्रह्मा ने जंघा कैसे बनाये, यह बुद्धिमानों का उसके विषय में वितर्क है।

वयः प्रकर्षादुपचीयमान-
स्तनद्वयस्योद्वहनश्रमेण
अत्यन्तकार्श्यं वनजायताक्ष्या
मध्यो जगामेति ममैष तर्कः।

उमर के साथ साथ बढ़ने वाले स्तनों के ढोने के परिश्रम से उस कमलाक्षी की कमर पतली होगयी है, यह मेरा तर्क है।

कृष्णमिश्र यति

इन्होंने प्रबोधचन्द्रोदय नाम का एक नाटक बनाया है। कीर्तिवर्मा नाम के चालुक्य राजा के आश्रय में ये रहते थे। कीर्तिवर्मा "चन्द्रान्वय" कहे जाते थे, चालुक्य वंशवाले अपने को चन्द्रवंशी समझते हैं इसी कारण कीर्तिवर्मा का विशेषण "चन्द्रान्वय" था, कल चूरी वंश का राजा कर्ण कीर्तिवर्मा का शत्रु था। उसने कीर्तिवर्मा को पराधीन बना दिया था, पुनः उसके सेनापति ने इन्हें स्वाधीन बनाया, ये ग्यारहवीं ई० सदी में उत्पन्न हुए थे।

कृष्णमिश्र का प्रबोध चन्द्रोदय धार्मिक नाटक है, उसमें कामक्रोध आदि कुवृत्तियों के आस्फालन का वर्णन है, क्षमा सन्तोष आदि से होनेवाले लाभ भी बतलाये गये हैं, अन्त में ब्रह्मतत्व का भी निरूपण अच्छे ढंग से किया गया है। यह नाटक भक्तिप्रधान है।

पुत्राभिरक्षणतोर महोदराणाम्
गुरूणां जगति वैरमिति प्रसिद्धम्,
कृष्णीनिमित्तनगरकुलाम्बराणाम्,
तीमन्तणादि सुरनशरहरि पः ।

एक वस्तु की चाह से सहोदर भाइयों में भी वैर होजा
है यह प्रसिद्ध है। द्रौपदी के ही कारण कौरव पाण्डवों
कठिन विरोध हुआ था और उसमें संसार का नाश हुआ

सहजमलिनवक्रभावभाजां
भवति भवः प्रभवात्मनाशहेतुः ।
जलधरपदवीमवाप्य धूमो
ज्वलनविनाशमनुप्रयाति नाशम् ।

स्वभाव से नीच और कुटिल प्रकृतिवाले मनुष्यों
जन्म अपने और अपने कुल के नाश के लिए होता है। धू
मेघ बन कर पहले अग्नि का नाश करता है पुनः स्वयम्
नष्ट होजाता है ।

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि,
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि ।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति,
धीमानधीतमपि न प्रतिसन्दधाति ।

क्रोध कहता है कि मैं लोगों को अन्धा बना देता हूं
बहरा बना देता हूं, मैं ऐसा कर देता हूं जिससे मनुष्य अपन
कर्त्तव्य भूल जाता है, बुद्धिमान मनुष्य भी पढ़े हुए विषयों क
स्मरण नहीं कर सकता है ।

ध्यायन्ति यां सुखिनि दुःखिनि चानुकम्पां
पुण्यक्रियासु मुदितां कुमतावुपेक्षाम् ।
एवं प्रसादमुपयाति हि रागलोभ-
क्षेपादिदोषकलुषोऽप्ययमन्तरात्मा ।

जो सुखियों से मैत्री, दुखियों से प्रेम, पुण्य से प्रसन्नता का अनुभव और कुबुद्धि की उपेक्षा करते हैं उनका अन्तरात्मा, राग लोभ द्वेष आदि दोषों से कलुषित होने पर भी शुद्ध हो जाता है।

प्रायः सुकृतिनामर्थे देवायान्ति सहायताम्,
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति।

पुण्यात्माओं के कार्यों में प्रायः देवता लोग भी सहायता करते हैं और कुमार्ग जानेवाले का साथ सहोदर भाई भी छोड़ देता है।

श्रमो न वाचां शिरसो न शूलं
न चित्ततापो न तनो विमर्दः
न चापि हिंसादिरनर्थयोगः
श्लाघ्या परं क्रोध जयेऽहमेका।

वचन को परिश्रम नहीं करना पड़ता। शिर में दर्द ही होता है, चित्त को भी दुःख नहीं होता, शरीर के टूटने फूटने का भी भय नहीं रहता, हिंसा आदि पापों के होने का भी भय नहीं रहता, केवल मैं ही (क्षमा) क्रोध को जीतने के लिए उत्तम साधन हूँ।

तं पापकारिणमकारणबाधितारं
स्वाध्यायदेवपितृयज्ञतपःक्रियाणाम्
क्रोधस्फुलिङ्गमिव दृष्टि भिरुद्वमन्तं
कात्यायनीवमहिषं विनिपातयामि।

उस पापी को जो बिना कारण स्वाध्याय, देव यज्ञ पितृयज्ञ आदि क्रियाओं को नष्ट करता है, आखों से अग्नि स्फुलिंग उगलता है जिस प्रकार कात्यायनी ने महिषा सुर को मारा था—मैं (क्षमा) पछाड़ूंगी।

प्रासादिकानामेव महोदराणाम्
शुश्रुम्भे जगति पैमिति प्रसिद्धम्
पृथ्वीनिमित्तमभवत्कुरुपाण्डवानाम्
तीव्रस्तथाहि सुमहानविग्रहोऽयं यः।

एक वस्तु की चाह में महोदर भाइयों में है यह प्रसिद्ध है। पृथिवी के ही कारण कौरव कठिन विरोध हुआ था और उसमें संसार का

सहजमलिनवक्रभावभाजां
भवति भवः प्रभवात्मनाशहेतुः
जलधरपदवीमवाप धूमो
ज्वलनविनाशमनुप्रयाति नाशम्।

स्वभाव से नीच और कुटिल प्रकृतिवाले जन्म अपने और अपने कुल के नाश के लिए मेघ बनकर पहले अग्नि का नाश करता है पुन नष्ट होजाता है।

अन्धीकरोमि भुवनं बधिरीकरोमि,
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि।
कृत्यं न पश्यति न येन हितं शृणोति,
धीमानधीतमपि न प्रतिसन्दधाति।

क्रोध कहता है कि मैं लोगों को अन्धा बहरा बना देता हूं, मैं ऐसा कर देता हूं जिससे मनुष्य कर्त्तव्य भूल जाता है, बुद्धिमान मनुष्य भी पढ़े हुए का स्मरण नहीं कर सकता है।

ध्यायन्ति यां सुखिनि दुःखिनि
पुण्यक्रियासु मुदितां
एवं प्रसादमुपयाति हि
द्वेषादिदोषकलुषोऽ

क्षेमेन्द्र

ये कश्मीर के रहनेवाले थे। काश्मीरराज अनन्तराज के समय में इन्होंने समय मातृका नामका एक ग्रन्थ बनाया था। ये दसवीं सदी के समझे जाते हैं। ये बहुत बड़े पंडित लोक-व्यवहार–चतुर सुकवि और परिश्रमी थे, इन्होंने बौद्ध-साहित्य की भी पुस्तकें लिखी हैं। इनके बनाये तीस ग्रन्थों का पता अभी तक मिला है।

क्षेमेन्द्र के बनाये ग्रन्थ

१ अमृततरंग काव्य,	१६ बोधिसत्वावदानकल्पलता
२ अवसरसार,	१७ भारतमंजरी,
३ औचित्यविचार चर्चा,	१८ मुक्तावली,
४ कनकजानकी,	१९ राजावली,
५ कलाविलास	२० रामायणमंजरी,
६ कविकंठाभरण,	२१ लावण्यवती,
७ चतुर्वर्गसंग्रह,	२२ लोकप्रकाशकोश
८ चारुचर्या,	२३ वात्स्यायनसूत्रसार,
९ चित्रभारत,	२४ व्यासाष्टक,
१० दशावतार चरित,	२५ शशिवंशमहाकाव्य,
११ देशोपदेश,	२६ समय मातृका,
१२ नीतिकल्पतरु,	२७ सुवृत्त तिलक,
१३ पद्यकादंबरी,	२८ सेव्यसेवकोपदेश,
१४ पवनपंचाशिका,	२९ शिवसूत्रविमर्शिनी
१५ बृहत्कथा मंजरी,	३० स्पन्दनिर्णय,

शैव बौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शैव थे और पुनः बौद्ध हो गये थे। इनके कतिपय ग्रन्थों में इनका शिवानुराग और कतिपय ग्रन्थों में बुद्धानुराग दीख पड़ता है। दोनों दर्शनों से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं।

प्रभुत्वे पेशलता गुणेप्रणयिता हर्षे निरुत्सेकता
मंत्रे संवृतता श्रुतौ सुमतिता वित्तोदये त्यागिता।
साधौ सादरता खले विमुखता पापे परं भीरुता
दुःखे क्लेशसहिष्णुता च महतां कल्याणमाकांक्षति॥१॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हर्ष में निरभिमानिता, मन्त्र में गुप्ति, शास्त्रों में सुबुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, खलों से पराङ्मुखता, पापों से डर, दुःख में क्लेश सहन करने की शक्ति ये सब गुण महात्मा को कल्याण देने वाले हैं।

साभिमानमसंभाव्यमौचित्यच्युतमप्रियम्
दुःखावमानदीनं वा न वदन्ति गुणोन्नताः॥२॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अथवा दीनतायुक्त हो।

मते विवादं विमतिं विवेके सत्येतिशंकां विनये विकारम्
गुणेवमानं कुशले निषेधं धर्मे विरोधं न करोति साधुः॥३॥

मत में विवाद, विवेक में मतभेद, सत्य में सन्देह, विनय में दुर्भावना, गुण में अपमान, कुशल का निषेध और धर्म का विरोध सज्जन मनुष्य कभी नहीं करते।

न्यायः खलैः परिहृतश्चलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुष एव परं प्रवृत्तः ।
प्रायेण दुर्जनजनः प्रभविष्णुरेव निश्चक्रिकः परिभवास्पदमेव साधुः ॥ ४ ॥

खलोंने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पापरूपी कलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान हुए और छलकपटहीन सज्जन पुरुषों का पराजय हुआ।

पात्रं पवित्रयति नैव गुणान्क्षिणोति स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते ।
दोषावसानरुचिरश्चलतां न धत्ते सत्संगमः सुकृतिसद्मनि कोपि दीपः ॥५॥

पात्र को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की बत्ती) नष्ट नहीं करता, स्नेह (तेल या प्रेम) का नाश नहीं करता, कालिख (बुराई या कालिख) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को (दोषा रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल नहीं होता। यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सज्जनों के घर में रहता है।

जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुत्थिताः
किं कनिष्ठा उत ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥ ६ ॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में नम्र, और जीवन ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या अरहट से छोटे हैं या बड़े? जल लेना होता है तो अरहट नम्र होजाती है और जल लेकर वह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी काम के समय नम्र होजाते हैं, और काम होजाने पर अलग हो जाते हैं।

सदा खण्डनयोग्याय सुपूर्णाशयाय च
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥ ७ ॥

शैव बौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शैव थे और पुनः बौद्ध हो गये थे। इनके कतिपय ग्रन्थों में इनका शिवानुराग और कतिपय ग्रन्थों में बुद्धानुराग दीख पड़ता है। दोनों दर्शनों से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं।

स्वाम्ये पेशलता गुणप्रणयिता हर्षे निरुत्सेकता
मंत्रे संवृतता श्रुतौसुमतिता वित्तोदये त्यागिता ॥
साधौ सादरता खले विमुखता पापे परं भीरुता
दुःखे क्लेशसहिष्णुता च महतां कल्याणमाकांक्षति ॥ १ ॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हर्ष में निरभिमानिता, मन्त्र में गुप्ति, शास्त्रों में सुबुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, खलों से पराङ्मुखता, पापों से डर, दुःख में क्लेश सहन करने की शक्ति ये सब गुण महात्माओं को कल्याण देने वाले हैं।

साभिमानमसंभाव्यमौचित्यच्युतमप्रियम्
दुःखावमानदीनं वा न वदन्ति गुणोन्नताः ॥ २ ॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अथवा दीनतायुक्त हो।

व्रते विवादं विमतिं विवेके सत्येतिशंकां विनये विकारम्
गुणेवमानं कुशले निषेधं धर्मे विरोधं न करोति साधुः ॥ ३ ॥

व्रत में विवाद, विवेक में मतभेद, सत्य में सन्देह, विनय में दुर्भावना, गुण में अपमान, कुशल का निषेध और धर्म का विरोध सज्जन मनुष्य कभी नहीं करते।

न्यायः खलैः परिहृतश्चलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुप एव परं प्रवृत्तः।
प्रायेण दुर्जनजनः प्रभविष्णुरेव निश्छिद्रकः परिभवास्पदमेव साधुः॥ ४॥

खलोंने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पाप-रूपी कलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान हुए और छलकपटहीन सज्जन पुरुषों का पराजय हुआ।

पात्रं पवित्रयति नैव गुणान्क्षिणोति स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते।
दोषावसानरुचिरश्चलतां न धत्ते सत्संगमः सुकृतिसद्मनि कोपि दीपः॥५॥

पात्र को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की बत्ती) नष्ट नहीं करता, स्नेह (तेल या प्रेम) का नाश नहीं करता, कालिख (बुराई या कालिख) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को (दोषा रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल नहीं होता। यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सज्जनों के घर में रहता है।

जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुत्थिताः
किं कनिष्ठा उत ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः॥ ६॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में नम्र, और जीवन ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या अरहट से छोटे हैं या बड़े? जल लेना होता है तो अरहट नम्र होजाती है और जल लेकर वह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी काम के समय नम्र होजाते हैं, और काम होजाने पर अलग हो जाते हैं।

सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च॥ ७॥

शैव बौद्ध दर्शनों में इनका अनुराग था, इस कारण कुछ लोगों की समझ है कि ये पहले शैव थे और पुनः बौद्ध हो गये थे। इनके कतिपय ग्रन्थों में इनका शिवानुराग और कतिपय ग्रन्थों में बुद्धानुराग दीख पड़ता है। दोनों दर्शनों से संबन्ध रखनेवाले ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं।

स्वाम्ये पेशलता गुणप्रणयिता हर्षे निरुत्सेकता
मंत्रे संवृतता श्रुतौ सुमतिता वित्तोदये त्यागिता ॥
साधौ सादरता खले विमुखता पापे परं भीरुता
दुःखे क्लेशसहिष्णुता च महतां कल्याणमाकांक्षति ॥ १ ॥

प्रभुता में निपुणता, गुणों में प्रेम, हर्ष में निरभिमानिता, मन्त्र में गुप्ति, शास्त्रों में सुबुद्धि, धन होने पर दान, साधुओं का आदर, खलों से पराङ्मुखता, पापों से डर, दुःख में क्लेश सहन करने की शक्ति ये सब गुण महात्माओं को कल्याण देने वाले हैं।

साभिमानमसंभाव्यमौचित्यरहितमप्रियम्
दुःखापमानदीनं वा न वदन्ति गुणाश्रिताः ॥ २ ॥

गुणी मनुष्य ऐसी बातें नहीं कहते जिनसे अभिमान जाहिर हो, जो असम्भव हो, उचित न हो, प्रिय न हो, दुःख अपमान अथवा दीनतायुक्त हो।

ज्ञाने विवादं विमतिं विवेके सत्येऽतिशंकां विभवे विकारम्
गुणेऽवमानं कुशले निषेधं धर्मे विरोधं न करोति साधुः ॥ ३ ॥

ज्ञान में विवाद, विवेक में मतभेद, सत्य में सन्देह, दुर्भावना, गुण में अपमान, कुशल का निषेध विरोध सज्जन मनुष्य कभी नहीं करते।

न्यायः खलैः परिहृतश्चलितश्च धर्मः कालः कलिः कलुष एव परं प्रवृत्तः ।
प्रायेण दुर्जनजनः प्रभविष्णुरेव निश्छलिकः परिभवास्पदमेव साधुः ॥ ४ ॥

खलोंने न्याय नष्ट कर दिया, धर्म विचलित हुआ, पाप-रूपी कलियुग प्रवृत्त हुआ, प्रायः दुर्जन मनुष्य ही शक्तिमान हुए और छलकपटहीन सज्जन पुरुषों का पराजय हुआ।

पात्रं पवित्रयति नैव गुणान्क्षिणोति स्नेहं न संहरति नापि मलं प्रसूते ।
दोषावसानरचिरश्चलतां न धत्ते सत्संगमः सुकृतिसद्मनि कोपि दीपः ॥५॥

पात्र को पवित्र करता है, गुणों को (गुण या दीपक की बत्ती) नष्ट नहीं करता, स्नेह (तेल या प्रेम) का नाश नहीं करता, कालिख (बुराई या कालिख) भी उत्पन्न नहीं करता, दोषों को (दोषा रात्रि या दोष) समाप्त करना चाहता है और चञ्चल नहीं होता। यह सत्समागम रूपी एक अद्भुत दीप सज्जनों के घर में रहता है।

जीवनग्रहणे नम्रा गृहीत्वा पुनरुत्थिताः
किं कनिष्ठा उत ज्येष्ठा घटीयन्त्रस्य दुर्जनाः ॥ ६ ॥

जीवन (जल या प्राण) के ग्रहण करने में नम्र, और जीवन ग्रहण कर पुनः उठ खड़े होने वाले दुर्जन, क्या अरहट से छोटे हैं या बड़े? जल लेना होता है तो अरहट नम्र होजाती है और जल लेकर वह ऊँची होजाती है, इसी प्रकार दुर्जन भी काम के समय नम्र होजाते हैं, और काम होजाने पर अलग हो जाते हैं।

सदा खण्डनयोग्याय तुषपूर्णाशयाय च
नमोऽस्तु बहुबीजाय खलायोलूखलाय च ॥ ७ ॥

खल और उलूखल दोनों को नमस्कार, दोनों ही खण्डन (कांडना या खण्डन) के योग्य हैं, दोनों के हृदय में तुष (भूसा या दुर्विचार) भरा हुआ है और दोनों ही अनेक बीज वाले हैं।

जिह्वादूषितसत्पात्रः पिण्डार्थी कलहोत्कटः ॥
शुन्यतामशुचिर्नित्यं बिभर्ति पिशुनः शुनः ॥ ८ ॥

चुगल कुत्ते के समान है, क्योंकि दोनों ही अपनी जीभ से सत्पात्र (शुद्धपात्र या सज्जन मनुष्य) को दूषित करते हैं, दोनों टुकड़े के अभिलाषी होते हैं, कलह करने में पक्के होते हैं और दोनों ही सदा अशुद्ध रहते हैं।

अहो बत खलः पुण्यैर्मूर्खोऽप्यद्भुतपण्डितः ।
स्वगुणोदीरणे शेषः परनिन्दासु वाक्पतिः ॥ ९ ॥

खल, भाग्यवश मूर्ख होने पर भी अद्भुत पण्डित है, यह आश्चर्य है । यह अपने गुणों के कहने में शेष और दूसरों की निन्दा करने में बृहस्पति है।

खलः सुजनपैशुन्ये सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः
सर्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १० ॥

सज्जनों की चुगलखोरी करने में खल के सभी ओर आंख, सिर और मुंह होते हैं, सब ओर उसके कान हैं और सब को घेर कर वह रहता है।

मन्यागृहारे मूर्खस्य मात्सर्यगलरोगिणः
जिह्वा कङ्कमुखेनापि कृष्टा नैव प्रवर्तते ॥ ११ ॥

जिसके गले में मत्सरता नामक रोग हुआ है, उस मूर्ख की जिह्वा कङ्कमुख नामक यन्त्र के द्वारा खींची जाने पर भी नहीं खुलती।

मायामयः प्रकृत्यैव रागद्वेषमदाकुलः ॥
महतामपि मोहाय संसार इव दुर्जनः ॥ १२ ॥

संसार और दुर्जन दोनों ही समान हैं, दोनों मायामय हैं, स्वभाव से ही राग, द्वेष और मद से वे दोनों व्याकुल रहते हैं, इनसे बड़ों को भी मोह उत्पन्न हो जाता है।

खचित्रमपि मायावी रचयत्येव लीलया ॥
लघुश्च महतां मध्ये तस्मात्खल इतिस्मृतः ॥ १३ ॥

माया के द्वारा अनायास ही (ख) आकाश का भी चित्र वह बना लेता है, बड़ों के मध्य में वह लघु है, इसलिए खल कहा जाता है।

खलेन धनमत्तेन नीचेन प्रभविष्णुना ॥
पिशुनेन पदस्थेन हा प्रजे क गमिष्यसि ॥ १४ ॥

खल यदि धनी हो, नीच यदि शक्तिशाली हो, चुगल यदि अधिकारी हो तो इस प्रजा की क्या दशा होगी।

न लज्जते सज्जनवर्जनीयया भुजंगवक्रक्रिययापि दुर्जनः ॥
धियं इमायां समयाभिचारिणीं विदग्धतामेव हि मन्यते खलः ॥१५॥

सज्जनों के द्वारा गर्हित, चुगलखोरी के काम से भी दुर्जन मनुष्य लज्जित नहीं होते। खल मनुष्य छल कपट करनेवाली बुद्धि को विद्वत्ता ही समझते हैं।

साश्चर्यं युधि शौर्यमप्रतिहतं तत्खण्डिताखण्डलं,
यच्चोत्तानकरः कृतः स भगवान्दानेन लक्ष्मीपतिः ॥
धैर्यं स्वकराहतसप्तभुवनं लब्धाब्धिपारं यशः
सर्वं दुर्जनसंगमेन सहसा स्पष्टं विनष्टं बलेः ॥ १६ ॥

युद्ध में जिसका अप्रतिहत शौर्य था, जिससे इन्द्र भी परास्त होगये थे, जिसने दान के लिए, विष्णु से भी याञ्चा करने के लिए हाथ फैलवाया, अपने हाथों से जिसने सातों भुवनों का ऐश्वर्य पाया था, जिसका यश समुद्र पार तक गया हुआ था, उस बलि का भी शीघ्र ही दुर्जनों के साथ से नाश हो गया।

> शमयति यशः क्लेशं सूते दिशत्यशिवां गतिं
> जनयति जनोद्वेगायासं नयत्युपहास्यताम्
> भ्रमयति मतिं मानं हन्ति क्षिणोति च जीवितं
> क्षिपति सकलं कल्याणानां कुलं खलसंगमः ॥ १७ ॥

दुर्जनों का साथ यश नाश करता है, क्लेश उत्पन्न करता है, बुरी दशा बनाता है, मनुष्यों का उद्वेग और परेशानी बढ़ाता है, हँसी कराता है, बुद्धि को घुमाता है, मान नष्ट करता है, प्राणों को भी हर लेता है। इस प्रकार यह समस्त कल्याणों के समूह का नाश करता है।

> न शान्तान्तस्तृष्णा धनलवणवारिप्पतिकरैः
> क्षतच्छायः कायश्चिरविरसरूक्षाशनतया ॥
> अनिद्रामन्दाग्निर्नृपसलिलचौरानलभया—
> त्कदर्याणंकष्टं स्फुटमधमकष्टादपि परम् ॥ १८ ॥

धनरूपी खारे जल से मन की तृष्णा शान्त नहीं हुई, बहुत दिनों तक नीरस और रूखे भोजन से शरीर की कान्ति भी जाती रही, राजा जल चोर और जल के भय से अनिद्रा का रोग और मन्दाग्नि का रोग होगया है, इस प्रकार कृपणों को जो कष्ट होता है, वह दरिद्रों के कष्ट से भी बढ़ कर है।

तद्वक्त्राब्जजितः प्रसह्य भजते क्षैण्यं क्षपावल्लभ,—
स्तद्भ्रूविभ्रमतर्जितं च विनतिं धत्ते धनुर्मान्मथम् ॥
तस्याःपेलवपल्लवत् तिमुषा शोणाधरेणार्दितं
नूनं प्राप्य विरक्ततां वनमहो बिम्बं समालम्बते ॥ १९ ॥

उसके मुख से हार कर चन्द्रमा लाचारी से क्षीण हो रहा है, उसके भौंहों के विलास से तिरस्कृत होकर कामदेव का धनुष नम्र हो गया है, उसके कोमल पल्लवों के समान सुन्दर लाल ओठों से पीड़ित होकर बिम्बफल विरक्त होगया और उसने वन में आश्रय लिया, यह बिलकुल सत्य बात है।

जानेऽन्यासहितं विलोक्य कुटिलं तं कूटवेषं त्वया
प्रत्यक्षागमि निह्नवासहनया कोपेन दष्टोऽधरः ॥
श्वासायासविसंस्थुला न च कुचोत्कम्पं विमुञ्चत्यहो,
मोहाद्दुःसहविप्लवे चपलते किं प्रेषिता त्वं मया ॥ २० ॥

मालूम होता है कि तुमने कपट वेश धारण करने वाले उस (कुटिल हमारे प्रिय) को किसी दूसरी स्त्री के साथ देखा, इस प्रत्यक्ष अपराध को तुम छिपा न सकी और क्रोध से तुमने अपने होंठ काट डाले, श्वास की अधिकता से तुम व्याकुल होगयी हो और इस समय भी तुम्हारे स्तन कांप रहे हैं, हे चञ्चले मैंने मूर्खता वश तुमको भेजा। यह नयिका की उक्ति अपराधिनी दूति के प्रति है।

नखदशननिपातजर्जराङ्गी रतिकलहे परिपीड़िता प्रहारैः ॥
यदिह मरणमेव किं न यायाद्यदि न पिवेदधरामृतं प्रियस्य ॥ २१ ॥

नख और दांतों के लगने से अङ्ग जर्जर हो जाते हैं, रति कलह में प्रहारों से पीड़ित हो जाना पड़ता है, ऐसी दशा में मृत्यु ही हो जाती, यदि प्रिय का अधरामृत पान न किया जाता।

जाने कोपतरङ्गिताङ्गलतिका तेनाङ्कमालिङ्गिना
संस्पृष्टा कुचयोर्निरर्गलतया हारोपि पार्श्वे कृतः।
एतावत्तु सखि स्मरामि यदतो वृत्तं परं तत्परं
धैर्यस्योद्दलनं शरीरशमनं ध्यात्वापि नो वेद्मि किम्॥ २२॥

मैं यह जानती हूं कि कोप से कांपते हुए मेरे अङ्गों क उन्होंने आलिङ्गन किया था, मेरे स्तनों को छुआ था और गले के हार को भी एक वगल कर दिया था, हे सखि, इतना तो मुझे स्मरण है, इसके बाद जो हुआ उससे धीरता छूट जाती है, शरीर शिथिल हो जाता है और ध्यान करने पर भी उसे मैं समझ नहीं सकती।

मूर्छाच्छादितमीक्षते न नयनं तापे तनुः पच्यते,
कम्पः सूचयतीव जीवगमनं मोहे मनो मज्जति
प्राग्जन्मार्जित कर्मणा बलवता कालेन कामेन वा
को जानाति स केन मे धृतिहरः कण्ठे भुजंगोऽर्पितः॥ २३॥

मूर्छा से आँखें बन्द हैं वे देख नहीं सकतीं, शरीर अग्नि में पक रहा है, शरीर के कांपने से मालूम होता है कि अब प्राण ही चला जायगा, कुछ सुझायी नहीं पड़ता। पहले जन्मों के बलवान् कर्मों से, काल से या काम से मालूम नहीं किससे, यह मेरी धीरता को हरण करने वाला सांप मेरे गले में पड़ा। अर्थात् प्रिय का हाथ गले में पड़ा।

व्योम्नः श्यामा विरहिणस्तारकाश्रु कणावली।
बालमित्रकरोन्मृष्टा जगामादर्शनं शनैः॥ २४॥

श्याम (रात्रि या स्त्री) के विरही आकाश के अश्रुरूप में ये तारा फैली हैं। बालमित्र (बालसूर्य या बाल्यकाल का मित्र) के कर (हाथ या किरण) से पोछे जाने पर वह लुप्त हो जाता है।

यत्नात्संगममिच्छतोः प्रतिदिनं दूतीकृताश्वासयो-
रन्योन्यं परिशुष्यतोर्नवरतिप्राप्तिस्पृहां तन्वतोः ॥
संकेतोन्मुखयोः कथं कथमपि प्राप्ते चिरात्संगमे,
यत्सौख्यं नवरक्तयोस्तरुणयोस्तत्केन साम्यं व्रजेत् ॥ २५ ॥

यत्न पूर्वक संगम चाहने वाले को, प्रति दिन दूति से ढाढ़स बँधाए हुओं को, सूखते हुओं को, नवीन सुरत प्राप्ति की आशा रखते हुओं को, और संकेत स्थान की ओर उन्मुखों को, यदि बहुत दिनों पर भी संगम प्राप्त होजाय, तो उन तरुण नवीन अनुरागी स्त्री पुरुषों को जो सुख होता है उसकी तुलना किससे की जाय।

वित्तेन वेत्ति वेश्या स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम्
वित्तं विनापि वेत्ति स्मरसदृशं कुष्ठिनं जराजीर्णम् ॥ २६ ॥

वेश्या धन के कारण कोढ़ी और बूढ़े को भी कामदेव के समान समझती है और धन के बिना कामदेव के समान मनुष्य को भी वह कोढ़ी और बूढ़ा समझती है।

निन्द्यं जन्म प्रमोहस्थिरतरतमसां यन्मनुष्यत्वहीनं
बुद्ध्या हीनो मनुष्यः शुभफलविकलस्तुल्यचेष्टः पशूनाम् ॥
बुद्धिः पाण्डित्यहीना भ्रमति सदसतोस्तत्त्वचर्चाविचारे
पाण्डित्यं धर्महीनं शुकसदृशगिरा निष्फलक्लेशमेव ॥ २७ ॥

जिनका मोह के कारण अज्ञान दृढ़ होगया है उनका मनुष्यत्वहीन जन्म निन्दित है, निर्बुद्धि मनुष्य को कोई शुभ फल नहीं मिलते और वह पशु के समान है, विद्याहीन बुद्धि भी सत् और असत् के विचार में घूमा करती है वह कुछ निश्चय नहीं कर सकती। धर्महीन पाण्डित्य भी शुक की वाणी के समान केवल निष्फल क्लेश ही है।

धर्मः शर्म परत्र चेह च नृणां धर्मोऽन्धकारे रविः
सर्वापत्तिशमक्षमः सुमनसां धर्माभिधानो निधिः।
धर्मो बन्धुरबान्धवे पृथुपथे धर्मः सुहृन्निश्चलः
संसारोऽस्मरुस्थले सुरतरुर्नास्त्येव धर्मात्परः॥ २८

इस लोक में और परलोक में धर्म
अज्ञान अन्धकार के लिए धर्म सूर्य है, बन्धुहीन
धर्म ही बन्धु है, धर्म दृढ़ मित्र है, संसार रूपी
भूमि में धर्म से बढ़ कर कल्पवृक्ष दूसरा नहीं है

प्राणानां परिरक्षणाय सततं सर्वाः क्रियाः प्राणिनां,
प्राणेभ्योऽप्यधिकं समस्तजगतां नास्त्येव किञ्चित्
पुण्यंतस्यन शक्यते गणयितुं यः पूर्णकारुण्यवा
न्प्राणानामभयं ददाति सुकृतिस्ते चामहिंसा व्रत

'प्राणियों के सभी प्रयत्न अपने प्राणों की र
लिए ही सदा होते हैं। समस्त संसार को प्राणे
प्रिय कोई दूसरी वस्तु नहीं है, उसके पुण्यों को
हो सकती, जो पूर्ण दयालु प्राणों को आप
पुण्यात्मा हैं और उनका अहिंसाव्रत है।

शीलं शीलयतां कुलं कलयतां सद्भावमभ्यस्यतां,
व्याजं वर्जयतां गुणं गणयतां धर्मे धियं बध्नताम्
शान्तिं चिन्तयतां तमः शमयतां तत्त्वधृतिं शृण्वताम्
संसारे न परोपकारसदृशं पश्यामि पुण्यं सताम्

शील रखने वाले, कुल के अनुसार चलने वाले
अभ्यास करने वाले, छल कपट का त्याग करने
की गणना करने वाले, धर्म में रुचि रखने वाले

सुनने वाले सज्जनों के लिए इस संसार में परोपकार से बढ़कर दूसरा पुण्य नहीं है।

किं जीवावधिबन्धनैर्गुणगणैराराधितैर्बन्धुभि—
येंयान्त्यन्तदिने क्षणाश्रु पतनप्रत्यायनापात्रताम्।
सद्धर्माधिगमः क्रियाऽव्युपरमः सत्संगमः संयमः
पर्यन्तेप्यचला विरक्तमनसामेते सतां बान्धवाः ॥ ३१ ॥

मरण पर्यन्त बन्धनरूप इन गुणों से क्या लाभ, बन्धुओं की आराधना से भी क्या फल, जो अन्त समय में केवल आँसू बहाकर विश्वास उपजा देते हैं। सद्धर्म की प्राप्ति, कार्यों से निवृत्ति, सज्जनों का सङ्गम और संयम, ये विरक्त मनुष्यों के अन्त तक भी अचल रहते हैं, ये ही सज्जनों के बन्धु हैं।

विदेशेषु धनं विद्या व्यसनेषु धनं मतिः
परलोके धनं धर्मः शीलं सर्वत्रवै धनम् ॥ ३२ ॥

विदेश में धन विद्या है, आपत्ति में धन बुद्धि है, परलोक में धन धर्म है, और शील सब स्थानों में भूषण है।

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही वाजिमखस्य मध्ये।
दातुः फलं बन्धनमेव जातं नमोस्तु दैवाय यथेष्टकर्त्रे ॥ ३३ ॥

अश्वमेध यज्ञ में दान देनेवाला बलि है दान लेने—वाले स्वयं विष्णु हैं, और दान दी जानेवाली वस्तु पृथिवी है। पर दाता को फल बन्धन मिला, अर्थात् इस दान का फल स्वरूप बलि को बन्धन मिला। उस भाग्य को नमस्कार, जो जैसा चाहता है वैसा करता है।

भवति भिषगुपायैः पथ्यभुङ्नित्यरोगी
धनहरणविनिद्रश्छिद्रगोप्ता दरिद्रः।

अनयचयविधायी निश्चलैश्वर्यधैर्यः
स्ववशनिशितशक्तेः शासनेनैव धातुः ॥ ३४ ॥

वैद्य के बतलाये उपायों के अनुसार पथ्यपूर्वक रहने वाला सदा रोगी ही रहा करता है, जो सदा इधर उ धन कमाने में लगा रहता है और खर्च होने के मार्गों के देता है, वह दरिद्र होता है, अनेक प्रकार की अनीति करने सदा धनी और धीर बने रहते हैं। यह सब उसी महादेव इच्छा से होता है।

अम्भोधिःस्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां
मेरुर्मृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम् ॥
वन्हिः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया
स्वेच्छादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने दैवाय तस्मै नमः ॥ ३५ ॥

जिसकी इच्छा से समुद्र स्थल हो जाते हैं, स्थल समुद्र जाते हैं, धूलि के कण पर्वत हो जाते हैं, और मेरु पर्वत ठ के कण के समान हो जाता है, तृण वज्र के समान वज्र तृण के समान हो जाता है, आग शीतल ती है और बर्फ आग बन जाता है उस दैव को नमस अपनी इच्छा से सोख होकर अनेक प्रकार की लं करता है।

भ्रमसि किं मुधा क्वचन चित्त विश्रम्यतां
स्वयं भवति यद्यथा भवति तत्तथा नान्यथा ॥
तमननुस्मरन्नपि च भाव्यसंकल्पय—
अतर्कितगमागमाननुभवामि भोगानहम् ॥ ३६ ॥

, व्यर्थ क्यों घूम रहे हो, कहीं विश्राम करो, स्वयं जो है वह वैसाही होता है उसमें कुछ परिवर्तन।

नहीं होता, अतीत को भूल जाता हूँ, भावी की कल्पना भी नहीं कर पाता हूं, आकस्मिक आने जाने वाले भोगों का मैं अनुभव करता हूँ।

पुत्राप्यधिकं च विन्दति विभुर्भृत्यं हि भाग्योदये
पश्चात्सोपि तमेव निन्दति यथा शत्रुं विरुद्धे विधौ।
किं कष्टेन दिवानिशं विहितया भक्त्या भृशं सेवया
दैवाधिष्ठितमेव तिष्ठति फलं जन्तोःशुभं वाशुभम् ॥ ३७ ॥

भाग्योदय होने पर स्वामी को पुत्र से भी अच्छा भृत्य मिलता है और भाग्य के विरुद्ध होने पर उसी स्वामी को वही भृत्य शत्रु के समान देखता है, भक्ति पूर्वक दिन रात सेवा करने से क्या लाभ, जब कि मनुष्य को अच्छा या बुरा फल भाग्य के अनुसार ही होता है!

जीवन्त्यर्थक्षये नीचा याञ्चोपद्रववञ्चनैः।
कुलाभिमानमूकानां साधूनां नास्ति जीवनम् ॥ ३८ ॥

धन के नाश होने पर नीच मनुष्य भिक्षा डाँका और ठगी के द्वारा जीते हैं, पर कुलाभिमान के कारण चुप रहने वाले साधुओं का जीना कठिन है।

मद्गेहे मशकीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहणी वाच्यः किमन्यो जनः॥
इत्यापन्नशिशून्सून्विजडतः संवीक्ष्य झिल्लीरवै-
र्दूर्वातन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति ॥ ३९ ॥

मेरे घर में चूही मशकी के समान हो गयी है, बिल्ली चूही के समान होगयी है, कुत्ती बिल्ली के समान और गृहणी कुत्तों के समान हो गयी है, और के लिए क्या कहा जाय, दुःखी

आप्रासङ्गिक स्तुति के द्वारा कानों में शूल उत्पन्न करता है, अपनी दरिद्रता कहता है, फटा वस्त्र दिखाता है, छाया के समान चलता है, न आगे चलता है न पीछे और न बगल में, इस प्रकार दरिद्र मनुष्य धनियों को दुश्चिकित्स्य व्याधि के समान दुःख देता है ।

सत्ये शंकाचकितमनसो वंचकग्रामलीनाः
शैलस्थलोपकृतविफलाः स्वल्पदोषेऽतिकोपाः ।
मत्तोद्विग्नाः पिशुनवचसा धर्मनर्मोक्तिदुष्टाः
साधुद्विष्टाः प्रबलपुरुषाः सर्वथा भूमिपालाः ॥ ४३ ॥

राजा लोग ठगों के समूह में रहते हैं इस कारण सत्य को शङ्का की दृष्टि से देखते हैं, पत्थर के साथ किया उपकार जिस प्रकार विफल होता है उसी प्रकार राजा के प्रति किया उपकार भी विफल होता है, छोटे अपराध से भी वे बहुत क्रोध करते हैं, चुगली करनेवालों के वचन से सन्तुष्ट रहते हैं; धर्म की दिल्लगी करनेवाले, साधुओं के द्वेषी और खलों के साथी राजा लोग होते हैं ।

द्वारे रुद्धमुपेक्षते कथमपि प्राप्तं पुरो नेक्षते
विज्ञप्तौ गजमीलनानि कुरुते गृह्णाति वाक्यच्छलम् ।
निर्यातस्य करोति दोषगणनां स्वल्पापराधे यमः
सस्वामी यदि सेव्यते मरुतटे किं नः पिशाचैः कृतम् ॥ ४४ ॥

द्वार पर रुके हुए की उपेक्षा करते हैं, यदि किसी प्रकार सामने चला जाय तो उसकी ओर देखते नहीं, उसके निवेदनों पर आँखें बन्द करते हैं और इधर उधर की बातें करते हैं, चले जाने पर उसके दोषों की गणना करते हैं, थोड़े अपराध पर भी यमराज बन जाते हैं, यह स्वामी यदि सेवनीय है तो मरुस्थल के पिशाचों ने हमारा क्या बिगाड़ा है ।

गोवर्धनाचार्य

ये गीतगोविन्द कर्ता जयदेव कवि से प्राचीन हैं। जयदेव ने गीतगोविन्द में इनके विषय में लिखा है "शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धनस्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः" जयदेव कहते हैं कि शृङ्गार रचना में आचार्य गोवर्धन की समानता करनेवाला कोई प्रसिद्ध न हुआ। इससे गोवर्धनाचार्य की जयदेव से प्राचीनता सिद्ध होती है। बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन की सभा में गोवर्धनाचार्य भी थे, यह बात नीचे लिखे श्लोक से विदित होती है।

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च।

लक्ष्मणसेन ई० सन् की ग्यारहवीं सदी में हुए थे यह इतिहासज्ञों का कहना है।

आर्या सप्तसती नाम का एक ग्रन्थ इनका बनाया है। इसमें सात सौ आर्याछन्द के वृत्तों का संग्रह है। यह स्फुट श्लोकों का संग्रह है, इसमें किसी एक विषय को लेकर वर्णन नहीं किया गया है। वर्णन मनोहारी है, सरस है और काव्य के उत्तम गुणों से युक्त है। शृङ्गार के वर्णन में ये सिद्धहस्त हैं, इनका वर्णन मनोरम और आस्वाद्य होता है।

मा वम संवृणु विषमिदमिति सातङ्कं पितामहेनोक्तः
प्रातर्जयति सलज्जः कज्जलमलिना धरःशंभुः॥ १॥

प्रातःकाल (पार्वती के) अक्षिचुम्बन करने के कारण शिवजी के ओष्ठ पर कज्जल लगा था, ब्रह्मा ने समझा कि ये काला काला विष उगल रहे हैं, इसलिए डर कर उन्होंने कहा मत उगलो, निगल जाओ, यह सुनकर शिव लज्जित हो गये।

संध्यासलिलाञ्जलिमपि कङ्कणफणिपीयमानमविजानन्।
गौरीमुखार्पितमना विजयाहसितः शिवो जयति ॥ २ ॥

शिव ने सन्ध्या के लिए अञ्जलि में जल लिया था, और पार्वती के मुख की ओर उनका चित्त था, वे उधाती देख रहे थे, कङ्कण का सर्प वह जल पीने लगा, पर शिव को यह मालूम नहीं हुआ, यह देख विजया पार्वती की सखी हंसने लगी।

ब्रह्माण्डकुम्भकारं भुजगाकारं जनार्दनं नौमि।
स्फारे यत्फणचक्रे धरा शरावश्रियं वहति ॥ ३ ॥

ब्रह्माण्ड के कुम्भकार सर्पस्वरूप जनार्दन को नमस्कार, जिनके विशाल फण पर रखी हुई पृथिवी, शराव (मिट्टी परई) के समान मालूम पड़ती है।

विहितघनालंकारं विचित्रवर्णावलीस्फुरणम्।
शक्रायुधमिव वक्रं वल्मीकभुवं कविं नौमि ॥ ४ ॥

जिन्होंने अनेक अलंकार बनाये हैं और अनेक प्रकार के वर्ण जिसमें हैं और जो इन्द्रधनुष के समान टेढ़े हैं, उन वाल्मीकि कवि को नमस्कार, इन्द्रधनुष भी वाल्मीक से ही निकलता है, उसके भी अनेक प्रकार के रंग होते हैं, और वह मेघों का अलङ्कार बनता है।

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयैव संज्ञां यदङ्कितां भारती वहति ॥ ५ ॥

व्यासदेव की वाणी के सार और विश्व के सार भारत नामक ग्रन्थ को नमस्कार, जिससे भूषित होने के कारण सरस्वती को भारती कहते हैं।

अतिदीर्घजीवि दोषाद् व्यासेन यशोऽपहारितं हन्त
कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्नः ॥ ६ ॥

दुःख की बात है कि चिरजीवी होने के कारण व्यासदेव ने अपना यश खो दिया, यदि वे चिरजीवी न होते तो कौन नहीं कहता कि व्यासदेव ही दूसरे जन्म में गुणाढ्य हुए हैं।

श्रीरामायणभारतबृहत्कथानां कवीन्नमस्कुर्मः
त्रिस्रोता इव सरसा सरस्वती स्फुरति यैर्भिन्ना ॥ ७ ॥

रामायण महाभारत और बृहत्कथा के कवियों को नमस्कार, जिनके कारण भिन्न भिन्न स्वरूप धारण करने-वाली रसवती सरस्वती गङ्गा के समान हो गयी है।

अकलितशब्दालंकृतिरनुकूला स्खलितपदनिवेशापि ।
अभिसारिकेव रमयति सूक्तिः सोत्कर्षशृङ्गारा ॥ ८ ॥

जिसमें शब्द नहीं, अलङ्कार नहीं, पदों का निवेश भी ठीक नहीं, वह उक्ति भी यदि सरस हो, यदि उसमें उत्कट शृङ्गार हो, तो वह अभिसारिका के समान प्रसन्न करती है; क्योंकि शब्दों का न मानना ही अभिसारिका के लिए अलंकार है, उसके पैर नीचे ऊँचे पड़ते हैं, तथापि वह अनुकूल और रसपोषिका है इस कारण मन को प्रसन्न करती है।

अयि विविधवचनरचने ददासि चन्द्रं करे समानीय ।
व्यसनदिवसेषु दूति क्व पुनस्त्वं दर्शनीयासि ॥ ९ ॥

दूति, तुम अनेक प्रकार की बातें बनाना जानती हो चन्द्र को लाकर हाथ में दे रही हो, पर दुःख के दिनों में तुम्हारे दर्शन मिलेंगे, जब अपकीर्ति फैलेगी, या वि तब तो तुम कोई उपाय न कर सकोगी।

अन्धत्वमन्धसमये वधिरत्वं वधिरकाल आलम्ब्य।
श्री केशयोः प्रणयी प्रजापतिर्नाभिवासस्य ॥१०॥

ब्रह्मा, विष्णु के नाभिकमल में रहते हैं और वहीं लक्ष्मी और विष्णु भी रहते हैं। उनमें तरह तरह की बातें होती ही होंगी पर ब्रह्मा पर विष्णु का द्वेष नहीं है किन्तु प्रेम ही है, इसका कारण यह है कि जब अन्धा बनने का समय आता है, तब वे अन्धे हो जाते हैं और जब बधिर बनने का समय आता है तब वधिर बन जाते हैं, अर्थात् वे न तो कुछ देखते हैं और न सुनते हैं।

अपराधादधिकं मां व्यथयति तव कपटवचनरचनेयम्।
शस्त्राघाते न तथा सूचीव्यधवेदना यादृक् ॥११॥

दूति, तुमने जो अपराध किया है, उससे जितना कष्ट होता है उससे कहीं अधिक कष्ट तुम्हारी इन बनावटी बातों से होता है। शस्त्र प्रहार से जितना कष्ट होता है, उससे कहीं अधिक कष्ट सूई की नोक से छेदने से होता है।

ते श्रेष्ठिनः क संप्रति शक्रध्वज यैः कृतस्तवोच्छ्रायम्
ईषां वा मेढिं वाधुनातनास्त्वां विधित्संति ॥१२॥

हे इन्द्रध्वज, वे सेठ आज कहां हैं जिन्होंने तुमको खड़ा किया था, इस समय के लोग तो तुमको हल बनावेंगे या खूटा बनावेंगे।

दलिते पलालपुञ्जे वृषभं परिभवति गृहपतौ कुपिते।
निभृतनिभालितवदनौ हलिक वधू देवरौ हसतः ॥१३॥

पुआल इधर उधर बिखरा हुआ था, गृहस्वामी ने समझा कि इसी बैल ने पुआल बिखेरा है, इसलिए वह उसे मार

लगा, यह देखकर गृहस्वामी की स्त्री और उसके
ने छिप कर आपस में देखा और वे हँसने लगे।

निष्कारणापराधं निष्कारणकलहरोषपरितोषम्।
सामान्यमरणजीवनसुखदुःखं जयति दाम्पत्यम्॥ १४

जहां विना कारण का ही अपराध, विना कारण
कलह क्रोध, और प्रसन्नता साधारणतः मरना जी
दुःख आदि स्त्री पुरुषों में होते रहते हैं वह दाम्पत्य सुख

पूजा विना प्रतिष्ठां नास्ति न मन्त्रं विना प्रतिष्ठा च।
तदुभयविप्रतिपन्नः पश्यतु गीर्वाणपाषाणम्॥ १५॥

विना प्रतिष्ठा के पूजा नहीं और मंत्र के विना प्र
नहीं, जो इन दोनों बातों को न मानता हो वह पत्थर
मूर्ति को देखे।

भूतिमयं कुरुतेऽग्निस्तृणमपि संलग्नमात्रेणापि भवतः।
सेव सुवर्णं दशा ते शङ्के गरिमोपरोधेन॥ १६॥

संयोग होते ही अग्नि तृण को भस्म कर देता है, सुवर्ण,
यद्यपि तुम इसकी सेवा कर रहे हो, तथापि तुम्हारी भी वैसी
ही दशा होने की सम्भावना है, अभी तक गुरुता के कारण
ही तुम्हारी रक्षा हुई है।

भोगाक्षमस्य रक्षां दृष्टिमात्रेणैव कुर्वतोऽभिमुखस्य।
स्वस्य प्रभोरपि श्रीरपि भृत्यस्य भोगाय॥ १७॥

जो स्वयं भोग करने में असमर्थ है जो केवल आँखों से ही
रक्षा करता है और असमर्थ होने के कारण उसकी ओर देख
नहीं सकता, उस प्रभु की स्त्री और धन भी भृत्य के भोग के
लिए होता है।

मलयद्रुमसाराणामिव धीराणां गुणप्रकर्षोऽपि ।
जडसमयनिपतितानामनादरायैव न गुणाय ॥ १८ ॥

चन्दन के समान धीरों के गुण भी उस समय में (मूर्खों के बीच या जाड़े के समय में) आकर, अनादर ही पाते हैं आदर नहीं ।

यन्मूलमार्द्रमुदकैः कुसुमं प्रतिपर्वं फलभरः परितः ।
द्रुम तन्माद्यसि वीचीपरिचयपरिणाममविचिन्त्य ॥ १९ ॥

वृक्ष तुम्हारी जड़ जल से गीली है, प्रत्येक पर्व में पुष्प हैं, चारों ओर फल से लदे हुए हो इससे उन्मत्त मत बनो, तरङ्गों के परिचय का परिणाम सोचो ।

रोगी राजायत इति जनवादे सत्यमद्य कलयामि ।
आरोग्यपूर्वकं त्वयि तल्पप्रान्तागते सुभगम् ॥ २० ॥

हे सुभग, तुम्हारे पलंग के समीप "रोगी राजा के समान रहता है" इस जन-प्रवाद को आरोग्य रहने पर भी मैं सत्य समझती हूँ ।

वीक्ष्य सतीनां गणने रेखामेकां तया स्वनामाङ्काम् ।
सन्तु युवानो हसितुं स्वयमेवापारि नावरितुम् ॥ २१ ॥

उसने सतियों की गणना में अपने नाम की भी एक रेखा देखी, इससे युवक चाहे हँसे चाहे न हँसे पर स्वयं वही अपनी हँसी न रोक सकी ।

सुगृहीतमलिनपक्षा लघवः परभेदिनः परं तीक्ष्णाः ।
पुरुषा अपि विशिखा अपि गुणच्युताः कस्य न भयाय ॥ २२ ॥

दूसरों (अन्य पुरुष या शत्रु) को भेदन करनेवाले मलिन पक्षा अर्थात् नीच और तीखे मनुष्य तथा बाण, गुण (धनुष की ज्या या गुण) से च्युत होने पर किसके लिए भयकारक नहीं हैं ।

चन्द्रक।

ये कश्मीर के रहनेवाले थे, इनके नाम के विषय में म
भेद है, कोई इन्हें चन्द्रक कहते हैं और कोई चन्द्रक। महाकवि
कल्हण ने इनके विषय में लिखा है:—

> नाट्यं सर्वजनप्रेक्ष्यं यश्चक्रे स महाकविः।
> द्वैपायनमुनेरंशस्तत्काले चन्द्रकोऽभवत्।

जिस महाकवि ने सब लोगों के देखने योग्य नाटक की
रचना की, उस समय वे द्वैपायन मुनि के अंशभूत चन्द्रक
हुए। इस श्लोक से इस बात का पता मिलता है, महाकवि
चन्द्रक ने कोई नाटक बनाया था, जिसमें सब प्रकार के मनु-
ष्यों के उपयोग योग्य सामग्री थी और इनकी कविता व्यास-
देव के समकक्ष होती थी। इनके समय के विषय में कुछ निश्चित
रूप से नहीं कहा जा सकता। पर लक्षण से मालूम पड़ता
है कि ये बहुत प्राचीन कवि थे। सुभाषित ग्रन्थों में इनके श्लोक
उद्धृत किये गये हैं।

> खगोत्क्षिप्तैरन्त्रैस्तरुशिरसि दोलेव रचितः।
> शिवा तृप्ताहारा स्वपिति रतिखिन्नेव वनिता,
> तृषार्तो गोमायुः सरुधिरमसिं लेढि बहुशो
> बिलान्वेषी सर्पो हतगजकराग्रे प्रविशति।

पक्षि अतड़ियों को वृक्ष पर ले गये हैं, उनसे वृक्षों पर दोला
के समान बन गया है, शृगाली तृप्त होकर रतिखिन्न स्त्रियों के
समान सो रही है, शृगाल प्यासा है इस कारण वह रुधिर से
सनी तलवार को बारबार चाट रहा है। साँप बिल ढूँढ़ता
हुआ हाथी के सूँड़ में घुस जाता है। यह युद्ध समाप्त होने
पर युद्धक्षेत्र का वर्णन है।

कृष्णेनाम्ब गतेन रन्तुमधुना मृद्भक्षिता स्वेच्छया,
सत्यं कृष्ण क एवमाह मुसली, मिथ्याम्ब पश्याननम्,
व्यादेहीति विकासितेऽथ वदने माता समस्तं जगत्,
दृष्ट्वा यस्य जगाम विस्मयवशं पायात्स वः केशवः।

आज खेलने के लिए जाने पर कृष्ण ने खूब मिट्टी खायी है, कृष्ण, क्या यह बात सच है। कृष्ण ने पूछा ऐसा किसने कहा, माता ने कहा बलदेव ने, कृष्ण ने कहा, झूठी बात है, तुम हमारा मुंह देख लो, माता ने कहा, मुंह खोलो, कृष्ण ने मुंह खोल दिया, माता जिसके मुंह में समस्त जगत् देखकर विस्मित हो गयी, वह कृष्ण आप लोगों की रक्षा करें।

स पातु वो यस्य हता वशेषास्तत्तुल्य वर्णाञ्जनरञ्जितेषु॥
लावण्ययुक्तेष्वपि वित्रसन्ति दैत्याः स्वकान्तानयनोत्पलेषु॥१॥

वे देव आप लोगों की रक्षा करें जिनके वर्ण के समान अञ्जन से रञ्जित और सुन्दर अपनी स्त्रियों की आँखों से भी वे दैत्य जो रण में मारे जाने से बचे हैं डरते हैं।

च्युतामिन्दोर्लेखां रतिकलहभग्नञ्च वलयं
शनैरेकीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया।
अवोचद्यं पश्येत्यवतु स शिवः सा च गिरजा
स च क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरिततनुः॥२॥

गिरी हुई चन्द्रमा की कला और रतिकलह में गिरा हुआ वलय इन दोनों को धीरे से एकत्रित करके हंसती हुई पार्वती ने जिसको कहा था कि यह देखो, यह शिव, यह पार्वती और दांतों की प्रभा से जगमगाता हुआ यह क्रीड़ाचन्द्र आप लोगों की रक्षा करे।

मातर्जीव किमेवदञ्जलिपुटे तातेन गोपाय्यते
वत्स स्वादु फलं प्रयच्छति न मे गत्वा गृहाण स्वयम् ॥
मात्रैवं प्रहिते गुहे विघटयत्या—कृष्य संध्याञ्जलिं
शम्भोर्भिन्नसमाधिरुद्धर भसो हासोद्गम पातु वः ॥३॥

कार्तिकेय और पार्वती का संवाद, कार्तिकेय ने पूछा, माता, पार्वती ने कहा बेटा, का०—पिता ने यह हाथों में क्या छिपा रखा है, पा०—बेटा मीठा फल है, का०—मुझको तो नहीं देते, पा०—जाकर स्वयं लेलो, माता, के भेजने पर कार्तिकेय महादेव की सन्ध्याञ्जलि खोलने लगा जिससे उनकी समाधि टूट गयी और वे हंसने लगे। महादेव की वह हंसी आपकी रक्षा करे।

प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः ॥४॥

प्रसन्न होओ, हर्ष प्रकाशित करो, क्रोध दूर करो, प्रिये मेरे अङ्ग सूख रहे हैं, अमृत के समान अपने वचनों का सिंचन करो, सुखों का निधान अपना मुख थोड़ी देर के लिए अभिमुख स्थापित करो। मुग्धे, यह गया हुआ कालरूपी हरना लौटता नहीं।

एकेनाक्ष्णा परिततरुषा पाटलेनास्तगर्वं
परयत्यर्कं कुमुदविशदेनापरेणास्तकान्तम् ।
अह्नश्छेदे दयितविरहाशङ्किनी चक्रवाकी
द्वौ संकीर्णौ रचयति रसौ नर्तकीव प्रगल्भा ॥५॥

दिन ढल रहा है इस कारण अपने पति के विरह की आशङ्का करनेवाली चक्रवाकी, क्रोध से लाल एक आंख से

अस्त जाते हुए सूर्य को देख रही है और कुमुद के समान श्वेत दूसरी आंख से अपने पति की ओर देख रही है, इस प्रकार वह नर्तकी के समान एक ही समय दो विरुद्ध रसों की रचना करती है।

एषाहि मे रणगतस्य दृढ़ा प्रतिज्ञा
द्रक्ष्यन्ति यन्नरिपवो जघनं हयानाम्।
युद्धेषुभाग्य चपलेषु न मे प्रतिज्ञा
दैवं यदिच्छतिजयश्च पराजयश्च ॥६॥

रण में जाने पर मेरी यह दृढ़ प्रतिज्ञा है कि मेरे शत्रु मेरे घोड़ों की पिछली टांग नहीं देखेंगे, युद्ध भाग्याधीन है, उसके विषय में मेरी कोई प्रतिज्ञा नहीं है, भाग्य जैसा चाहता है वैसा होता है, जय या पराजय।

जगद्धर।

ये संस्कृत नाटकों के प्रसिद्ध टीकाकार हैं, न्यायवैशेषिक और व्याकरण का इनका ज्ञान अगाध था। वेणीसंहार वासवदत्ता मालतीमाधव, आदि कई नाटकों की टीका इन्होंने लिखी है, इनकी लिखी टीकाएं आदरणीय समझी जाती हैं। इन्होंने अपना परिचय इस प्रकार दिया है,

ब्राह्मणश्रेष्ठ चण्डेश्वर एक प्रसिद्ध पंडित थे, मीमांसा में उनका अगाध ज्ञान था, इनके पुत्र का नाम रामेश्वर था और ये भी मीमांसक थे, रामेश्वर के पुत्र गदाधर हुए और उनके पुत्र विद्याधर हुए। विद्याधर के पुत्र का नाम रत्नधर था। जगद्धर के पिता येही रत्नधर थे, पण्डित रामकृष्ण भाण्डारकर कहते हैं कि जगद्धर का समय १४ वीं सदी से पहले नहीं हो सकता।

धन्याः सुधीभिः सुरभीणि गुणोम्भितानि
वाग्वीरुधः स्ववदनोपवनोद्गतायाः ।
आचित्य सूक्तिकुसुमानि सतां विचित्र—
वर्णानि कर्णपुलिनेष्ववतंसयन्ति ॥

अपने मुखरूपी बाग में उत्पन्न होनेवाले वचनरूपी पौ
से चुनकर सुन्दर सुरभित गुण और उत्तमवर्ण युक्त सूक्तिरू
फूलों से सज्जनों के कानों को भूषित करते हैं वे धन्य है।

तेऽनन्तवाङ्मयमहार्णवपूरपाराः
सांयात्रिका इव महाकवयो जयन्ति ।
यत्सूक्तिपेलवलवङ्गलवैरवैमि
सन्तःसदःसु वदनान्यधिवासयन्ति ॥

वे अनन्त वाङ्मयरूपी महासमुद्र के पार जानेवाले मह
कवि जहाज के व्यापारी के समान हैं और धन्य हैं, मैं स
झता हूं कि उनकी सूक्तिरूपी उत्तम लवङ्ग के टुकड़े
सज्जनगण सभाओं में मुख को सुगन्धित करते हैं।

त्रैलोक्यभूषणमणिर्गुणिवर्गबन्धु-
रेकःप्रकाशि सविता कविता द्वितीया ।
शंसन्ति यस्य महिमातिशयं शिरोभिः
पादग्रहं विदधतः पृथिवीभृतोपि ॥

त्रिलोक के भूषणमणि, गुणियों के बन्धु एक सूर्य प्रक
शित होता है और दूसरी कविता। पृथिवीधर (राजा या पर्व
भी जिसकी महिमा की अधिकता, उसके चरणों को मस्त
से ग्रहण करके बतलाते हैं। अर्थात् पृथिवीधर राजा
कवियों की चरण वन्दना करते हैं और पृथिवीध
पर्वत सूर्य की किरणों को मस्तक पर धारण करते हैं।

शब्दार्थमागमपि ये न विदन्ति तेऽपि
यां मूर्छनामिव मृगाः श्रवणैः पिबन्तः।
संरुद्धसर्वकरणप्रसरा भवन्ति
चित्रस्थिता इव कवीन्द्रगिरं नुमस्ताम् ॥

जिनको शब्दार्थ का ज्ञान नहीं है वे मृगा भी जिस कविता को केवल कानों से गान के समान सुनकर तन्मय हो जाते हैं, वाक्य और इन्द्रिय ज्ञान से शून्य चित्र लिखित के समान हो जाते हैं, उस कवीन्द्रवाणी को नमस्कार।

अस्थाने गमितालयं इतधियां वाग्देवता कल्पते
धिक्काराय पराभवाय महते तापाय पापाय वा।
स्थाने तु व्ययिता सतां प्रभवति प्रख्यातये भूतये
चेतोनिर्वृतये परोपकृतये प्रान्ते शिवावाप्तये ॥

वाग्देवता का अनुचित स्थान में यदि संनिवेश किया जाय तो वह मूर्खों के धिक्कार तथा पराजय के कारण होता है। बड़ा भारी ताप होता है या पाप होता है, पर उसीका यदि उचित स्थान पर विनियोग किया जाय तो वह सज्जनों की प्रसिद्धि के लिए, समृद्धि के लिए, चित्त की प्रसन्नता के लिए, परोपकार के लिए और अन्त में कल्याणप्राप्ति के लिए होता है।

स्फारेण सौरभभरेण किमेणनाभे-
स्तद्वानसारमपि सारमसारमेव।
स्रक्सौमनस्यपि न पुष्यति सौमनस्यं
प्रस्यन्दते यदि मधुद्रवमुक्ति देवी ॥

कस्तूरी के बड़ी गन्ध से क्या? वह कपूर भी निरर्थक हो है, माला की सुगन्धि भी मन को प्रसन्न नहीं कर सकती, यदि वाणीदेवी मधु का स्रोत बहावे।

स हेमालंकारः क्षितिपतनलग्नेन रजसा
तथा दैन्यं नीतो नरपतिशिरःश्लाघ्यविभवः।
यथा लोष्टभ्रान्तिव्यवहितविवेकव्यतिकरो
विलोक्यैनं लोकः परिहरति पादक्षतिभयात् ॥

राजाओं के मस्तक पर शोभा पाने वाला यह सुवर्ण का आभूषण पृथिवी पर गिर पड़ा और वह धूल लगने से इस समय इतना विरूप हो गया कि उसमें लोगों को लोहे की भ्रान्ति होने लगी। उस भ्रान्ति से उनका विवेक नष्ट हो गया और वे उस सुवर्णालंकार को देखकर पैर कटने के भय से दूर हो जाते हैं।

आहूतेषु विहंगमेषु मशको नायान्पुरो वार्यते
मध्ये वा धुरि वा वसंस्तृणमणिर्धत्ते मणीनां रुचम्।
खद्योतोऽपि न कम्पते प्रचलितुं मध्येऽपि तेजस्विनां
धिक्सामान्यमचेतनं प्रभुमिवानामृष्टतत्त्वान्तरम् ॥

पक्षियों के निमन्त्रण में आगे आगे मशक (क्योंकि उसके भी पंख होते हैं) आता है और वह रोका नहीं जाता, आगे या मध्य में यदि तृणमणि आता है तो उसे भी मणियों की शोभा प्राप्त होती है, कोई उसे हटाता नहीं, तेजस्वियों के मध्य में खद्योत भी उनके सामने बेधड़क चला आता है उसे कुछ भय नहीं होता, उस अचेतन उपर अपरत्व का भेद न समझने वाले स्वामी को धिक्कार।

एवं चेन्नगरगर्भतापचरता ज्ञातं किमेतावता
यद्यस्यैव निमीलितः कलप्ना किं प्रत्ययार्थो हरी।
मूर्खं चेत्पुमि पटुता धृतिरिव अस्मादृशां यद्यमी
किं छिद्राणि मयि मृणाल भवनान्तर्गं न मन्यामहे ॥

हे मृणाल, (कमल की डंठी) तुम्हारा स्वभाव इतना सरस है तो यह जड़ता, अज्ञान या सर्दी, कैसी, यदि तुम स्वभाव से ही सरल हो तो ये गाठें कैसी, यदि तुम्हारा मूल शुद्ध है तो तुम्हारे कीचड़ से उत्पन्न होने की बात क्यों कही जाती है, यदि तुममें गुण (सद्गुण) हैं तो ये छिद्र क्यों? मृणाल तुम्हारा क्या तत्व है सो कुछ मालूम नहीं पड़ता।

त्वं भोगी यदि कुण्डली यदि भवांस्त्वं चेद्भुजंगः सखे
धत्से चेन्मुकुटं सरत्नमुरग स्वस्त्यस्तु ते किं ततः।
अस्थाने यदि कञ्चुकं त्यजसि तन्नास्माकमत्रस्पृहा
किंतु क्रूरविषोल्कया दहसि यद्भ्रातः क एष ग्रहः।

तुम यदि भोगी हो, कुण्डली हो या भुजंग हो, (ये सब सर्प के नाम हैं) तो रहो, हे उरंग, यदि तुम रत्नजड़ित मुकुट धारण करते हो तो यह भी तुम्हे मुबारक रहे, जहां तहां तुम कंचुक छोड़ते हो तो छोड़ो, इस विषय में भी हमें कुछ नहीं कहना है, पर तुम भयानक विष के द्वारा लोगों को जलाते हो यह तुम्हारा कौन सा हट है।

पिधत्ते द्वाः पट्टैः सितकरमथोत्सङ्गसुमै-
र्निरस्तैर्दीपार्चिः शमयति च लज्जापरवशा।
प्रियेण प्रत्यङ्गं प्रणिहितदृशा वाससि हृते
कथंकारं हारं परिहरति हारं नववधूः॥

प्रिय जब नववधू के प्रत्यङ्ग पर दृष्टि डालता है और उसके कपड़े खींच लेता है तब वह द्वार बन्द करके चन्द्रमा को छिपाती है, लज्जित होकर वह अपने कनफूल से दीपक बुझा देती है, यह सब तो करती है पर नववधू अपना बड़ा गले का हार कैसे छोड़ती है।

कदा संसारजालान्तर्बद्धं त्रिगुणरज्जुभिः।
आत्मानं मोचयिष्यामि शिव भक्ति शलाकया ॥

त्रिगुण की रस्सी द्वारा संसारजाल में बंधे हुए अपने को शिवभक्ति शलाका के द्वारा कब मुक्त करूंगा।

वाङ्मनःकायकर्माणि विनिवेश्य त्वयि प्रभो।
त्वन्मयीभूय निर्द्वन्द्वः कथित्स्यामपि कर्हिचित ॥

हे प्रभो, वचन मन शरीर और कर्म तुममें लगाकर निर्द्वन्द्व और त्वद्गतप्राण कब कभी मैं हो सकूंगा।

मलतैलाक्तसंसारवासनावर्तिदाहिना।
ज्ञानदीपेन देव त्वां कदानु स्यामुपस्थितः ॥

मलरूपी तैल में भिगोयी हुई संसारवासना रूपी बत्ती को जलाने वाले ज्ञानदीप के सहारे मैं आपके पास कब उपस्थित होऊंगा।

एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदा शंभो भविष्यामि संसारोन्मूलनक्षमः ॥

हे शम्भो, एकाकी निस्पृह शान्त, पाणिपात्र और दिगम्बर मैं कब होऊंगा, और कब मैं संसार का नाश कर सकूंगा।

सुशान्तशास्त्रार्थविचारचापलं
निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकम्।
निरस्तनिःशेषविकल्पविप्लवं
प्रपत्तुमन्विच्छति चन्द्रिणं मनः ॥

मेरे मन से शास्त्रार्थ के विचार की चपलता दूर होगयी, अनेक प्रकार के सरसकाव्य कौतुक से भी मन निवृत्त हो गया, समस्त तर्क वितर्क भी दूर होगये, इस समय मेरा मन भग- वान् की शरण जाना चाहता है।

श्रीमज्ज्ञानेन्द्रभिक्षोरधिगतसकलब्रह्मविद्याप्रपञ्चः
काणादीरक्षपादीरपि गहनगिरो यो महेन्द्रादवेदीत् ।
देवादेवाध्यगीष्ट स्मरहरनगरे शासनं जैमिनीयः
शेषाङ्कप्राप्तशेषामल मपित्तिर भूत्सर्वं विद्याधरोयः ॥

पेरुभट्ट ने ज्ञानेन्द्र भिक्षु से समस्त ब्रह्मविद्या सीखी, महेन्द्र पण्डित से जिन्होंने न्यायदर्शन और वैशेषिक दर्शन का ज्ञान प्राप्त किया । काशी में महादेव से पूर्व मीमांसा पढ़ी और अन्य समस्त विद्या नागो जी भट्ट से पढ़ी ।

ये दिल्ली के बादशाह के यहाँ रहते थे, दिल्ली जाने के पहले चोलराज के दरबार में भी कुछ दिनों थे, पर वहां इनका मन न लगा और ये जयपुर आये, जयपुर के पण्डितों से इन्होंने शास्त्रार्थ किया वहां एक पाठशाला स्थापित की और अनेक विद्यार्थियों को अनेक शास्त्र पढ़ाये ।

इन्होंने फारसी पढ़ी थी, मुसलमानी धर्मग्रन्थ का भी इन्हें प्रौढ़ज्ञान था, इन्होंने दिल्ली के काजी से शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त किया, बादशाह ने इन्हें दिल्ली का काजी बनाया, दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ के ये आश्रित हुए । शाहजहाँ ने ही इन्हें पण्डितराज की पदवी दी । इन्हींके समय में अप्पय दीक्षित थे और अप्पय दीक्षित से इनका विरोध था, इन्होंने अप्पयदीक्षित की चित्रमीमांसा नामक ग्रन्थ का खण्डन किया है ।

दिल्ली जाने के पहले ये नेपाल भी गये थे, पर वहां इनका मन नहीं रमा और वहां से चले आये, इस संबन्ध में एक श्लोक प्रसिद्ध है ।

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः
नेपालभूपैः परिदीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्

दिल्लीश्वर या जगदीश्वर मनोरथों को पूरा कर सकते हैं, नेपाल के राजा ने जो दिया है वह शाक या निमक के लिए हो सकता है।

लवङ्गी नाम की किसी मुसलमान कन्या से इन्होंने ब्याह किया था। यह बात प्रसिद्ध ही है। इस संबन्ध में इन्होंने कहा है।

यवनीनवनीत कोमलाङ्गी शयनीयं यदि पावनी करोतु"
अवनीतलमेव साधु मन्ये न वनी माघवनी विनोदहेतुः।

मक्खन के समान कोमलाङ्गी यवनी यदि पलंग को पवित्र करे तो पृथ्वी तलही उत्तम है, इन्द्र का नन्दनवन अच्छा नहीं। पर यवनी परिणय के कारण इनकी जातिवालों ने इन्हें जाति-च्युत कर दिया था और इन्होंने वृद्धावस्था काशी में बितायी थी।

इनके बनाये ग्रन्थों के नाम ये हैं:—

अमृत लहरी,
आसफ विलास,
करुणा लहरी,
चित्र मीमांसा खण्डन,
जगदाभरण काव्य,
पीयूष लहरी,

प्राणाभरण काव्य,
भामिनीविलास,
मनोरमाकुचमर्दन,
यमुनावर्णन चम्पू,
लक्ष्मी लहरी,
सुधालहरी,
रसगङ्गाधर,

कामरूप के राजा के वर्णन में इन्होंने प्राणाभरण नाम एक काव्य लिखा है; इससे सम्भव है कुछ दिनों तक वहां भी रहे हों।

इनकी युक्ति सरस और चुभनेवाली होती है, इन्होंने के महाकाव्य नहीं लिखा है, काव्य के उत्तम गुण इनकी कवित में कम पाये जाते हैं, शब्दसौष्ठव और उक्तिचातुर्य इनक कविता में काफी है और इसीसे इनकी कविता का आद है। ये बड़े ही अभिमानी थे। अपनी कविता के विषय इनकी समझ थी कि मेरे समान कविता करनेवाला दूसर नहीं, केवल समझ ही नहीं थी यह बात इन्होंने लिखी भी है

आमूलाद्रत्नसानोर्मलयवलयितादा च कूलात्पयोधे
र्यावन्तः सन्ति काव्य प्रणेन पटवस्ते विशङ्कं वदन्तु
मृद्वीकामध्य निर्यन्मसृणरसझरी माधुरी भाग्य भाजां
वाचामाचार्यताया पदमनुभवितुं कोऽस्ति धन्यो मदन्यः।

मेरु पर्वत से लेकर मलयाचल वेष्टित समुद्रतीर पर्यन्त जो काव्यरचना में चतुर हैं वे निःशङ्क होकर कहें, दाख से निकले कोमल मधुरता पूर्ण वचन का आचार्य होने की योग्यता मेरे अतिरिक्त और किस धन्य मनुष्य में है।

इन्होंने अपने विषय में कहा है—

शास्त्राण्याकलितानि नित्यविधयः सर्वेऽपि सम्भाविताः
दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः
सम्प्रत्युज्झितमासनं मधुपुरीमध्ये हरिः सेव्यते
सर्वं पण्डितराजराजतिलके नाकारि लोकोत्तरम् ।

शास्त्रों का अध्ययन किया, सभी नित्य विधियों का अनुष्ठान किया, दिल्ली पति के हाथों के नीचे नयी उमर बितायी इस समय पद छोड़ कर मथुरा में हरि की सेवा होती है, पण्डितराज ने सभी अद्भुत ही किया । सोलहवीं सदी के प्रारम्भ में ये थे ।

विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमाः
भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधरमाधुरीमधरयन् वाचां विलासो मम ॥१॥

पृथिवी के विद्वान् दूसरों की कविता की प्रशंसा करने के विषय में इस समय मौन हैं, राजा लोग धन मद से उन्मत्त हो रहे हैं, ऐसी दशा में काम से अलसायी देवाङ्गनाओं की अधर माधुरी को तिरस्कार करने वाला मेरा वचनविलास किस धन्य मनुष्य के मुख में नृत्य करेगा ।

विद्यार्णव गुणज्ञता समुदितो भूयानसूयाभरः
कालोऽयं कलिराजगाम जगतीलावण्यकुक्षिम्भरिः
इत्थं भावनया मदीयकविते मौनं किमालम्बसे
जागर्तु क्षितिमण्डले चिरमिह श्रीकामरूपेश्वरः ॥२॥

गुणज्ञता तो चली ही गयी, दूसरों के गुणों में दोष देखने की प्रकृति उत्पन्न हुई है, यह कलियुग है जिसने जगत् का

सौन्दर्य नष्ट किया है, यह सोचकर हे मे
क्यों हो रही हो, इस भूमण्डल पर
दिनों तक वर्तमान रहें! अर्थात् वे ही तु

क्षोणिं शासति मय्युपद्रवलवः कस्यापि
मौर्ई व्याहरतो वचस्तव कथं देवप्रतीमे
प्रत्यक्षं भवतो विपक्षनिवहं यांशुन्पतन्नि
यदुग्मनकुलकोटिमूलपुरुषो निर्भिद्य

मेरे शासन के समय किसी को भी थो
हो आपकी इस बात को हम लोग कैसे सत्
यह प्रत्यक्ष है कि आपका शत्रुसमूह मोघ
जाता है और वह आपके कुल के मूलपुरुष स
करता है।

पुरा सरसि मानसे विकचसारसालिस्खलत्
परागसुरभीकृते पयसि यस्य यातं वयः
स पल्वलजलेऽधुना मिलदनेकभेकाकुले
मरालकुलनायकः कथय रे कथं वर्तताम्।

पहले मानसरोवर के विकसित कमलों के गिरे
सुगन्धित जल में जिसने अपनी उमर बितायी, वह
धाम छोटे तालाब में—जिसमें अनेकों मेढक हैं कैसे
कहो तो।

आर्वैद्वितंऽप्यराधं वसितः क्वचन गूढा रमाव्युवानि समा
सद्भिरसङ्कवि मारल्वसि दन्तयोः मौनी तु हन्त कमलं गतिमष्यु

हे करिवर, तुम्हारे दाँत होने पर अ
गज उड़कर

का आश्रय लिया पर विचारी मछलियों को क्या दशा होगी, ये कहाँ आश्रय पावेंगी ।

एकस्त्वं गहनेऽस्मिन् कोकिल न कलं कदाचिदपि कुर्याः
साजात्यशङ्कयामी न त्वां घ्नन्ति निर्दयाः काकाः ।

हे कोकिल, तुम इस वन में अकेली हो, इसलिए कभी बोलना मत, नहीं तो कौओं को मालूम होजायगा कि यह कौआ नहीं है और वे निर्दय तुम्हें मार डालेंगे। अभी तो न बोलने से तुम्हें अपनी जाति का समझते हैं और इसीसे वे तुम्हें नहीं मारते ।

ग्रीष्मे भीष्मतरैः करैर्दिनकृतो दग्धोऽपि यश्चातकः
त्वां ध्यायन् घन, वासरान् कथमपि द्राघीयसो नीतवान् ।
दैवाल्लोचनगोचरेण भवता तस्मिन्निदानीं यदि
स्वीचक्रे करकानिपातनकृपा तत् कस्य तत् ब्रूमहे ।

हे मेघ, गर्मी के सूर्य की कड़ी किरणों से जला हुआ भी जिस चातक ने केवल तुम्हारा ही ध्यान करके उन बड़े दिनों को बिताया, अब तुम भाग्य से दिखायी पड़े तो उस विचारे चातक पर तुमने पत्थर बरसाने की कृपा की, यह बात किससे हम लोग कहें ।

स्थितिं नो रे दध्याः क्षणमपि मदान्धेक्षण सखे,
गजश्रेणीनाथ त्वमिह जटिलायां वनभुवि,
असौ कुम्भिभ्रान्त्या खर नखर विद्रावितमहा-
गुरुग्रावग्रामः स्वपिति गिरिगर्भे हरिपतिः ।

हे मतवाली आँखों वाले गजराज, इस बीहड़ वन में एक क्षण भी न रहो, यह देखो, हाथी के भ्रम से तीखे नखों द्वारा

बड़े बड़े पत्थरों को चीर कर यहाँ पर्वत की गु
सिंह सो रहा है ।

अन्या जगद्धितमयी मनसः प्रवृत्तिरन्यैव कापि रचना वच
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरार्तहृद्या विद्यावतां सकलमेव गि

विद्वानों की सभी बातें विलक्षण होती हैं, उनकी
सिक प्रवृत्ति संसार का कल्याण करनेवाली होती है,
बोलने का ढंग कुछ विलक्षण ही होता है । उनके
लोकोत्तर होते हैं और उनकी आकृति पीड़ितों को
मालूम होती है ।

गुरुमध्यगता मया नताङ्गी निहिता नीरजकोरकेण मन्दम्,
दरकुण्डलताण्डवं नतभ्रूलतिकं मामवलोक्य घूर्णितासीत् ।

वह कोमलाङ्गी अपने बड़ों के बीच में बैठी थी, मैंने उ
कमल की कली से धीरे से मारा, उसने अपने कुण्डलों को
थोड़ा नचाकर भौंहों को टेढ़ी कर मुझे क्रोधपूर्वक देखा ।

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोजं च मिलद्विकासम्
आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धालिकिशोरमाला ।

तीर पर युवती का हंसता हुआ मुख है और
खिला कमल है, दोनों को देख कर पुष्प-रस की लो
भ्रमरपंक्ति कभी इधर और कभी उधर दौड़ती हैं, उ
लिए इस बात का निश्चय करना कठिन हो रहा है कि क
कौन है ।

उपनिषदः परिपीता गीतापि च हन्त श्रुतिपथं नीता,
तदपि न हा विधुवदना मानससदनाद्बहिर्याति ।

उपनिषदों का पान किया, गीता को भी
वह चन्द्रमुखी मन से

लोभाद्वराटिकानां विक्रेतुं तक्रमविरतमटन्त्या
लब्धो गोपकिशोर्या मध्येरथ्यं महेन्द्रनीलमणिः

कोई गोपकन्या कौड़ियों के लोभ से तक्र बेचने के लिए गलियों में घूम रही थी, गली के बीच में उसे इन्द्रनीलमणि मिल गया।

गुरुमध्ये हरिणाक्षीमार्तिकशकलैर्निहन्तुकामं माम्
रदयन्त्रित रसनाग्रं तरलितनयनं निवारयाञ्चक्रे

अपने बड़े के बीच में वह बैठी थी, उस मृगनयनी ने मिट्टी के टुकड़ों से मारने की इच्छा रखने वाले मुझको, अपनी जीभ के अग्रभाग को दांतों से दबा कर और आंखें घुमाकर रोका।

दैवे पराग्वदनशालिनि हन्त जाते,
याते च सम्प्रति दिवं प्रतिबन्धुरत्ने,
कस्मै मनः कथयितासि निजामवस्थां
कः शीतलैः शमयिता वचनैस्तवाधिम्।

भाग्य के प्रतिकूल होने पर और मित्र के स्वर्गगामी होने पर हे मन, तुम अपनी अवस्था का वर्णन किससे करोगे और कौन शीतल वचनों द्वारा तुम्हारा दुःख दूर करेगा।

सर्वेऽपि विस्मृतिपथं विषयाः प्रयाता
विद्यापि खेदगलिता विमुखीबभूव,
सा केवलं हरिणशावकलोचना मे
नैवापयाति हृदयादधिदेवतेव।

सभी बातें भूलगयीं, विद्या भी दुःख के मारे रूठ गयी, पर केवल यही हरिणशावक लोचना अधिष्ठात्री देवता के समान मेरे हृदय से नहीं निकल रही है।

स्वप्नेऽपि यत्र भामिनि परपुरुषं
न दृष्टवत्यसि न कमपि कामिजनम्
सा मन्यसे यदि भामिनि, निर्गुणं तं
मानुं कथं कामयसे न दृष्टपूर्वम् ।

हे भामिनि, अभिसार पूर्वक स्वप्न में भी कभी तुमने पर पुरुष को नहीं देखा है, फिर तुम, आज निर्गुण परपुरुष (परम पुरुष, परमेश्वर) को पाने के लिए क्यों चली हो कहो।

स्मृतापि तरुणातपं करुणया हरन्ती नृणाम्,
अभङ्गुरतनुत्विषां वलयिता शतैर्विद्युताम्,
कलिन्दगिरिनन्दिनीतटसुरद्रुमालम्बिनी,
मदीयमतिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी,

स्मरण करने से भी जो मनुष्यों के कठोर दुःख को हरण करती है, स्थायी प्रभाव वाली बिजलियों से जिसका शरीर शोभित हो रहा है, यमुना के तीर के देववृक्ष पर लटकने वाली कोई मेघमाला (कृष्ण) मेरी बुद्धि का चुम्बन करे, अर्थात् मेरी बुद्धि उसका चिन्तन करे।

वाचा निर्मलया सुधामधुरया यां नाथ शिक्षामदा-
स्तां स्वप्नेऽपि न संस्मराम्यहमहम्भावावृतो निस्त्रपः
इत्यागःशतशालिनं पुनरपि स्वीयेषु मां बिभ्रत-
स्त्वत्तो नास्ति दयानिधिर्यदुपते मत्तो न मत्तोऽपरः -

हे नाथ, अमृत के समान मधुर निर्मल वचनों द्वारा जो शिक्षा आपने दी है, उसको स्वप्न में भी मैं स्मरण नहीं करता क्योंकि मैं अहंकारी हूं, निर्लज्ज हूं, इस प्रकार के अनेक मेरे अपराध हैं, फिर भी आप मुझे अपनाये हुए हैं, हे यदु

पते, आपके समान दूसरा दयालु नहीं है और न मेरे समान मतवाला ही कोई दूसरा है ।

> पाताले व्रज, याहि वा सुरपुरीमारोह मेरोः शिरः
> पारावारपरम्परां तर तथाप्याशा न शान्ता तव,
> आधिव्याधिजरापराहत, यदि क्षेम निजं वाञ्छसि,
> श्रीकृष्णेति रसायनं रसय रेशून्यैः किमन्यैः श्रमैः ।

पाताल में जाओ, देवताओं की पुरी में जाओ, मेरु पर्वत सिर पर चढ़ो अथवा समस्त समुद्रों को पार करो, फिर भी तुम्हारी आशा शान्त न होगी. हे मानसिक और शरीरिक दुखों से पीड़ित,.यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो (श्रीकृष्ण) इस रसायन का आस्वादन करो,निरर्थक अन्य प्रयत्नों से लाभ क्या ।

> मृद्वीका रसिता सिता समशिता स्फीतं निपीतं पयः
> स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः
> सत्यं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता,
> कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः कचिल्लक्षितः ।

दाख तुमने खाया, मिश्री खायी, दूध पिया, स्वर्ग जाने पर अमृत पिया, रामा के अधर का भी आस्वादन किया हे मेरे जीव, सच कहो बारबार संसार में घूमने से तुम्हें (कृष्ण) इन अक्षरों की मिठाई के समान मिठाई कहीं मिली है ।

> सपदि विलयमेतु राजलक्ष्मी रुपरि पतन्त्वथवा कृपाणधारा
> अपहरतुतरां शिरः कृतान्तोमम तु मनो न मनागपैति धर्मात् ।

इसी समय राजलक्ष्मी का नाश हो जाय, अथवा मेरे ऊपर तलवारें पड़ें यमराज मस्तक ले जाय पर मेरा मन धर्म से नहीं हटता ।

जयदेव ।

इनकी कविता बड़ी ही सरस और म
गीतगोविन्द नाम का एक ग्रन्थ बनाया
की स्तुति है, राधामाधव की केलि वर्ण
सीमापार कर गया है, शृङ्गार की धारा
है। यदि उस वर्णन से राधामाधव का संब
देव की वाणी इतनी मधुर न होती, तो ले
कहते।

बंगाल के किन्दुविल्व नामक गांव में ये
गांव वीरभूमि जिला में है। इनके पिता का न
और माता का नाम वामादेवी था। इनकी स
पद्मावती था। ये वैष्णव थे। ये बंगाल के राज
की सभा में रहते थे, यह बात नीचे लिखे श्लोक
पड़ती है।

गोवर्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य हि।

इस श्लोक की पुष्टि जयदेव ने अपने गीतगोविन्द
म्भिक एक श्लोक द्वारा की है।

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिराम्,
जानीते जयदेव एव शरणः श्लाघ्यो दुरूहद्रुतेः
शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्धन-
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतधरो धोयी कविक्ष्मापतिः

इनके अतिरिक्त प्रसन्न ...
गये हैं।

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्जमन्मथमहातीर्थे पुनर्माधवः।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालापमन्त्राक्षरं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भनिर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति॥

पहले तुम्हारे साथ जहां कामदेव की सिद्धि पायी थी उसी कामदेव के महातीर्थ कुञ्ज में माधव पुनः तुम्हारा ध्यान करता है और तुम्हारी ही बातों को मन्त्र बना कर जप रहा है, और पुनः वह तुम्हारे आलिङ्गन का अमृत चाहता है।

रतिसुखसारे गतमभिसारे मदनमनोहरवेशम्।
न कुरु नितम्बिनि गमनविलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्।
धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
पीनपयोधरपरिसरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली॥ ध्रुवम्

अभिसार के लिए मदन का मनोहर वेश प्राप्त हुआ है, चलने में विलम्ब मत करो हृदयेश का स्मरण करो। इस समय वनमाली यमुनातीर पर हैं जहां मन्द मन्द हवा चल रही है, और तुम्हारे स्तनस्पर्श के लिए उनके हाथ चञ्चल हो रहे हैं।

नामसमेतं कृतसङ्केतं वादयते मृदुवेणुम्।
बहुमनुते ननु ते तनुसङ्गतपवनचलितमपि रेणुम्॥

वे तुम्हारा नाम लेकर सङ्केत कर रहे हैं वेणु बजा रहे हैं, तुम्हारे शरीर की धूलि जो वायु के द्वारा लायी जाती है उसे भी वे बहुत समझते हैं।

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कितभवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकितनयनं पश्यति तव पन्थानम्॥

जब पक्षी उड़ते हैं या पत्ता खटकता है तो उन्हें आने का सन्देह हो जाता है, वे बिछौना बनाते चकित होकर तुम्हारा मार्ग देखते हैं।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम्।
चल सखि कुञ्जं सतिमिरपुञ्जं शीलय नीलनिचोलम्॥

क्रीडा में शत्रुरूप इस बजने वाले नूपुर को छोड़ सखि, अन्धेरे कुञ्ज की ओर चलो और काला कुर्ता पहन

उरसि मुरारेरुपहितहारे घन इव तरलबलाके।
तडिदिव पीते रतिविपरीते राजसि सुकृतविपाके॥

हे पुण्यवति, माधव के उरस्थल पर माला पड़ी है, इस वह चञ्चल बकपंक्ति युक्त मेघ के समान मालूम होता है, उ पर विपरीत रति में विद्युत के समान तुम शोभित होओगी।

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम्।
कुरु मम वचनं सत्वररचनं पूरय मधुरिपुकामम्॥

कृष्ण अभिमानी है, रात भी बीत रही है, मेरी बात मा कृष्ण का मनोरथ पूरा करो।

श्रीजयदेवे कृतहरिसेवे भणति परमरमणीयम्।
प्रमुदितहृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृतकमनीयम्॥

हरिसेवक जयदेव ने यह परम रमणीय उक्ति कही है। प्रसन्नचित्त दयालु और पुण्य के द्वारा सुन्दर हरि नमस्कार करो।

विकिरति मुहुः श्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जन् मुहुर्बहु ताम्यति।

स्वपिति मुहुः श्वसिति परितः पन्थानं वीक्षते
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं मुहुरीक्षते
मदनकदनक्लान्तः कान्ते प्रियस्तव वर्त्तते ॥

बार बार चारों तरफ श्वास फेंक रहा है, बार बार आगे की ओर देखता है, कुछ बोलता हुआ बार बार कुञ्ज में जाता है। बहुत व्याकुल होता है, बार बार शय्या बनाता है, व्याकुल होकर बारबार देखता है, कान्ते, तुम्हारा प्रिय इस समय मदन के दुःख से व्याकुल है।

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तं गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमः सान्द्रताम्।
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसारक्षणः ॥

तुम्हारी वामता के साथ साथ यह सूर्य अस्त हो गया, गोविन्द के मनोरथ के साथ साथ अन्धकार गाढ़ हो गया। चकवा की करुणप्रार्थना के समान मेरी यह प्रार्थना है, मुग्धे, अब विलम्ब व्यर्थ है, यह अभिसार का उत्तम अवसर है।

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तज-
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो-
र्दम्पत्योरिह को न को न तमसि व्रीडाविमिश्रो रसः

प्रेमी दम्पतियों को अन्धकार में लज्जायुक्त अनेक प्रकार के रस प्राप्त होते हैं। आलिङ्गन चुम्बन, नखोल्लेख, मानसिक उल्लास, घबड़ाहट भिन्न भिन्न मार्ग में जाने वालों का भ्रम से मिलना और बोली से पुनः पहचानना आदि अनेक प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं।

-०६—

सभयचकितं विन्यस्यन्तीं दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम्
कथमपि रहः प्राप्तामङ्गैरनङ्गतरङ्गिभिः
सुमुखि सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम्

अँधेरे मार्ग में चकित होकर देखती हुई प्रत्ये
पास ठहर कर धीरे धीरे पैर रखती हुई इस प्रका
कष्टों से आई हुई तुमको देखकर तुम्हारा प्रिय
अङ्गों से कृतार्थ हो।

राधामुग्धमुखारविन्दमधुपस्त्रैलोक्यमौलिस्थली-
नेपथ्योचितनीलरत्नमवनीभारावतारान्तकः
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषश्चिरं
कंसध्वंसनधूमकेतुरवतु त्वां देवकीनन्दनः॥

राधा के सुन्दर मुख कमल के भ्रमर, त्रिलोक के शि
मणि, आभूषण योग्य नीला रत्न, पृथिवी का भार उतार
वाले, व्रजनारियों के मन को सन्तुष्ट करने वाले, कंस के नाश
के चिन्ह, देवकीनन्दन तुम्हारी रक्षा करें।

जयदेव (२)

इन्होंने प्रसन्नराघव नामक नाटक बनाया है। यह वि
के रहनेवाले थे। इनकी माता का नाम सुमित्रा औ
पिता का नाम महादेव था। यह कौण्डिन्य गोत्र के थे। य
विलक्षण कवि होने के अतिरिक्त नैयायिक भी थे। इनका
दूसरा नाम पक्षधर भी था और पक्षधरी नाम की एक पुस्तक

न्याय की इन्होंने बनायी है और भी न्याय की पुस्तकें इन्होंने लिखी हैं। चन्द्रालोक नामक अलङ्कार ग्रन्थ भी इन्हींका बनाया है। इस ग्रन्थ में इन्होंने अपना नाम पीयूषवर्ष लिखा है। इनके निश्चित समय का अभी तक ठीक पता नहीं लगता, पर १५हवीं शताब्दी में इनका होना अनुमान किया जाता है।

ये नैयायिक और कवि दोनों थे और इसका इन्हे अभिमान था, यह बात इन्होंने अपने ग्रंथ में साफ लिखी भी है। इनका कहना है कि विलासी भी वीर हो सकता और कवि नैयायिक भी हो सकता है।

> येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती,
> तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते,
> यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहा, सानन्दमारोपिता–
> स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः।

इनकी न्यायशास्त्र में बड़ी, प्रखरगति थी, ये शास्त्रार्थ में बड़े बड़े पण्डितों को परास्त कर देते थे। इनके विषय में कहा जाता है कि पक्षधर का प्रतिपक्षी कोई दीख न पड़ा।

> " पक्षधर प्रतिपक्षी लक्षीभूतो न च क्वापि "
> येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती।
> तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते।
> यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता–
> स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः ४

जिनकी वाणी काव्यकला कोमल है, वे क्या कठोर तर्क शास्त्र के वचन नहीं कह सकते ? जिन लोगों ने आनन्द पूर्वक कान्त के कुचमण्डल पर हाथ रखे हैं, वे क्या मतवाले हाथी के मस्तक पर बाण नहीं छोड़ते।

अपि मुदमुपयान्तो वाग्विलासैः स्वकीयैः
परभणितिषु तोषं यान्ति सन्तः कियन्तः ।
निजघनमकरन्दस्यन्दपूर्णालवालः
कलशसलिलसेकं नेहते किं रसालः ॥

अपनी वाणी से प्रसन्न होनेवाले भी कई सज्जन दूसरों की वाणी सुनकर प्रसन्न होते हैं। जिस रसाल वृक्ष का आलवाल उसके अपने पुष्परस से पूर्ण होता है वह क्या घड़े के जल से सींचा जाना पसन्द नहीं करता।

वार्ता च कौतुकवती विमला च विद्या
लोकोत्तरः परिमलश्च कुरङ्गनाभेः ।
तैलस्य बिन्दुरिव वारिणि दुर्निवार-
मेतत्त्रयं प्रसरति स्वयमेव भूमौ ॥

आश्चर्यमयी वाणी, निर्मल विद्या और और लोकोत्तर कस्तूरी की गन्ध ये तीन जल में तैलबिन्दु के समान आपही आप फैलते हैं, इनको रोकना असम्भव है।

एतत्तर्केय चक्रवाकहृदयाश्वासाय तारागण-
ग्रासाय स्फुरदिन्दुमण्डलपरीहासाय भासां निधिः ।
दिक्कान्ताकुचकुम्भकुङ्कुमरसन्यासाय पङ्केरुहो-
ल्लासाय स्फुटवैरिकैरववनत्रासाय विद्योतते ॥

यह देखो, चक्रवाक दम्पती के हृदयों को आश्वासित करने के लिए, ताराओं का ग्रास करने के लिए, प्रकाशित होनेवाले चन्द्रमण्डल की हँसी करने के लिए, दिगङ्गना के स्तनों पर कुङ्कुम का रस लगाने के लिए कमलों को विकसित करने के लिए, और खुल्लम् खुल्ला शत्रुता करनेवाले कैरववन को भय देने के लिए यह सूर्य प्रकाशित हो रहा है।

कर्पूरादपि कैरवादपि दलत्कुन्दादपि स्वर्णदी-
　　कल्लोलादपि केतकादपि चलत्कान्ताद्रुगन्तादपि ।
दूरोन्मुक्तकलङ्कशंकरशिरःशीतांशुखण्डादपि
　　श्वेताभिस्तव कीर्तिभिर्धवलिता सप्तार्णवा मेदिनी ॥

कपूर, कैरव विकसित होने वाले कुन्द, गङ्गा की तरङ्ग, केतक, स्त्री के चञ्चल आंखों के कोण, कलङ्क रहित महादेव के सिर पर रहने वाले चन्द्रखण्ड से भी अधिक तुम्हारी कीर्ति श्वेत है और उसने सात समुद्रों से घिरी पृथिवी को श्वेत बना दिया ।

जल्हण ।

ये कवि काश्मीर देश के निवासी थे । मंखकवि ने इनके विषय में अपने श्रीकण्ठचरित में जो लिखा है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है ।

यया चरति वक्रे या वाग् यस्य चतुरैः पदैः
सरस्वत्यै विनिर्माणमुपमेव प्रदक्षिणम्,
प्रबन्धैर्दक्षिणो मुरारिमनुधावतः
श्रीराजशेखरगिरां मार्गे यस्योचितस्पदाम्
श्रीमद्राजपुरीनाथविग्रहस्य निर्माणिनम्,
अपरार्थं वचोभिरर्थं जल्हणं विनयाञ्चितैः

इन श्लोकों से मालूम होता है कि ये वक्रोक्ति कहने में बड़े निपुण थे । काव्य रचना में मुरारि कवि की ये बराबरी करते थे । राजशेखर कवि की कविता इनकी आदर्श थी, काश्मीर के अन्तर्गत राजपुरी के राजा के ये मंत्री थे, इन्होंने सोम

विलास नाम का एक काव्य बनाया था, इस काव्य की टीका राजानक रुय्यक ने बनायी थी, जिसका नाम अलंकारानुसारिणी है। इस काव्य में राजपुरी के राजा सोमपालका वर्णन है।

स्वप्रज्ञया कुञ्चिकयेव केचित्सारस्वतं वक्रिमभङ्गिभाजम् ।
कवीश्वरः कोपि पदार्थकोशमुद्घाट्य विश्वाभरणं करोति ॥ १ ॥

वक्रता धारण करनेवाले सरस्वती के पदार्थकोश को कवीश्वर कुंजीरूपी अपनी बुद्धि से खोलते हैं और उसके द्वारा संसार को भूषित करते हैं। कवीश्वर कठिन तत्वों को अपनी बुद्धि से सुलझाते हैं और उससे संसार का उपकार होता है।

दैवीर्गिरः कोऽपि कृतार्थयन्ति ताः कुण्ठयन्त्येव पुनर्विमूढा ॥
या विप्रुषः शुक्तिमुखेषु दैव्यस्ता एव मुक्ता ननु चातकेषु ॥ २ ॥

कुछ लोग देवी वाणी को कृतार्थ करते हैं और मूर्ख उसी को कुण्ठित करते हैं, जो दिव्य जलबिन्दु सीप के मुख में पड़ते हैं उन्हींसे मोती तय्यार होजाता है, चातकों के मुख में पड़े बिन्दु से नहीं।

परिश्रमज्ञं जनमन्तरेण मौनव्रतं बिभ्रति वाग्मिनोपि ॥
वाचंयमाः सन्ति विना वसन्तं पुंस्कोकिला पञ्चमचञ्चवोपि ॥ ३ ॥

परिश्रम जाननेवाला मनुष्य यदि न मिले तो वक्ता भी चुप रहते हैं। पञ्चम राग गाने में चतुर कोकिल भी वसन्त के बिना चुपही रहता है।

व्यालाश्च राहुश्च सुधाप्रसादाज्जिह्वाशिरोनिग्रहमुग्रमापुः ॥
इतीव भीताः पिशुना भवन्ति पराङ्मुखाः काव्यरसामृतेषु ॥ ४ ॥

हाथी और राहु को अमृत के कारण जिह्वा और मस्तक का कठिन दण्ड भोगना पड़ा है। इससे भीत होकर पिशुन मनुष्य काव्यरसामृत से अलग ही रहते हैं।

माद्यन्मातङ्गकुम्भस्थलवहलवसावासनाविस्रगन्ध-
व्यासङ्गव्यक्तमुक्ताफलशकलसत्केसराली करालः॥
व्याधीवैधव्यवेधाः स्वभुजबलमतग्रस्ततेजस्विधामा
विभ्यत्सारङ्गसार्थः सततमसहनः केसरी केन दृष्टः॥ ५॥

मतवाले हाथी के कुम्भ-स्थल की गाढ़ी चर्बी से वा होने के कारण कच्चे मांस के समान जो महकता है, हाथ कुम्भ-स्थल को अधिक खरोचने से निकले हुए मुक्ता के टुक से जिसका केसर भयानक होगया है, व्याध स्त्रियों को विध बनानेवाला अपने भुजबल से अन्य तेजस्वियों के तेज नीचा दिखाने वाला, वह सिंह किसके दृष्टिपथ में आया जिससे हिरनों का समूह डरा करता है।

कः कः कुत्र न घुर्घुरायितघुरीघोरो घुरेत्सूकरः
कः कः कं कमलाकरं विकमलं कर्तुं करी नोद्यतः॥
के के कानि वनान्यरण्यमहिषा नोन्मूलयेयुर्यतः
सिंहीस्नेहविलासवद्धवसतिः पञ्चाननो वर्तते॥ ६॥

, किस किस सूकर ने घुर्घुराराव से भयङ्कर बनकर लोग भयभीत नहीं किया है, कौन कौन हाथी किस किस मल वन को कमल हीन करने के लिए उद्यत नहीं होते हैं, ले भैंसे किस किस वन को तोड़ फोड़ नहीं रहे हैं क्योंकि समय सिंह सिंहिनी के प्रेम के कारण विलासी बना है।

आबाल्यादपि यो विदारितमदोन्मत्तेभ कुम्भस्थली
स्थालीमध्यक शोणशोणितसमुन्मुक्ताफलाहारप्रियः ॥
हस्तस्तस्य कथं प्रवर्ततु पुरः कृच्छ्रेप्यवस्थान्तरे
गर्तावर्त विवर्तमानशशकप्राणापहारे हरेः ॥ ७ ॥

जिसने बाल्यावस्था से ही मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल को तोड़ा है, और जिसे गर्म रक्त से सना हुआ मुक्ताफल प्रिय है, उस सिंह की चाहे कैसी ही बुरी अवस्था हो पर गड्ढे में गिरे भय व्याकुल हरिण को मारने के लिए उसका हाथ कैसे आगे बढ़ेगा।

रक्तात्यक्तसरकोटिनिभाः द्भासां वृथा पलाशवनतोपि पलाय्य जग्मुः ॥
सिंहस्य तस्य जरतो विषमा दशा यद्गोमायुवैरवयवैरपि नास्ति वृत्तिः ॥८॥

पलाश के फूल भी रक्तयुक्त सिंह के नखों के समान हैं, इसलिए हाथी पलाश वन को भी छोड़ कर भाग गये, उस बूढ़े सिंह की आज बुरी दशा है, जो कि आज उसे शृगाल के मांस के टुकड़े भी जीवन के लिए नहीं मिलते।

पर्जन्यं प्रतिगर्जतः प्रतिनिधिर्विन्ध्यस्य वातोद्धता-
नम्भोधीनिव धावतः सरभसं हत्वा रणे वारणान् ॥
वृक्षाद्वृक्षमुपेयुषोऽल्पवपुषः शाखामृगस्योपरि
क्रुद्धः सोपि भवानहो बत गतः पञ्चास्य हास्यां दशाम् ॥९॥

हे सिंह तुम, मेघ को देखकर गर्जते हो, वातक्षुभित समुद्रों के समान दौड़ते हुए विन्ध्याचल के समान हाथियों को रण में शीघ्रता पूर्वक मारते हो, आप एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर कूदने वाले अल्पकाय वानरों पर कोप करते हो, सिंह, दुःख की बात है कि आपने अपने इस आचरण से अपनी हँसी करायी।

यद्विन्ध्यः शिखरी गरन्तारि पल्लीभुजितः निम्नगः
सोत्कण्ठाऽऽरमणागमार्गमिलनर्द्धं गुः करेणुश्च यत्र ॥
तस्मिन् भद्रगणः स्मरत्यपि करी दैवं हि सर्वंकषं
सम्भूयांतरितं दुःखदं तु यदयं मन्दो धुरि ख्यापितः ॥१०॥

यह विन्ध्य पर्वत, उस पर का वेणु और पीपल तथा उत्कण्ठा पूर्वक शीघ्रता से आयी हुई यह हथिनी क्या आज इन सबको यह हाथी स्मरण करता है, भाग्य सब बातों को भुला देता है, यह तो सबसे अधिक दुःख की बात है कि "मन्द" आगे किया गया अर्थात् यह प्रधान बनाया गया। हाथी के एक निकृष्ट जाति को मन्द कहते हैं।

मध्ये विन्ध्यमुदुङ्गर्मिनार्मदनदीवातूलवातावली-
हेलोद्दूलितमल्लिकाकिसलयैर्यो वृद्धिमभ्यागत ॥
सोऽयं दैववशाद्दशाविरहितः शूत्कारकारी करी
निर्मुक्तगजरज्जुपाशविवशः कष्टं किमाचेष्टताम् ॥११॥

विन्ध्य पर्वत में उतुङ्ग लहरी नर्मदा नदी के वायु के द्वारा अनायास कम्पित मल्लिका की कोंपियों से जो बढ़ा है, वही आज भाग्य के फेर से हथिनी विहीन होकर शूत्कार कर रहा है, विवशभाव से रस्सियों में बंधा है वह अब क्या कर सकता है।

हे गन्धकुञ्जर महागिरिकुञ्जराजि मयापि मा स्मर सलीलनिमीलिताक्षः॥
मुञ्चाभिमानमधुना भज वर्तमानं चक्रं विधेरुपरि शासनमङ्कुशं च ॥१२॥

हे गन्धगज, अब आंखें बन्द करके पर्वत कुंजों का स्मरण न करो, अब अभिमान छोड़ दो, इस समय की अवस्था को भोगो, अब भव्य का शासन और अङ्कुश सहो।

यत्रोषितोसि चिरकालमकिंचनः सवर्णः प्रतिग्रहधनग्रहणाधर्मेणः ॥
निर्लज्ज गर्जसि समुद्रतटेपि तत्र दृष्टोऽधमोऽत्र समो घन नैव दृष्टः ॥१३॥

हे मेघ, तुमने बहुत दिनों तक जहां दरिद्र रह कर वास किया है, उससे जल ग्रहण करके तुम उसके ऋणी भी बने हो, हे निर्लज्ज, तुम उसी समुद्र तट पर गजते हो, तुम्हारे समान धृष्ट और अधम दूसरा नहीं देखा गया।

ास्यं निरस्य रसितैः सुचिरं विहस्य गात्रान्तरेषु घन वर्षसि चातकस्य ॥
वक्र कोटि कुटिलायतकन्धरस्य प्राणान्ययोस्य भवतः परिहासमात्रम् ॥१४॥

हे मेघ, मुंह खोलकर गर्जकर और खूब हंसकर चातक के शरीर पर तुम, पानी बरसाते हो, लम्बी और टेढ़ी गर्दन वाले उस चातक की मृत्यु तुम्हारे लिए केवल एक हंसी की बात है।

भट्ट त्रिविक्रम

इन्होंने नलचम्पू नाम का एक ग्रन्थ बनाया है, इस ग्रन्थ का दूसरा नाम दमयन्तीकथा भी है। भट्टत्रिविक्रम के पिता का नाम देवादित्य था। ये नेमादित्य भी कहे जाते थे। इनके पितामह का नाम श्रीधर था और ये शाण्डिल्य गोत्र के थे। भोजराज रचित सरस्वतीकण्ठाभरण में और रुद्रटालंकार की टीका में नलचम्पू के श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

कहाजाता है कि त्रिविक्रम कुछ पढ़े लिखे न थे, ये योंहीं अपना समय इधर उधर खेल कूद में बिताया करते थे। इनके पिता किसी राजा के यहां राजपण्डित थे। एक बार किसी कार्यवश इनके पिता कहीं बाहर गये हुए थे, उस समय राजा

पदन्यास (पैरों का रखना, अथवा पद्य में शब्दों का रखना) में निपुण नहीं है और जननीराग के (जनों के नीराग—विराग अथवा जननी के राग के) हेतु, बहुत बोलने वाले कुछ कवि बालकों के समान हैं।

> ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः
> यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्त्तिताः ॥ ३ ॥

वे वन्दनीय हैं, वे महात्मा हैं और उन्हींका यश इस संसार में स्थिर है, जिन लोगों ने काव्य बनाये हैं या जिनका काव्यों में वर्णन हुआ है।

> प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेशविचक्षणाः।
> भवन्ति कस्य चित्पुण्यैर्मुखे वाचो गृहे स्त्रियः ॥ ४ ॥

प्रसन्न मनोहारी और अनेक प्रकार श्लेष (अलङ्कार विशेष और आलिङ्गन) से युक्त बड़े भाग्य से किसी पुण्यवान के मुंह में ऐसी बात और घर में स्त्री होती है।

> रत्नान्यमूनि मकरालय मावमंस्थाः कल्लोलवेल्लितदृषत्परुषप्रहारैः ॥
> किं कौस्तुभेन विहितो भवतो न नाम याच्ञाप्रसारितकरः पुरुषोत्तमोपि ॥

हे समुद्र, अपनी लहरियों के आघात से इधर उधर लुढ़कनेवाले पत्थरों के कठोर प्रहार से इन रत्नों का तिरस्कार मत करो, क्या तुम्हें मालूम नहीं है कि कौस्तुभ के कारण पुरुषोत्तम को भी तुम्हारे सामने हाथ फैलाना पड़ा था !

> अन्योन्यस्य स्वयं भयादिव महाभूतेषु यातेष्वलं
> कल्पान्ते परमेक एव स तरुः स्कन्धोद्यमैर्जृम्भते ॥
> विन्यस्य त्रिजगन्ति कुक्षिकुहरे देवेन यस्यास्यते
> शाखाग्रे शिशुनेव सेवितजलक्रीडाविलासालसम् ॥ ६ ॥

जिस समय भय से सब भूत आपस में मिल कर
होजाते हैं, उस प्रलय के समय केवल एक उस वृक्ष की
प्रशंसा करनी चाहिए जो अपनी शाखाओं के साथ खड़ा रह
है, जिसकी शाखा पर बालक के समान विष्णु तीनों लोक क
अपने में स्थापित करके आश्रय लेते हैं।

सौधस्कन्धतलानि दीपपटलैः कम्पेन पाण्डुध्वजा
हंसाः पक्षविधूननेन मृदुना निद्रान्तनादेन च ॥
लक्ष्यन्ते कुमुदानिषट्पदरुतैरुत्सर्पिगन्धेन च
क्षुभ्यत्क्षीरपयोधिपूरसदृशे जाते शशाङ्कोदये ॥ ७ ॥

चन्द्रमा का उदय हुआ, चन्द्रमा की किरणें क्षीर
की लहरियों के समान फैल गयीं। उस समय किसी
पहचानना कठिन हो गया, कुछ का परिचय इस प्रकार ह
प्रकाश के द्वारा अटारी की छतों का काँपने के कारण, ध्व
का, पंख पटपटाने से और कोमल निद्रात्याग के पश्चात्
शब्द से हंसों का और भौंरे के शब्द तथा फैलनेवाली गन
से कुमुदों का परिचय उस समय होता था।

कैलासायितमद्रिभिर्विटपिभिः श्वेतातपत्रायितं
मृत्पङ्केन दधीयितं जलनिधेर्दुग्धायितं वारिभिः
मुक्ता हारलतायितं प्रततिभिः शङ्खायितं श्रीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जाते शशाङ्कोदये ॥ ८ ॥

सब पहाड़ कैलाश के समान होगये, वृक्ष श्वेतछ
समान हो गये, कीचड़ दही के समान मालूम पड़ने
समुद्र जल दूध के समान हो गया, लताएँ मुक्ता के सम
हो गयी, श्रीफल शङ्ख के समान हो गये और मनुष्य श्वेत द्वी
के मनुष्यों के समान हो गये, जब कि चन्द्रमा का उदय हुआ
अर्थात् चन्द्रोदय से सब वस्तु श्वेत हो गयीं।

दामोदर गुप्त ।

कश्मीर के राजा जयापीड़ के ये मन्त्री थे, इन्होंने कुट्टनीमत नाम की एक पुस्तक लिखी है। कुट्टनीमत को कोई कोई शम्भलीमत भी कहते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है। इस ग्रन्थ में कुट्टनियों के हथकण्डों का वर्णन है। यद्यपि इस पुस्तक में अश्लीलता अधिक है तथापि, यह शिक्षा-जनक है, इससे लाभ हो सकता है।

जयापीड़ बड़ेही पण्डित और विद्या प्रेमी राजा थे। इन्होंने उस समय के अच्छे अच्छे पण्डितों को अपने दरबार में स्थान दिया था। दामोदर गुप्त को अपना मन्त्री बनाया था। राजतरङ्गिणी में लिखा है

"तं दामोदरगुप्ताख्यं कुट्टनीमतकारिणम्,
कविं कविं बलिरिव धुर्यं धीसचिवं व्यधात्।

दामोदर गुप्त ने इस ग्रन्थ के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं इसका पता नहीं, यह ग्रन्थ भी काव्यमाला में अधूराही छपा है। सुना जाता है कि काशी के किसी सज्जन के उद्योग से यह ग्रन्थ पूरा भी प्रकाशित हुआ है।

काव्य-प्रकाशकार मम्मटभट्ट ने कुट्टनीमत के श्लोक अपने काव्य प्रकाश में उद्धृत किया है, क्षेमेन्द्र ने भी कवि-कण्ठाभरण में दामोदर गुप्त के श्लोक उद्धृत किये हैं। महाराज जयापीड़ का समय आठवीं सदी में माना जाता है। इन्होंने ७५१ से ७८६ तक कश्मीर का राज्य किया है, दामोदर गुप्त का भी यही समय मानना चाहिए।

आरोग्यं विद्वत्ता सज्जनमैत्री महाकुले जन्म ।
स्वाधीनता च पुंसां महदैश्वर्यं विनाप्यर्थैः ॥१॥

आरोग्य विद्वत्ता सज्जन मैत्री उत्तम कुल में ज
स्वाधीनता ये मनुष्यों के लिए धन के बिना भी महा
ऐश्वर्य हैं।

एकीभावं गतयोर्जलपयसोर्मित्रचेतसोश्चैव ।
व्यतिरेककृतौ शक्तिर्हंसानां दुर्जनानां च ॥२॥

एक में मिले हुए दूध और जल को तथा मित्रों के चि
को अलग अलग कर देने में हंस और दुर्जन ये ही दोनों सम
हैं। अर्थात् जिस प्रकार मिले हुए दूध और जल को हंस
पृथक् पृथक् कर देते हैं उसी प्रकार मिले हुए मित्रों के चित्तों
को दुर्जन अलग अलग कर देते हैं।

अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः ।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला ॥३॥

कपूर हटा लो, हार को दूर करो, कमलों से क्या होगा,
सखि, कमल की डंडियां भी व्यर्थ हैं, इसी प्रकार यह दिनरात
कहती है। विरहिणी का अवस्था की दुरीहन वर्णन।

खिन्ने खिन्ना मुदिते मुदिता समाकुला व्याकुलिते ।
प्रतिबिम्बसमा कान्ता क्रुद्धे केवलं भीता ॥४॥

दुःखी होने पर दुःखी, प्रसन्न होने पर प्रसन्न, व्याकु
होने पर व्याकुल, इस प्रकार प्रतिबिम्ब के समान रहो। हां
क्रोध करने पर केवल भयभीत होना चाहिये।

[illegible] ॥
[illegible] ॥५॥

अभीष्ट सुरत के परिश्रम को सहनेवाली विपरीत संयोग करने वाली और चित्त का अनुवर्त्तन करनेवाली, भार्या पुण्यवान को ही प्राप्त होती है।

कुमुदामोदी पवनः पिककूजितभृङ्गसार्थरसितानि।
इयमिति सामग्री घटिता दैवेन तद्विनाशाय ॥६॥

कुमुद की गन्धवाली हवा, पिक का गुंजार और भ्रमर का झंकार ये सब सामग्रियां भाग्य ने उसके नाश के लिए बनायी हैं।

स कथं न स्पृहणीयो विषयरतैस्तन्नितम्बविन्यासः।
शान्तात्मनापि विहितं विश्वसृजा गौरवं यत्र ॥७॥

उसके नितम्ब की रचना विषयी मनुष्यों के लिए स्पृहणीय क्यों न होगी। जिसकी गुरुता शान्तचित्त स्वयं ब्रह्मा ने ही बढ़ायी है।

जीवन्नेव मृतोसौ यस्य जनो वीक्ष्य वदनमन्योन्यम्।
कृतमुखभङ्गो दूरात्करोति निर्देशमङ्गुल्या ॥८॥

वह मनुष्य जीता ही मृतक के समान है जिसको देखकर लोग आपस में मुंह विचका कर दूर से ही अंगुली बताते हैं।

उपयुक्तखदिरवीटकजनिताधररागभङ्गभयात्।
कुलटा पाटक निकटे तृष्यन्त्यपि वारि नो पिबति ॥९॥

उत्तम खैर के बीड़े से बनी हुई ओठ की ललाई मट हो जायगी, इस भय से वेश्या प्याऊ के पास प्यासे रहने पर भी जल नहीं पीती है।

• अविदग्धःश्रमकठिनो दुर्लभयोषिद् वा विप्रः।
अपरत्युरपकान्तः कामिन्याजेन मे रातौ ॥१०॥

वह ब्राह्मण युवा—जिसके लिए स्त्री दुर्लभ है, जो मूर्ख कठिन कामी है—वह कामी के रूप में मेरी अपमृत्यु ही आयी थी, जो टल गयी, एक वेश्या रात की बात अपनी साथिन से कहती है।

पर्यङ्कः स्वास्तरणः पतिरनुकूलो मनोहरं सदनम्।
नार्हन्ति लक्षांशमपि त्वरितक्षणचौर्यसुरतस्य ॥११॥

पलंग, उत्तम बिछौना, अनुकूल पति, मनोहर घर ये सब र्यं सुरत के लाखवें हिस्से के भी बराबर नहीं है।

एष विशेषः स्पष्टो वह्नेश्च त्वत्प्रतापवह्नेश्च।
अङ्कुरति तेन दग्धं दग्धस्त्वानेन नोद्भवो भूयः ॥१२॥

अग्नि और तुम्हारी प्रतापाग्नि इनमें यही साफ़ साफ़ भेद के उस अग्नि से जलाया हुआ पुनः अङ्कुरित होता है, पर अग्नि के द्वारा जलाया हुआ कभी अङ्कुरित नहीं होता।

दत्तो वाञ्छितमर्थं सदनुरक्ता तव गृहं त्यक्त्वा।
तीचापलेन कीर्तिर्भ्रमसम्पा गता ककुभः ॥१३॥

आप वाञ्छित अर्थ देते हैं और उसमें अनुरक्त भी हैं वे आपका घर छोड़कर आपकी कीर्ति स्त्रीचापल्य वश देशाओं में चली गयी।

वा पृथ्वीमखिलामिदमाश्चर्यं मया दृष्टम्।
दोऽपि मदननन्दन परिहरति यदुप्रगे चरम् ॥१४॥

दमननन्दन, समूची पृथ्वी घूमते हुए मैंने यही आश्चर्य आप धन देते हैं पर उसका दूर से ही त्याग
।

इदमपरमद्भुततमं युवतिसहस्रैर्विलुप्यमानस्य ।
वृद्धिर्भवति न हानिर्यत्तव सौभाग्यकोषस्य ॥१५॥

यह और भी आश्चर्य है कि आपके सौभाग्य खजाने को हजारों स्त्रियां लूटती हैं, तथापि उसकी वृद्धि ही होती है हानि नहीं ।

प्रकृतिलघोर्येन कृता जघन्यवर्णस्य गौरवापत्तिः ।
जघनचपला यदार्या स पिंगलस्ते कथं तुल्यः ॥१६॥

स्वभाव से लघु नीच वर्ण को आपने गौरव दिया, बड़ा बनाया, आर्या को जघन चपला बनाने वाला पिंगल आपकी बराबरी कैसे कर सकता है ।

दिवाकर ।

इनका पूरा नाम मातङ्ग दिवाकर है । मातङ्ग चाण्डाल जाति को कहते हैं । दिवाकर भी चाण्डाल जाति में उत्पन्न हुए थे । इस कारण लोग इन्हें मातङ्ग दिवाकर कहते हैं । राजशेखर ने इनके विषय में लिखा है—

अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः
श्री हर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः ।

सरस्वती का प्रभाव आश्चर्य है, उन्हीके प्रभाव के कारण मातङ्गदिवाकर श्रीहर्ष की सभा का पण्डित हुआ और बाण तथा मयूर के समान उसे सम्मान मिला ।

दिवाकर ने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं, इसका पता नहीं। सुभाषित ग्रन्थों में इनके बनाये श्लोक उद्धृत हैं, वही

कुछ श्लोक चुन कर पाठकों की सेवा में अर्पित किये जाते हैं। ये श्लोक ही दिवाकर की योग्यता बतलायेंगे, दिवाकर किस प्रकार की कविता करते थे इसके विषय में इन श्लो- से बढ़कर दूसरा प्रमाण नहीं।

पातु वो मेदिनीदोलाबालेन्दुद्युतितस्करी।
दंष्ट्रा महावराहस्य पातलगृहदीपिका ॥ १ ॥

बालेन्दु के समान शोभनेवाली महावराह की दंष्ट्रा आपकी रक्षा करे, जो पृथ्वी के लिए दोला है और पाताल-रूपी घर की दीपिका।

याते शमं रजसि जातजलाभिषेका
धौताम्बरा. स्फुरितपाण्डुपयोधरान्ताः।
पत्युः प्रजार्थमधुना तव पुष्पवत्यो
वांछन्ति संगममिमाः ककुभश्रतस्रः ॥ २ ॥

रज (धूलि या स्त्री का मासिक) शान्त होगया, जल का अभिषेक होगया, (अम्बर) आकाश या वस्त्र, स्वच्छ हो गया, पीला पयोधर (स्तन या मेघ) प्रकाशित हुआ, ऐसी दशा में ये चारों दिशाएँ प्रजा के लिए (पुत्रोत्पत्ति के लिए या प्रजा के कल्याण के लिए, आप का संगम चाहती है, क्यों कि आप इनके पति हैं।

किं वृत्तान्तैरपरगृहगतैः किंतु नाहं समर्थ
स्तूष्णींस्थातुं प्रकृतिमुखरो दाक्षिणात्यस्वभावः।
गेहे गेहे विपणिषु तथा चत्वरे पानगोष्ठ्या
मुन्मत्तेव भ्रमतिभवतो वल्लभा हन्त कीर्तिः ॥ ३ ॥

दूसरे के घर की बातों से कोई मतलब नहीं, पर मैं चुप नहीं रह सकता, दक्षिण वासियों का स्वभाव ही अधिक

तोलने का होता है, आप की प्यारी कीर्ति घर घर बाज़ार बाज़ार चौतरों पर और अट्टों पर उन्मत्त के समान घूम रही है।

अनिःसरन्तीमपि गेहगर्भात्कीर्तिं परेषामसतीं वदन्ति।
स्वैरं चरन्तीमपि च त्रिलोक्यां त्वत्कीर्तिमाहुः कवयः सतीं तु ॥४॥

घर के बाहर न निकलनेवाली दूसरों की कीर्ति असती हो जाती है, पर आपकी कीर्ति इच्छा पूर्वक त्रिलोक में विचरण करती है और कवि लोग उसे सती कहते हैं।

आसीन्नाथ पितामही तव मही माता ततोऽनन्तरं
संप्रत्येवहि साम्बुराशिरसना जाया जयोद्भूतये।
पूर्णे वर्षशते भविष्यति पुनः सैवानवद्या स्नुषा
युक्तं नाम समस्तशास्त्रविदुषां लोकेश्वराणामिदम् ॥५॥

नाथ, यह पृथवी आप की पितामही थी पुनः माता हुई, इस समय यह जय के लिए समुद्र से वेष्टित आपकी स्त्री है, सौ वर्ष के बाद वही आप की पतोहू होगी, सब शास्त्रों के जाननेवाले आप के समान लोकेश्वर के लिए क्या यह उचित है।

धनञ्जय।

ये जैन कवि हैं, इन्होंने द्विसन्धान नामक महाकाव्य लिखा है, द्विसन्धान को राघवपाण्डवीय भी कहते हैं। इसमें रामकथा और पाण्डवकथा दोनों एक साथ ही लिखी गयी हैं। इसके अतिरिक्त राघव पाण्डवीय नामक एक दूसरा भी काव्य है, जिसके कर्ता कविराज नाम के कवि हैं। धनञ्जय ने एक निघण्टु भी लिखा है। ये मुंजराज के सभासद थे।

सूक्तिमुक्तावली में राजशेखर का एक श्लोक लिखा जिसमें धनञ्जय की स्तुति की गयी है।

द्विसन्धाने निपुणतां सतां चक्रे धनञ्जयः
यया जातं फलं तस्य सतां चक्रे धनञ्जयः

इनका समय नवीं सदी बतलाया जाता है, दशरूपक नाम के लक्षण ग्रन्थ के कर्ता भी धनञ्जय बतलाये जाते हैं, कुछ लोग कहते हैं कि वे धनञ्जय इस धनञ्जय से भिन्न हैं, पर जैन परम्परा से यह बात मालूम होती है कि दशरूपक के कर्ता भी ये ही, धनञ्जय हैं। इस प्रकार इन्होंने तीन ग्रन्थ बनाये हैं। १ द्विसन्धानमहाकाव्य, २ निघण्टु ३ दशरूपक। इनके अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने बनाये हैं कि नहीं इसका पता नहीं।

इनकी माता का नाम श्रीदेवी, पिता का नाम था और गुरु का नाम दशरथ था, यह बात इन्होंने अपने द्विसन्धानकाव्य के अन्त के एक श्लोक में इशारे बतलायी है।

अथ कदा नु वशा नु परासुता पुरमुपेत्य सदुर्जनकस्य या।
क्रियत इत्ययमाकुलमानसः प्रभुरवोचत वीक्ष्य पयोनिधिम्॥१॥

रावण अपनी निवास नगरी में पहुँच कर सब स्त्रियों में श्रेष्ठ यह जनक की सुता कब हमारे वश में होगी इस प्रकार आकुल मन होकर और समुद्र को देखकर बोला (युधिष्ठिर पक्ष) युधिष्ठिर हस्तिपुर पहुँचकर दुर्योधन की मृत्यु कब हमारे वश में होगी इस प्रकार आकुल मन होकर और समुद्र को देखकर बोले।

अयमगाधगभीरगुरुगु णैरुपगतो नियतावधिराद्र ताम्
यतिरिवाखिलसर्वहितव्रतो जलनिधिः सकलैरवलोक्यताम् ॥ २ ॥

यह समुद्र अगाध, गम्भीर और विशाल है। यह अपने गुणों के कारण आर्द्र है। इसकी सीमा निश्चित नहीं है। यह समस्त प्राणियों का हित करता है। यह यति के समान मालूम होता है। यति का गाम्भीर्य अगाध है, वह सबका गुरु है। वह दयालु है, गुणों के द्वारा उसकी मर्यादा निश्चित है। उसको सब लोग देखें।

असतुरां सुतरां स्थितिमुन्नतामसुमतां सुमतां महतां वहन्
वरचितै रुचितैर्मणिराशिभिः स्वरुचितैरचितैरयमात्यम् ॥ ३ ॥

तरन के अयोग्य उन्नत, सत्पुरुषों और प्राणियों की इष्टस्थिति को स्वभाव से धारण करने वाला, यह समुद्र ऊँचे सजाये हुए दीप्तिमान और राजाओं के योग्य मणि समूहों से अपनी स्वाभाविक शोभा धारण करता है।

अनिधनेन रसातलवासिना विगलितो निबिड वडवाग्निना ।
इह मुहुः शफरीपरिलङ्घनव्यति करा कथतीव सरित्पतिः ॥ ४ ॥

रसातलवासी अविनश्वर वड़वाग्नि के द्वारा यह समुद्र पियलाया गया है और यह चुराया जाता है, यह बात बीच बीच में मछलियों के कूदने से मालूम होती है।

कल्लोलाः सपदि समुद्धता मरुद्भिर्गण्डूषा इव करियादसां विभान्ति
और्वाग्निज्वलनशिखाकलापशङ्का मेतस्मिन्विदधति पद्म रागमासः ॥ ५ ॥

वायु के द्वारा उठायी गयी तरंगे जल हस्तियों के कुल्ला के समान मालूम पड़ती हैं इसमें कमल की लालिमा वड़वानल अग्नि की ज्वालाओं की भ्रान्ति पैदा करती है।

भान्त्येतस्मिन्मणिफनरङ्गासंगस्त न्मा रुव्याश्रिहततरङ्गासंगा ।
क्रीडास्थानैरचिरमही नासूचैरु द्गान्तानां सुचिरमहीनामुच्चैः ॥ १ ॥

इस प्रदेश में रुचिर पृथ्वी के बहुत दिनों तक उगले हु सर्पों की मणि के द्वारा रंजित टूटी हुई लहरियां बहु शोभती हैं ।

अपातु' जलमिदमिन्द्रनीलजालव्याजेन व्यवतरतीव मेघजालम् ।
वक्षोभिः करीमकरैर्विभिन्नमम्भो यात्युच्चर्मणिरुचिशक्रचापसावाद् ॥३॥

ये मेघों की पंक्तियां इन्द्रनीलमणि के व्याज से जल पीने के लिए उतरी हुई सी मालूम पड़ती हैं । हाथी और मगर के वक्षस्थल से टूटा हुआ और मणि की शोभा को प्रकाशित करने वाला जल इन्द्रधनुष के समान मालूम पड़ता है ।

एतान्प्रवालविटपान्स्वतटीभिरूढारूढान्निषिञ्चति हतैरुदधिस्तरङ्गैः ।
रङ्गैरिहाम्बुकरिणां निकटे वसन्तं सन्तं न सत्वसहिता ह्यवधीरयन्ति ॥४॥

समुद्र अपने तटों से लाये गये और अपने तटों पर (स्वयं) उत्पन्न हुए इन मूंगों के वृक्षोंको जल हस्ती के गमन से आहत तरंगों के द्वारा मानों सींच रहा है। समर्थवान् मनुष्य पास रहने वालों का निरादर नहीं करते ।

अध्यासीता निश्चला निस्तरङ्गानेतानेतानीलनीलान्प्रदेशान् ।
नोलाभ्रायां शङ्कया किं बलाका न्ते शङ्खानां पङ्क्तयस्ता विभान्ति ॥५॥

ये शङ्खों की पंक्तिया नहीं मालूम होती हैं, किन्तु तरंग रहित नीले प्रदेश में नील आकाश की शङ्का से बैठी हुई निश्चल बलाका (बक पंक्ति) मालूम होती है ।

गोखुराहत इवायमेकतो वर्तिकी भिरिव वर्तितोऽन्यतः।
मेघविभ्रम इवाम्बुधिः क्वचित्संकुलः स कुलपर्वतैरिव ॥ १० ॥

यह समुद्र एक ओर गौ के खुर से आहत के समान मालूम होता है दूसरी ओर चित्र लेखिकाओं के द्वारा चित्रित मालूम होता है, कहीं मेघों के उत्पन्न होने का सन्देह होता है और कहीं कुल पर्वतों से सकचा हुआ मालूम पड़ता है।

इयुक्तानामुदधिमहत्वस्तुत्या युक्त्यैतस्मिन्नुगुणभारत्यागः।
स्थाने स्थाने भवति कवीनां कुर्वन्त्युक्त्यै तस्मिन्नगुणभारत्यागः ॥११॥

समुद्र के महत्व की स्तुति में युक्ति पूर्वक उद्यत हुए कवियों की उक्ति में स्थान स्थान पर दोष हो जाते हैं। वे दोष शास्त्रीय ज्ञान के भार के त्याग से होते हैं।

क' मर्यादामेष जलात्मा परिवारो लोलो भिन्द्यादित्युपपश्यन्निव कूलम्।
न्वा गत्वावृत्ति मुदन्वान्भजतेऽयं न प्रत्येति स्वाम्यनुवर्गं प्रतिकूलम् ॥१२॥

यह जड़ा (ला) त्मा समुद्र चंचल है, कहीं मर्यादा को तोड़ न दे यह देखने के लिए बार बार तीर पर जाता है और लौट आता है। प्रतिकूल चलने वाले अनुचर का विश्वास स्वामी नहीं करता।

वेगोऽन्येति प्रतिदिशमापूर्णाना-
मालोकान्तं हिमकर विध्वस्तानाम्।
वैलौद्यानं प्रतिदिशमस्मिन्नेषा
मालोकान्तं हिमकरविध्वस्तानाम् ॥ १३ ॥

प्रत्येक दिशा में फैली हुई, चन्द्रमा के लिए फेंकी गयी और मगरों के द्वारा तोड़ी गए इन तरंगों का वेग प्रत्येक रात्रि में सूर्योदय तक आंखों से दिखायी नहीं पड़ता।

पद्मगुप्त ।

महाकवि परिमल का दूसरा नाम पद्मगुप्त था। कोई इनको अभिनव कालिदास भी कहते हैं। इनके पिता का नाम मृगाङ्कदत्त था, ये धारा नगरी के महाराज भोजराज के चाचा वाक्-पति राजदेव के सभापण्डित थे। वाक्पति राजदेव की मृत्यु के पश्चात् जब भोजराज के पिता सिन्धुराज धारानगरी के राजा हुए, तब ये उनके साथ रहने लगे। सिन्धुराज का दूसरा नाम कुमारनारायण था और "नवसाहसाङ्क" इनकी उपाधि थी। महाकवि परिमल ने इन्हीं अपने आश्रयदाता महाराज के नाम से नवसाहसाङ्क चरित नाम का एक काव्य बनाया है, जिसमें उन्हीं का वर्णन है। नवसहसाङ्क चरित पढ़ने वाले जानते हैं कि ये कितने सरस और स्वाभाविक कवि थे। ये ११ वीं सदी में उत्पन्न हुए थे। संग्रह ग्रन्थों में इनके कई श्लोक ऐसे पाये जाते हैं जो नवसाहसाङ्क चरित में नहीं हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि नवसाहसाङ्क चरित के अतिरिक्त और भी कोई काव्य इन्होंने बनाया होगा। पर आज केवल नवसाहसाङ्क चरित ही पाया जाता है। नवसाहसाङ्क चरित के चौथे सर्ग से कतिपय श्लोक के उद्धृत किये जाते हैं।

ततः स वेत्रवतीतटरंध्रे शशिप्रभालोकमहोत्सवस्पृहाम्,
स्फोटुरागगुरुप्रेम्णोदरे बभोद्गतां विद्रुमकन्दलीमिव ॥१॥

तदनन्तर राजा ने अपने चित्त में शशिप्रभा को देखने की इच्छा की, शशिप्रभा को देखना राजा के लिए एक महोत्सव था। जिस प्रकार समुद्र अपने तीर पर नयी निकली हुई मूँ

ो कन्दली के लिए स्पृहा करता है। वह कन्दली अनुराग
ती अथवा लाल रङ्ग की होती है।

शशिप्रभाशा नलिनी मृणलतामुपागते मौक्तिकदाम्नि सादरः
तदागते दूत इव न्यवेशयत्सदर्शितप्रेमलवे विलोचने ॥२॥

राजा की आशा शशिप्रभा पर लगी थी, उस आशारूपी
ामिलिनी का मृणाल बनकर वह मोतियों का हार राजा
ो मिला था, राजा उसको बड़े आदर से देखता था, राजा
सकी ओर प्रेमपूर्ण आँखों से देखता था, मानो वह अपनी
ाया के यहां से आये दूत को देख रहा हो।

पुनः पुनः षट्पदराजिमेचकां तदिन्द्रनीलाक्षरपंक्तिमैक्षत ।
स तत्क्षणान्मन्मथजातवेदसस्तनीयसीं धूमलतामिवोद्गताम् ॥ ३ ॥

वह बार बार नीलम की अक्षरपंक्तिको—जो भ्रमर के
मान काली थी, देखने लगा, मानो वह कामदेवरूपी अग्नि
पतली धूम की रेखा निकली हो।

सुगन्धिहारादनुलेपनं करे समुन्मिषत्स्वेदलवे विलुम्पति ।
असंगताया अपि दीर्घचक्षुषः पयोधरस्पर्शमिवाससाद सः ॥ ४ ॥

राजा वह हार अपने हाथ में लिये हुए था, उसके हाथ
पसीना लगने से हार का अनुलेपन राजा के हाथ में
गता था। यद्यपि बड़ीआँखवाली शशिप्रभा राजा के पास
हीं थी। तथापि राजा को उसके पयोधरस्पर्श के समान
ानन्द मिला।

तदीयनामाङ्कलिपिं शनैः शनैः सलीलमावर्तयितुं प्रचक्रमे ।
परिस्फुरत्पल्लवपाटलाधरो रहस्यविद्यामिव मन्मथस्य सः ॥ ५ ॥

उसके नाम के अक्षर बड़े प्रेम से राजा धीरे धीरे मन ही मन उच्चारण करने लगा। राजा के पल्लव के समान ओठ भी उस समय फरक रहे थे। मानो राजा कामदेव के रहस्य विद्या का जप कर रहा हो।

अनेकरूपालिखनप्रगल्भया मुनीश्वराणां वर्तिकयेव चिन्तया।
स कामनाहे हृदयैकमन्त्रवित् पुरा लिलेख चित्रं मुहुरन्ययान्यया॥६॥

चिन्ता चित्र बनाने की एक क़लम है, वह अनेक प्रकार के चित्र बनाने में बड़ी चतुर है। उसी चिन्तारूपी क़लम से अपने हृदय में बिना देखी और बिना परिचय पायी हुई उस स्त्री का राजा ने अनेक प्रकार के चित्र बनाये।

[illegible] शशिप्रभाविभ्रमदर्शनस्पृहा।
[illegible] विलासिनस्तस्य च कैरवस्य च॥७॥

कामदेव के प्रचण्ड आतप से तपे हुए उस विलासी राजा को मन में शशिप्रभा को देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई। जैसे कुमुदिनी को सूर्य के आतप से तपने पर जल में शशिप्रभा—चन्द्रमा के प्रकाश—को देखने की उत्कण्ठा होती है।

[illegible] दक्षिणेन स्फुरता च बाहुना।
[illegible] दुर्लभामिन्दुमुखीममन्यत॥८॥

इसी समय राजा का दक्षिणबाहु फरका, जो विशाल [illegible] के समान सुन्दर था। इस बाहु के फरकने से राजा को आशा और भी दृढ़ हुई। जो इन्दुमुखी मन से भी दुर्लभ है उसे राजा ने अदुर्लभ समझा।

[illegible] मनोहरे।
[illegible] शशिनः कलामिव॥९॥

राजा ने अपने सामने आगे की ओर तमाल वन में दृष्टि डाली, उसी वन में उन्होंने एक स्त्री को देखा, जो मेघ में चन्द्रमा की कला के समान शोभित होती थी।

विभक्तचूर्णालकभक्तिकुर्वतीविकीर्णचूड़ामणिचन्द्रिकं शिरः।
भयानुभावेन निदेशितेव सा ननाम मालिन्यवशा विशाम्पतिम् ॥१०॥

उसने राजा के प्रभाव की आज्ञा से परवश होकर राजा को प्रणाम किया। उसने अपने बिखरे हुए बालों को पहले ठीक किया, उसके मस्तक पर चूड़ामणि की शोभा फैल रही थी, ऐसी उस स्त्री ने राजा को प्रणाम किया।

दृशानरेन्द्रेण निदेशिते स्वयं शिलातले नातिविदूरवर्तिनि।
उपाविशत्सा रशनामणित्विषा निषिच्यमानेऽमरचापशोभिनि ॥ ११ ॥

राजा ने आंखों के इशारे से अपने पासवाली एक शिला बतला दी, उसी पर वह बैठ गयी, उसकी करधनी की मणियों की छाया पड़ने से वह शिला इन्द्रधनु के समान हो गयी थी।

तयानिदीर्घैर्दशनानुपातिभिर्विकृष्यमाणामिव भूषणांशुभिः।
इति क्षितीशेङ्गितयत्नदीपिकामुदीरयामास गिरं रमाङ्गदः ॥ १२ ॥

राजा के इङ्गित पाकर रमाङ्गद ने कहा, रमाङ्गद के वे वचन मानो उस स्त्री के भूषणों की प्रभा से खींचे गये हों, क्योंकि वह भूषणप्रभा रमाङ्गद के दांतों की प्रभा से मिल गयी थी।

अनेन विन्ध्याद्रिविहारजन्मना श्रमेण कामं भवती कदर्थिता।
मयूखसूर्याहिमुखानिलोष्मणा जटाविटङ्केन्दुकलेव शूलिनः ॥ १३ ॥

इस विन्ध्य पर्वत में भ्रमण करने के कारण आप बहुत थक गयी हैं, जिस प्रकार शिव के मस्तक पर सोये हुए सूर्य की गर्म वाष्प से चन्द्रमा की कला मुरझा जाती है।

अमी सरोजप्रतिमे मुखे मुहुस्तयातरागाभकपोलभित्तिनि ।
समुन्मिषन्तिश्रम वारिबिन्दवो मताह्नि लावण्यसुधालवा इव ।

हे कोमलाङ्गि ! तुम्हारा यह कमल के समान मुख
लगने से लाल हो गया है, इसपर पसीने के बूंद अमृत वि
के समान मालूम होते हैं ।

इतोऽयतं सोत्पलत्नाहपदेशिके निरन्तरं गन्धवहे वहत्यपि ।
न घूर्णते स्विन्नललाटसङ्गिना तवालकश्रेणिरियं मनागपि ॥१५॥

इधर तुम्हारे कर्णफूलों को नाचना सिखाने वाला वायु
बह रहा है, पर पसीने के साथ तुम्हारे ललाट पर सटे हुए
तुम्हारे बाल कुछ भी चञ्चल नहीं होते ।

अनेन पीनस्तनकम्पदायिना निराय तेनोद्वहता कदुष्णताम् ।
अयं प्रवालादपि पाटलच्छ विनंद्यते निश्वसितेनतेऽधरः ॥१६॥

यह तुम्हारे पीनस्तन को कंपाने वाली और लम्बी गरम
गरम सांस निकल रही है, इस सांस से मूंगे से भी लाल
तुम्हारा यह ओष्ठ क्या कष्ट नहीं पाता ?

अदिन्यपंक्तया श्रमवारि विप्रुषा निरन्तराभ्यासित रेखयाञ्चया ।
तवैष कण्ठः कुटजावदातया विलासमुक्तालतयेव भूष्यते ॥१७॥

पसीने के बूंदों की पंक्तियां जो रेखा के समान लगातार
उदित हुई हैं, मालुम होता है कि कुटज पुष्प के समान स्वच्छ
मोतियों की माला है और उस माला से तुम्हारा यह कण्ठ
भूषित हो रहा है ।

इदं महच्चित्र ममातुर्यं त्वया विगाह्यते मदन मद्वितीयया ।
इमा क: स्थिरपमुवोति दुर्गमा: क राजवेश्याभरणं भवादृशी ॥१८॥

यह तो और आश्चर्य की बात है कि इस मनुष्यहीन वन में तुम अकेली यात्रा कर रही हो, कहां ये विन्ध्याचल के दुर्गम प्रदेश और राजमहलों के आभरण कहां तुम।

नवोद्गताशोकपलाशकान्तिना निकामनिर्यन्नखचन्द्रिकेण च।
बिभर्षि कस्येदमनेन पाणिना वदावपूतेन्दुमरीचि चामरम् ॥१९॥

नये अशोक पल्लव के समान और जिसके नखों से प्रकाश फैल रहा है उस हाथ से चन्द्रमा की किरणों को भी नीचा दिखाने वाला यह किसका चामर धारण करती हो कहो।

नृपस्य कस्यापि परिच्छदाङ्गना यदि त्वमुर्वी विभवो हि कोपि सः।
मरुत्पतिर्मेनकयेव लब्धि यस्त्वयापि बालव्यजनेन वीज्यते ॥२०॥

यदि तुम किसी राजा की परिचारिका हो तो वह समृद्धिमान कौन है, जो मेनका द्वारा इन्द्र के समान तुम्हारे द्वारा चमर से वीजित होता है।

अपर्धिमन्या परवत्यसि स्त्रिया कयापि कासौ जगदेकसुन्दरी।
नवभ्रु यस्याः स्मरचाप यष्टयो विधेयतां यान्ति भवद्विधा अपि ॥२१॥

यदि तुम किसी स्त्री के अधीन हो तो बतलाओ सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी वह कौन है? जिसकी आज्ञाकारिणी कामदेव के धनुषरूप तुम्हारी समान स्त्रियां हैं।

परस्परस्पर्धिविलाससम्पदा मयं भवत्स्वामितया वि कल्प्यते।
मरुत्वतो वा रमणी रमाथवा कलत्रमर्द्धेन्दुविभूषणस्य वा ॥२२॥

इन्हीं तीनों की परस्पर में विलास संपत्ति की स्पर्द्धा हो सकती है और इन्हीं तीनों में एक तुम्हारी स्वामी भी हो सकता है, इन्द्र की स्त्री अथवा लक्ष्मी या महादेव की स्त्री।

इदं शरीरमिन्द्रकन्दरे मनीव ते शंसति कार्यगौरवम् ।
अन्यथा कथं भुरि अथवा घस्मरारण्ये भ्रमणीयनीतयः ॥ २१

इन पर्वत की कन्दराओं में तुम्हारा घमना किसी बड़े भारी गुरु कार्य को सूचित करता है, नहीं तो तुम्हारी समान नीति, चतुर स्त्री क्या हिंस्र जन्तुओं से पूर्ण वन में भ्रमण कर सकती है ।

अनेन खेलन्मदद्रन्तिना पथ त्वमागता चण्डि कुतो दुरध्वना ।
विधाय विश्लेषविषादमावयोः स्वकार्यनिष्ठे कथय क यास्यसि ॥२४॥

इस मार्ग में मतवाले हाथी क्रीड़ा करते हैं, यहां इस बुरे मार्ग से तुम कैसे आयी और हम लोग में वियोगरूपी विषाद उत्पन्न कर के अपने कार्य के लिए कहां जाओगी।

इति साभिहिता मृगायताक्षी समुपोढ़प्रणयं यशोभटेन ।
सहसा न जगाद लज्जया नु भयतः किन्तु नृपस्तु तामवोचत ॥२५

बड़े प्रेमपूर्वक रमाङ्गद ने उस स्त्री से ये बातें कहीं पर उसने सहसा कुछ उत्तर नहीं दिया, न मालूम लज्जा के कारण या भय के कारण । पर राजा उससे बोले ।

क्लान्तासि कौतुकहृतेन कदर्थितासि प्रश्नैरनेन विहितो न तवोपचारः ।
आतिथ्यमेव कुरुते परमङ्गखेदसंवाहनैकचतुरो निचुलानिलस्ते ॥२

तुम थक गई हो, कौतुक से बड़ी दूर आनेके कारण व्याकुल होगई हो, इन प्रश्नों से तुम्हारा स्वागत नहीं हुआ शरीर की थकावट दूर करनेवाला यह निचुल का वायु है ।

सुधारसैकनिष्यन्दिना कथितधुरस्य सा हसन्ती ।
दिनोष्मतसा वीतहंसा नरपतेर्वचसा बभूव ॥२

स्वभावमधुर सुधारसनिस्यन्दी राजा के वचनों से वह नागवधू हँसने लगी और उसकी थकावट दूर होगयी, जैसे सूर्य की किरणों से तपी हुई कुमुदिनी चन्द्रकिरणों से खिल जाती है।

पण्डित पाजक ।

सुभाषित ग्रन्थों में इनके श्लोक पाये जाते हैं, ये सरस और सुन्दर हैं, उनसे इनके शिवभक्त होने का पता लगता है। इसके अतिरिक्त इनके विषय में कुछ मालूम नहीं।

कथं स दन्तरहितः सूर्यः सूरिभिरुच्यते ।
यो मीनराशिं भुक्त्वैव मेषं भोक्तुं समुद्यतः ॥१॥

पण्डित लोग सूर्य को दन्तहीन क्यों कहते हैं जो सूर्य मीनराशि को भोग कर मेष का भोग करने के लिए उद्यत हुआ है।

क क्रीडति चरति क करोति वृत्तिं वारि क नाम पिबति स्वपिति क नाम ।
इत्थं मृगं निरपराधमबाधमानं व्याधीनु धावति वधाय धनुर्दधानः ॥२॥

कहां क्रीड़ा करता है, कहां चरता है, कहां अपना जीवन बिताता है कहां जल पीता है कहां सोता है। इस प्रकार निरपराध किसी को पीड़ा न देनेवाले मृग को मारने के लिए धनुष लेकर व्याध दौड़ता फिरता है।

चन्द्रः सुधांशुरयमग्निसुतो दिनेशः पुण्यैरवापि शरणाय मयेति तोषम् ।
मुग्धैणशाव भज मा त्यज पापमेनं मीनं प्रमुज्य सहसा कृतमेषभोगम् ॥३॥

यह चन्द्रमा है, यह सुधांश है, यह द्विजराज है, य
महर्षि का पुत्र है, बड़े पुण्यों से मैंने इसे शरण के लिए
है, हे मूर्ख हरिण बालक, यह प्रसन्नता छोड़ो यह पापी
छोड़ दो, क्यों कि इसने मीन का भोग कर शीघ्रही मे
भी भोग किया है।

हेमकार सुधिये नमोऽस्तु ते दुस्तरेषु बहुशः परीक्षितुम्।
काञ्चनाभरणमश्मना समं यत्त्वयैतदधिरोप्यते तुलाम्॥ ४॥

हे बुद्धिमान सुवर्णकार तुमको नमस्कार, तुम परी
करने के लिए सोने के भूषणों को पत्थर के साथ तुला
चढ़ाते हो।

भूत एव स घटोऽन्धकूप यस्त्वदाश्रयसादेमपनेतुमक्षमः।
मुद्रितं त्वधमचेष्टितं त्वया तन्मुखाम्बुकणिकाः प्रतीच्छता॥ ५॥

हे अन्धकूप! यह घड़ा तो हो ही चुका जो तुम्हारे प्रसा
का बदला नहीं चुका सकता, पर तुमने तो अधम कार्यों को
समाप्त ही कर दिया, जो तुम उस घड़े के मुंह के किनारों
की इच्छा रखते हो।

शतपदी सति पादशते क्षमा यदि न गोष्पदमप्यतिवर्तितुम्।
किमियता द्विपदस्य हनूमतो जलधिविक्रमणे विषदामहे॥६॥

सौ पैरों के होने पर भी शतपदी इस (नाम का
कीड़ा) यदि गोष्पद को भी नहीं लांघ सकता, तो हम भी
को दो पैर वाले हनूमान के समुद्र लांघ जाने के विषय
विषाद नहीं करना चाहिए।

न गुरुवंशपरिग्रहशौण्डता न च महागुणसंग्रहणादरः।
फलविधानकलापि न मार्गणे किमिह पुष्पककाष्ठगृहेऽपुना॥७॥

हे व्याधतनय, बड़े वंश (बांस या कुल) के ग्रहण करने की प्रवीणता नहीं, बड़े गुणों (धनुष की रस्सी या गुण) के संग्रह करने का आदर भी नहीं है और बाण में फलर (बाण के अग्रभाग में लगी लोहे की कील या फल) लगाने की तो बात ही क्या, फिर इस गृह में क्या है ?

तृणमणेर्मनुजस्य च तद्वतः किमुभयोर्विपुलाशयतोच्यते ।
ननु तृणाग्रलवावयवैर्ययोरवसिते ग्रहणप्रतिपादने ॥८॥

तृणमणि और उसके समान मनुष्यों के विशाल हृदय होने की बात क्या कही जाय, जिन दोनों का दान और ग्रहण तृण के सूक्ष्म अग्रावयव के द्वारा समाप्त होता है। अर्थात् वे मनुष्य तृण-मणि के समान हैं जिनमें दान देने और ग्रहण करने की शक्ति नहीं।

भ्रातः सुवर्णमयरूपकतारचित्रालंकारयत्नघटनासु सुवर्णकार।
दूरी कुरुश्रम मिहाघसुवर्णपात्रे दुर्वर्णं योजयितु रस्ति महार्घलाभः ॥९॥

भाई सुवर्णकार ! सुवर्ण के उत्तम अलङ्कारों के बनाने का तथा पच्चीकारी आदि का काम करना छोड़ दो इसमें परिश्रम न करो, क्योंकि यहां तो उसी को लाभ होता है जो सुवर्ण-पात्र में दुर्वण (चाँदी या बुरा रंग) जोड़ता है। अर्थात् यह स्थान गुणियों के आदर का नहीं, यहां तो उसी गुणी का आदर होता है जो खुशामद करे।

निर्नाशयाम्बरसीम्नि सूर्यशशभृत्ताराः पदप्राप्तये
मेघो घोररवैः पदाधिगमने दान प्रवृत्तस्ततः ॥
पश्चात्तापवशा दिवाशु धनुते सूर्यं तडिद्रोचिषा
चन्द्रं बालबलाकया करकया ताराः समं सर्वतः ॥ १०

आकाश में सूर्य चन्द्रमा और तारा इनका पद ग्रहण करने के लिए घोर हुङ्कार करनेवाले मेघ ने इनका नाश किया, जब इनका पद प्रान हो गया तब वह दान करने लगा, अर्थात् वृष्टि करने लगा, पुनः क्रोधवश उसने शीघ्रही विद्युत् के प्रकाश से सूर्य बनाया, बगलों के समूह से चन्द्रमा और करका—आकाश से गिरनेवाले पत्थरों द्वारा उन्होंने तारा बनाकर चारों ओर फैलाया।

> इन्दुं तण्डुलखण्डमण्डलरुचिं नित्योदितं जातु वि-
> दृदर्शे मेघघरट्टघट्टनगलद्‌दृदेहं विधत्ते विधिः ॥
> नूनं लोकहितेच्छया किरति यत्सन्तर्पणं सर्वतः
> शुभ्राश्मविशिष्टपिष्टरुचिरं भूमौ तुषारं दिवः ॥ ११ ॥

चन्द्रमा गोलाकार चावल की राशि के समान है, वह प्रतिदिन उदय होता है, किसी अमावास्या के दिन ब्रह्मा ने मेघरूपी जाता में पीस कर उसे चूर चूर कर दिया, मालूम होता है लोक कल्याण की इच्छा से सबको तृप्त करने वाले उसी चूर्ण को ब्रह्मा आकाश से तुषार के रूप में गिरा रहा है, जो स्वच्छ आटे के समान है।

> राजन्यद्यपि ते बाहू कान्तालिङ्गनलालसौ
> तथापि समरे भेत्तुं शक्तौ हस्तिकवाटयोः ॥ १२ ॥

हे राजन् यद्यपि तुम्हारे बाहु स्त्रियों को आलिङ्गन करने के लिए उत्कण्ठित रहते हैं, तथापि युद्ध में वे हाथी और फाटकों को तोड़ने में समर्थ हैं। "शक्तौ हस्तिक वाटयोः" यह एक पाणिनि का सूत्र है।

> अगम्यागमनात्प्रायः प्रायश्चित्तयिते जनः ॥
> अगम्यं स्वयशो याति सर्वत्रैव च पावनम् ॥ १३ ॥

न जाने योग्य स्थानों में जाने से प्रायः मनुष्य पापी हो जाते हैं, उनके लिए प्रायश्चित्त करना आवश्यक होजाता है, पर तुम्हारा यश अगम्य है (वह दूसरों को नहीं मिल सकता) फिर भी वह पवित्र समझा जाता है और वह सर्वत्र शोभित हो रहा है।

> यशस्तव सौजन्यमहो विस्मयकारकम् ॥
> आत्मवच्छुक्लतां नीतमयशो विद्विषामपि ॥ १४ ॥

तुम्हारे यश की सुजनता देख कर आश्चर्य होता है, क्योंकि शत्रुओं के कलङ्क को भी उसने अपने समान शुक्ल बना दिया है।

> गुणवत्त्वे समानेपि भेदोयं युवयोर्महान् ॥
> धनुर्याति गुणच्छेदमविच्छेदगुणो भवान् ॥ १५ ॥

धनुष और आप दोनों ही गुणी हैं, (गुणवान् या रस्सी-वाला) गुणी होना दोनों का बराबर है, पर धनुष का गुण (रस्सी) टूट जाता है और आप का गुण कभी नहीं टूटता।

> किं करोतु गुणौघस्ते शरावपुटदीपवत् ॥
> वसुधाम्बरपर्यन्तं विनिवारितगोचरः ॥ १६ ॥

परई के सम्पुट में रखे हुए दीप के समान तुम्हारे ये गुण समूह क्या करें, क्योंकि पृथ्वी और आकाश के बीच में इनकी गति रोक दी गयी है, अर्थात् तुम्हारे गुण समस्त पृथिवी में फैले हैं।

> दोर्विग्रहकालज्ञः कृतहृत्योऽपि पार्थिवैः ॥
> पाथसन्यवशारीति भवता मोक्षमीयते ॥ १७ ॥

पाणिनि सन्धि विग्रह और काल (व्या सन्धि, समास आदि का विग्रह, वर्तमान आदि जानते हैं और आप भी इनको (सुलह, और विरोधक जानते हैं। पाणिनि ने कृत्यप्रत्यय किया है और आप कृत्यहैं, पर पाणिनि प्रत्यय को प्रकृति से परे करते हैं प्रत्ययकारी (दूसरे का विश्वास करनेवाले) नहीं हैं आपसे उनकी तुलना नहीं हो सकती।

> उपसर्गाः क्रियायोगे पाणिनेरिति सम्मतम् ॥
> निष्क्रियोपि त्वदरातिः सोपसर्गः सदा कथम् ॥ १८ ॥

पाणिनि कहते हैं कि क्रिया (व्याकरण की क्रिया योग में उपसर्ग होते हैं (अव्यय विशेष) पर तुम्हारे निष्क्रिय हैं, राज्यच्युत होने से उन्हें कोई काम नहीं, भी उन्हें सदा उपसर्ग (उपद्रव) लगे रहते हैं।

> तव शत्रुर्भवांश्चैव द्वयं व्याकरणायते ॥
> स निपातोपसर्गाभ्यां त्वं गुणागमवृद्धिभिः ॥ १९ ॥

आपके शत्रु और आप दोनों ही व्याकरण के समान आपके शत्रु तो निपात और उपसर्ग से (नाश और उपद्र) और आप आगम और वृद्धि से (आय और उन्नति से, घेरे हैं। निपात उपसर्ग आगम और वृद्धि ये व्याकरण के पारिभाषिक शब्द हैं।

> असत्कविप्रणीतानां श्लोकानामिव ते द्विषाम् ॥
> क्लिष्टार्थसंधिवृत्तीनां निपाताः स्युः पदे पदे ॥ २० ॥

कुकवि के बनाये श्लोकों के समान तुम्हारे शत्रुओं का- जनके अर्थ (धन या शब्दार्थ) सन्धि (व्याकरण की सन्धि

गा सुलह) और वृत्ति में (जीविका या समास) कठिनता उत्पन्न हो गयी है उनका प्रत्येक पद में निपात हो (नाश या च वै आदि निपात)

यदस्ति तद्ददासीति नैतच्चित्रमवैम्यहम् ॥
भयं स्वप्नेऽपि ते नास्ति दत्तं तद्विद्विषां कथम् ॥२१॥

जो तुम्हारे पास है उसका दान करते हो इसमें कोई आश्चर्य नहीं, पर भय तो तुम्हारे पास स्वप्न में भी नहीं है, फिर तुमने शत्रुओं को भय कैसे दिया।

अकलङ्को दृढः शुद्धः परिवारी गुणान्वितः ॥
सद्वंशो हृदयग्राही खड्गः सुगदृशस्तव ॥२२॥

अकलङ्क दृढ शुद्ध परिवारी (स्वजनोंवाला या म्यान वाला) गुण युक्त शुद्ध वंश में उत्पन्न हृदय ग्रहण करनेवाले खड्ग तुम्हारे समान हैं।

प्रायेण सर्वं पश्यन्ति विपरीतं विनश्वराः।
त्वं काञ्चनगौरोऽपि कालः एवासि विद्विषाम् ॥२३॥

'प्रायः नष्ट होनेवाले, सभी वस्तुओं को विपरीत ही देखा करते हैं, तुम सुवर्ण के समान गौरवर्ण हो, पर शत्रु तुमको काला काल, या मृत्यु ही समझते हैं।

त्वया सह विरुद्धानां कुलः कुशलता कुले ॥
वासोऽपि नियतस्तेषां वने कुशलताकुले ॥२४॥

तुम्हारे साथ विरोध करनेवालों के कुल में कुशलता कैसी, कुशलता से घिरे वन में ही उनका निश्चित वास होता है।

विरोधाभव शत्रुता जातं सौन्दर्यसंगम् ॥
विमर्षणगर्भित्वं सर्वाङ्गेषु च शून्यता ॥२५॥

शत्रुओं में तुम्हारा विरोध होने पर बौद्ध दर्श
उत्पत्ति हुई, क्योंकि तुम्हारे शत्रु युद्ध में भाग गड़े होने है
सर्वांग शून्य हो जाता है। बौद्ध दर्शन पदार्थों को क्षण
मानता है और बाह्य पदार्थों की सत्ता स्वीकार नहीं कर

लक्ष्मीपङ्ककलङ्किताः परिमितक्ष्माखण्डपिण्डीभुजो
गर्वग्रन्थिविसंस्थुलैरवयवैर्नेपथ्यकन्थावृताः।
एते कीदृश ईश्वराः कुपतयः किं वनाथाथवा
यस्त्रैलोक्य विलक्षणः स्फुरतु नः सत्यं स एवेश्वरः ॥२१॥

जिनकी लक्ष्मी पङ्क (पाप) से कलङ्कित है, जो थोड़े
नियमित पृथिवी के टुकड़े का भोग करनेवाले हैं, गर्व की
गांठों से जिनके अंग ऊबड़खाबड़ हो गये हैं और जो गहने
आदि वेश धारण करनेवाले हैं ये कैसे ईश्वर हैं, ये कुपति
पृथिवीपति या कुस्वामी हैं। अथवा इस चर्चा से लाभ क्
जो त्रिलोक से विलक्षण है, वह हम पर प्रसन्न रहे, वही ईश्
है, यह बात सत्य है।

वाराणस्यामसीवारानीवाराशनसुस्थितेः।
नवारामनिषण्णस्य वारा स्नानस्य यान्तु मे ॥२७॥

मेरे ये दिन वाराणसी में बीतें, केवल तेनी के चावलों से
मैं सुस्थ बना रहूं। नये बाग में मेरा निवास हो और स्नान
के द्वारा मेरे दिन बीतें।

स्वजनवसतेर्निःसृत्याराच्छलेन बलेनवा
लघु विरचयान् गहं भूमेस्तलेन दलेन वा।
विदधतुलं प्राणत्राणं फलेन जलेन वा
वनभुवि कदास्यां शून्योहं मलेन खलेन वा ॥२८॥

छल या बल से अपने स्वजनों के साथ में निकल कर पृथिवी के तल से दल (पत्तों) से एक छोटा घर बनाकर फल से या जल से प्राणरक्षा करता हुआ वन में मैं कब मल से या खल से शून्य होऊँगा ।

पूजायमर्पयपुलकितौ पाण्योः परं पेशलौ
  पुण्यौ पातकिपापपाटनपटू पृथ्व्यां प्रथां प्रापतुः ।
प्रायः पर्वतपुत्रिकाकरयुगैः पल्येपुरा पूजितौ
  पादौ पण्डित पाजकः पशुपतेः प्रीत्या पुरः पश्यतु ॥२९॥

जो पूजा के लिए अर्पित कमलसमूह से पुलकित हुए हैं जिनके दोनों बाजू बड़े ही कोमल हैं, जो पवित्र हैं पापियों के पाप दूर करने में समर्थ हैं, जिन्होंने पृथ्वी में प्रसिद्धि पायी है और जो पहले पार्वती के कर द्वारा पूजित हैं, पशुपति के उन पादों को पाजकपण्डित प्रीतिपूर्वक अपने आगे देखें।

पाणिनि ।

ये प्रसिद्ध वैयाकरण हैं। आजकल पाणिनीय व्याकरण का ही यहां पठन पाठन होता है। पञ्जाब के पेशावर के पास शालातुर नामक एक गांव के ये रहनेवाले थे। आज इस शालातुर गांव का नाम लाहौर है। पञ्जाब की राजधानी लाहौर से यह भिन्न लाहौर है। इनके पिता का नाम दाक्षी था।

यद्यपि पाणिनि का जन्म पञ्जाब में हुआ था, परन्तु इनकी शिक्षा पाटलिपुत्र नगर में हुई। उन दिनों पाटलिपुत्र में

वर्ष नामक एक बड़े विद्वान् रहते थे। पालिनि ने उन्हींसे अध्ययन किया है। आराधना से भगवान् शिव को प्रसन्न करके पाणिनि ने व्याकरण बनाने की योग्यता प्राप्त की थी। व्याकरण सूत्रों के अतिरिक्त इन्होंने एक काव्य भी बना है, जिसका पातालविजय अथवा जाम्बवतीविजय न है। ये ईसवी सदी के पहले के हैं।

> अयाससादास्तमनिन्द्यतेजा जनस्य दूरोज्झितमृत्युभीतेः
> उत्पत्तिमद्वस्तु विनाश्यवश्यं यथाहमित्येवमिवोपदेष्टुम् ॥१॥

तेजस्वी सूर्य अस्त हो गये, इसलिए कि मृत्युभय भूले हुए मनुष्यों को यह उपदेश दें कि उत्पन्न होनेवाल वस्तुओं का विनाश अवश्यही होता है, जैसे मेरा विना हुआ है।

> असौ गिरेः शीतलकन्दरस्थः पारावतो मन्मथचाटुदक्षः
> धर्मालसाङ्गीं मधुराणि कूजन् संवीजते पक्षपुटेन कान्ताम् ॥२॥

यह कबूतर पर्वत की शीतल कन्दरा में बैठा हुआ है, यह कामिजनोचित खुशामद करने में भी बड़ा दक्ष है। घाम से अलसायी हुई अपनी कबूतरी को मधुर बोलकर पंखों से हवा कर रहा है।

> गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः
> अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं तच्छर्वरी गौरिव हुङ्करोति ॥३॥

वर्षा का समय है, आधी रात बीत गयी, मेघ गर्ज रहे हैं मालूम होता है कि चन्द्रमा को न देख कर यह रात्रि हुङ्कार कर रही है, जैसे गाय बछड़े को न देख हुङ्कार करती है।

सरोरुहाक्षीणि निमीलयन्त्या रवौ गते साधु कृतं नलिन्या,
अक्ष्णां हि दृष्टापि जगत्समस्तं फलं प्रियालोकनमेकमेव ॥४॥

सूर्य के चले जाने पर नलिनी ने कमलरूपी अपनी आखें बन्द कर लीं यह अच्छा ही किया, (सन्ध्या के समय कमलों का बन्द होना कवि मानते हैं) क्योंकि आखों से यद्यपि समस्त जगत् देखा जाता है तथापि उनका फल तो केवल अपने प्रिय को देखना ही है ।

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो मुखं निशायामभिसारिकायाः
धारानिपातैः सह किन्तु वान्तश्चन्द्रोऽयमित्यार्ततरं ररास ॥५॥

रात को अभिसारिका चली जा रही है, उसी समय बिजुली चमकी और उसीके प्रकाश में मेघ ने उस अभिसारिका का मुंह देखा । उसको संदेह हुआ कि धारा बरसाने के साथ साथ हमने चन्द्रमा को भी उगल दिया है क्या, इसीसे वह बड़े दुःख से चिल्लाने लगा अर्थात् गरजने लगा ।

शुद्धस्वभावान्यपि संहतानि निनाय भेदं कुमुदानि चन्द्रः ।
अवाप्य वृद्धिं मलिनान्तरात्मा जडो भवेत्कस्य गुणाय वक्रः ॥६॥

शुद्ध स्वभाववाले और आपस में मिले हुए कुमुदों का चन्द्रमा ने भेद किया । अर्थात् चन्द्रमा ने कुमुदों को विकसित किया । दुरात्मा कुटिल और मूर्ख मनुष्य वृद्धि पाकर किसीके कल्याण के लिए नहीं होते ।

उपोढरागेण विलोलतारकं तथा गृहीतं शशिना निशामुखम्
यथा समस्तं तिमिरांशुकं तया पुरोऽनुरागाद्गलितं न लक्षितम् ॥७॥

चन्द्रमा का राग (अनुराग अथवा लाल रंग) बढ़ा हुआ है, उसने विलोलतारक (चञ्चल आंखोवाला अथवा तारोंवाला) निशामुख (सन्ध्या समय अथवा निशानामक

(किसी स्त्री का मुंह) को इस प्रकार ग्रहण किया कि
को अनुराग के कारण अपने अन्धकार रूपी कपड़े के
जाने का भी ज्ञान न हुआ।

प्रकाश्य लोकान् भगवान् स्वतेजसा प्राप दरिद्रः सवितापि ज
अहो चलाश्रीर्बलमानदाय्यहो स्पृशन्ति सर्वं हि दशा विपर्यये

भगवान सूर्य अपने तेज से समस्त लोकों को प्रका
करते हैं, पर अन्त में वे भी प्रभादरिद्र अर्थात् निस्तेज
जाते हैं, दुःख है कि बल और सम्मान देनेवाली लक्ष्मी
चञ्चल है। विपरीत अवस्था में सब को दुर्गति भोग
पड़ती है।

क्षमाः क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरिताम्,
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम्,
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति समालोकनपरा—
स्तडिद्दीपालोकैर्दिशि दिशि चरन्तीह जलदा ॥९॥

जिसने रात छोटी बनायी, जिसने जबरदस्ती नदियों
जल खींचा, जिसने समस्त भूमि को तपाया, और वनों
सुखाया, वह उष्णांशु इस समय कहां गया इसी बात
खने के लिए हाथ में बिजुलीरूपी दीपक लेकर सम
देशाओं में मेघ घूम रहे हैं।

पाणौ शोणतले तनूदरि दरक्षामा कपोलस्थली,
विन्यस्ताञ्जनदिग्ध लोचनजलैः किं म्लानिमानीयते।
मुग्धे चुम्बतु नाम चञ्चलतया भृङ्गः क्वचित् कन्दली—
मुन्मीलन्नवमालतीपरिमलः किन्नेन विस्मर्यते ॥१०॥

हे तनूदरि, अंजन लगे आंसों के जल से थोड़ा दुर्ब
कपोल और लाल हथेली क्यों म्लान बना रही हो

भोली भ्रमर चञ्चलता के वशवर्ती होकर यदि कन्दली का चुम्बन करता है, तो करने दो, इससे वह नयी मालती के फैलनेवाले सौरभ को नहीं भूल सकता।

कल्हारस्पर्शगर्भैः शिशिरपरिचयात् कान्तिमद्भिः कराग्रैः
श्चन्द्रेणालिङ्गितायास्तिमिरनिवसने स्त्रंसमाने रजन्याः
अन्योन्यालोकिनीभिः परिचयजनित प्रेमनिस्यन्दिनीभि
र्दूरारूढे प्रमोदे हसितमिव परिस्पष्टमाशासखीभिः ॥११॥

चन्द्रमा का कर (हाथ या किरण) कमलपराग से भरा है और ठण्ढक के साथ से सुन्दर भी हो गया है, चन्द्रमा ने उसी कर से रात्रि का आलिङ्गन उस समय किया जब कि उसके अन्धकार रूपी कपड़े गिर रहे थे, यह बात दिशाओं ने भी देखी, इनमें परिचय से प्रेम उत्पन्न हो गया है और ये परस्पर एक दूसरी को देख भी सकती हैं, चन्द्रमा और रात्रि का प्रेम जब बहुत ऊंचे चढ़ गया तब साफ़ साफ़ दिशाओं ने हंस दिया।

विलोक्य सङ्गमे रागं पश्चिमाया विवस्वतः
कृतं कृष्णमुखं प्राच्या नहि नार्यो विनेर्ष्यया ॥१२॥

सूर्य का पश्चिम दिशा में अनुराग देखकर (सन्ध्या के समय सूर्य का वर्ण लाल हो जाता है) पूर्व दिशा ने अपना मुंह काला कर लिया। बिना ईर्षावाली स्त्री नहीं होती।

प्रकाशवर्ष ।

ये संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों में से नहीं हैं। इनका बनाया कोई काव्य है कि नहीं इसका भी पता नहीं मिलता। हां सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक संग्रहीत हुए बड़े ही मधुर और भावपूर्ण हैं।

शिशुपालवध के टीकाकार वल्लभदेव ने चौथे सर्ग अन्त में अपनी टीका में लिखा है -

श्रुत्वा प्रकाशवर्षात्तु व्याख्यानं तादृशीदृशम्,
विशेषतस्तु नैवास्ति बोधोऽत्रानुवाहते ।

प्रकाशवर्ष से सुनकर मैंने ऐसी टीका लिखी है। ऐसे काव्यों की टीका लिखने के लिए केवल बोध की आवश्यकता नहीं है। यहां तो केवल अनुभव से ही काम चल सकता है। इससे यह मालूम पड़ता है कि प्रकाशवर्ष एक अनुभ पण्डित थे। इससे अधिक इनके विषय में कुछ मालूम नहीं

जगत्सिसृक्षाप्रलयक्रिया विधौ प्रयत्न मुन्मेषनिमेषविभ्रमम् ।
वदन्ति यस्येक्षणलोलपक्ष्मणां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः ॥१॥

जगत् की सृष्टि और प्रलय का कारण जिसकी आंखों की चंचल पपनियों का खुलना और बन्द होना ही है, ऐसा विद्वान् कहते हैं, उस परमेष्ठी (ब्रह्मा) को नमस्कार।

याच्ञापदं मरणदुःखमिवानुभाव्य दत्तेन किं खलु भवन्त्यतिभूयसापि ।
कल्पद्रुमान्परिहसन्त इवेह सन्तः संकल्पितैरतिददत्यकदर्थितं यत् ॥२॥

मरण दुःख क समान मांगने का दुःख सहवाकर यदि अधिक भी दिया जाय तो उससे लाभ क्या? सज्जन मनुष्य कल्पद्रुमों का हंसते हुए प्रार्थी के मनोरथ से अधिक देते हैं।

एवमेव नहि जीव्यते खलास्तत्र का नृपतिवल्लभे कथा।
पूर्वमेव हि सुदुःसहोऽनलः किं पुनः प्रबलवायुनेरितः ॥३॥

खल यों ही प्राणनाशक होते हैं, उस पर यदि उन्हें राजाश्रय मिल जाय तो क्या कहना? एक तो योंही आग का ताप दुःसह होता है, उसपर यदि उसे वायु की सहायता मिल जाय तो कहना ही क्या।

मन्यानिन्दति दुःखितानुपहसत्याबाधते बान्धवा-
न्छूरान्द्वेष्टि धनच्युतान्परिभवत्याज्ञापयत्याश्रितान्।
गुह्यानि प्रकटी करोति घटयन् यत्नेन वैराशयं
ब्रूते शीघ्र मवाच्य मुञ्चति गुणान्गृण्हातिदोषान्खलः ॥४॥

माननीयों की निन्दा करता है, दुःखितों की हंसी उड़ाता है, बान्धवों को पीड़ा देता है शूरों से द्वेष करता है दरिद्रों का तिरस्कार करता है आश्रितों को आज्ञा देता है, गुप्त बातें प्रकाशित करता है, द्वेष प्रकाशित करके, न बोली जानेवाली बात बोलता है गुणों को छोड़ देता है और दोषों को ग्रहण करता है, यह खलों का स्वभाव है।

कृपणसमृद्धीनामपि भोक्तारः सन्ति केचिदतिनिपुणाः।
जलसम्पदोम्बुराशेर्यान्ति लयं शश्व दौर्वाग्नौ ॥५॥

कृपण धन के भोग करनेवाले भी कोई कोई निपुण मनुष्य होते हैं, समुद्र की जलरूपी सम्पत्ति बड़वाग्नि में लीन हो जाती है अर्थात् बड़वाग्नि समुद्र की जल सम्पत्ति का भोग करता है।

धनवाहुल्यमहेतुः कोपि निसर्गेण गुणकरः।
प्रावृषि करयाम्बुमुचः सम्पतिः किमधिकाम्बुनिधेः ॥६॥

प्रकाशवर्ष ।

ये संस्कृत के प्रसिद्ध कवियों में से नहीं हैं। इनका ब
कोई काव्य है कि नहीं इसका भी पता नहीं मिलता
सुभाषित ग्रन्थों में इनके नाम से जो श्लोक संग्रहीत हुए हैं
बड़े ही मधुर और भावपूर्ण हैं।

शिशुपालवध के टीकाकार वलभदेवा ने चौथे सर्ग
अन्त में अपनी टीका में लिखा है -

> श्रुत्वा प्रकाशवर्षात्तु व्याख्यानं तावदीदृशम्,
> विशेषतस्तु नौवास्ति बोधोऽप्राप्तुवाहते।

प्रकाशवर्ष से सुनकर मैंने ऐसी टीका लिखी है।
काव्यों की टीका लिखने के लिए केवल बोध की आवश्य
नहीं है। यहां तो केवल अनुभव से ही काम चल सकता
इससे यह मालूम पड़ता है कि प्रकाशवर्ष एक अनुभ
पण्डित थे। इससे अधिक इनके विषय में कुछ मालूम नहीं

> जगत्सिसृक्षाप्रलयक्रिया विधौ प्रयत्न मुन्मेषनिमेषविभ्रमम्।
> वदन्ति यस्येक्षणलोलपक्ष्मणां पराय तस्मै परमेष्ठिने नमः॥१॥

जगत् की सृष्टि और प्रलय का कारण जिसकी आंखों की
चंचल पपनियों का खुलना और बन्द होना ही है, ऐसा विद्वान
कहते हैं, उस परमेष्ठी (ब्रह्मा) को नमस्कार।

> ...पदं मरणदुःखमिवानुभाव्य दत्तेन किं खलु भवन्त्यतिभूयसापि।
> ...द्रुमान्परिहसन्त इवेह सन्तः संकल्पितैरतिदधत्यकदार्थितं यत्॥२॥

मरण दुःख के समान मांगने का दुःख सहवाकर यदि
अधिक भी दिया जाय तो उससे लाभ क्या? सज्जन
कल्पद्रुमों का हंसते हुए प्रार्थी के मनोरथ से

बाणभट्ट।

इन्होंने कादम्बरी और हर्षचरित नामक दो गद्यकाव्य लिखे हैं, ये हर्षवर्द्धन के आश्रित थे। ये सातवीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे। इन दो ग्रन्थों के अतिरिक्त पार्वती-परिणय नाम का एक छोटा नाटक भी इन्हीं के नाम से प्रसिद्ध है। कुछ लोगों का कहना है कि हर्षवर्द्धन के नाम से प्रसिद्ध नागानन्द आदि नाटक भी बाणभट्ट के ही बनाये हैं, पर इसमें कुछ पुष्ट प्रमाण नहीं है। चण्डीशतक भी इन्होंने बनाया है। जैन पण्डित गुणविनय गणि ने नलचम्पू की एक टीका लिखी है, उसमें उन्होंने बाणभट्ट के "मुकुटताडि-तक" नामक एक नाटक का भी उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य विचार चर्चा में बाणभट्ट के कई श्लोक उद्धृत किये हैं और उन श्लोकों को पद्य कादम्बरी का बतलाया है, इससे बाण की बनायी एक पद्य कादम्बरी भी थी यह मालूम पड़ता है, पर आज न तो यह पद्य कादम्बरी मिलती है और न मुकुटताडितक नाटक।

बाणभट्ट ने हर्ष चरित के प्रारम्भ में अपना परिचय इस प्रकार दिया है। ये वात्स्यायन गोत्रोत्पन्न थे। इनके पूर्वज का नाम कुबेर था, कुबेर के चार पुत्र हुए, ईशान, हर, पशुपति और अच्युत। पशुपति के पुत्र अर्थपति हुए, अर्थपति के भृगु, हंसशुचि, आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए, इनमें एक चित्रभानु भी थे, चित्रभानु का व्याह राज्यदेवी से हुआ, चित्रभानु और राज्यदेवी के पुत्र बाण हुए, बाल्यावस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हुआ इस कारण इनका लालन पालन दूसरों ने

कार्येशः प्रष्टव्यो न प्रनर्मान्यो मम प्रियो चेति।
गुरुरप्यासनसेव्यः प्रियानितम्बः कदा मन्त्री ॥१५॥

कार्येश मनुष्य से किसी विषय में सलाह लेनी चाहिए, यह मनुष्य हमारा मान्य है या प्रिय है इस कारण किसी से सलाह नहीं लेनी चाहिए। मान्य गुरु (भारी) प्रिय स्त्री। नितम्ब पर क्या कोई मन्त्री का भार सौंपता है।

गुणवानस्मि विदेशः क इव ममेत्येव दुरभिमानलवः।
अञ्जनमक्षिण विराजति विन्यस्तं न पुनरधरमणौ ॥१६॥

मैं गुणवान् हूं मेरे लिए विदेश क्या, यह केवल दुरभिमान मात्र है, अञ्जन आंखों में ही शोभता है, यदि यह अधर में लगाया जाय तो क्या अच्छा लगेगा।

स्तब्धप्रकृतिर्लोके बहुमानमुपैति नातिशयनम्रः।
स्पष्टमत्रोदाहरणं पयोधरे कुवलयाक्षीणाम् ॥१७॥

लोक में उसी का मान होता है जिसकी प्रकृति कड़ी है नम्र प्रकृतिवालों का मान नहीं होता। स्त्रियों के स्तन इस उदाहरण हो सकते हैं।

कल्पद्रुमान् विगतवाञ्छजने सुमेरौ रत्नान्यगाधजलधिसलिले [illegible]।
धाता श्रियं निरधना प्रमत्तेषु निस्पमग्न्युगतमः खलु बद्धे निहितः प्रीतः।

ब्रह्मा ने कल्पद्रुम को धीरे लोगों के बीच में उत्पन्न किया, जिन्हें किसी चीज की चाहना नहीं। उत्तम रत्नों को समुद्र के अगाध जल में उत्पन्न किया और खलों के लिए धन में कामदर्शन रखा। अर्थात् भलों की आंखों के सामने प्रकाश नहीं रहता, अतएव उनको विवेक नहीं होता।

किया। बाण के चौदहवें वर्ष में इनके पिता का भी स्वर्ग हो गया। उसी समय से इनपर कुटुम्ब पालन का भार इत्यादि।

इनके विषय में आचार्य गोवर्धन ने अपनी आर्यासप्त में लिखा है।

> जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथा बगच्छामि।
> प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥

जिस प्रकार शिखण्डिनी अधिक बल प्राप्त करने के लि दूसरे जन्म में शिखण्डी हुई, उसी प्रकार अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए वाणी ने (सरस्वती) बाण का रूप धारण किया।

> नमस्तुङ्गशिरश्चुम्बिचन्द्रचामरचारवे।
> त्रैलोक्यनगरारम्भमूलस्तम्भाय शंभवे॥१॥

जिनके ऊंचे मस्तक को सुन्दर चामर के समान चन्द्रमा चुम्बन कर रहा है, जो त्रैलोक्य रूपी नगर का मूल स्तम्भ है, उस शिव को नमस्कार।

> एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैज्ञानिकाः
> सम्भ्येते धनिकाःकलासु सकलास्वाचार्यचर्या बणाः।
> अप्येते सुमनोगिरं निशमनाद्बिभ्यत्यहो श्रावया।
> धृते मूर्धनि कुण्डले कपणतः क्षीणे भवेतामिति॥२॥

एक एक से बढ़ कर दूसरों के गुण जानने में प्रवीण ी है, जो समस्त कलाओं में आचार्य बनने के योग्य हैं, वे णीरूपी कुसुम को कानों में रखने से डरते हैं, क्योंकि कानों

में रखने से कुण्डल का धक्का पाकर वे घिस जायँगी, इसलिए वे आदरपूर्वक उन्हें माथे पर ही रखते हैं।

प्रीतिं न प्रकटीकरोति सुहृदि द्रव्यव्ययाशङ्कया।
    भीतःप्रत्युपकारकारणभयात्वन्ना क्रुष्यते सेवया॥
मिथ्या जल्पति वित्तमार्गणभयात्स्तुत्यापि न प्रीयते।
    कीनाशो विभवव्ययव्यतिकरग्रस्तः कथं प्राणिति॥३॥

धन खर्च होने के भय से मित्रों पर प्रेम प्रकट नहीं करते, प्रत्युपकार करना पड़ेगा, इस भय से सेवा से भी प्रसन्न नहीं होते, धन ढूँढ़ने के भय से झूठ बोलते हैं, स्तुति से भी प्रसन्न नहीं होते, यमराज धनव्यय के डर से किस प्रकार जीते हैं।

करिकलभ विमुञ्च लोलतां चर विनयव्रतमानताननः।
मृगपतिनखकोटिभङ्गुरो गुरुरुपरि क्षमते न तेङ्कुशः॥४॥

करिकलभ, चञ्चलता छोड़ दो, सिर नीचा करके विनय-व्रत का पालन करो, सिंह के नख के समान टेढ़ा इस अङ्कुश का तुमपर पड़ना उचित नहीं।

नगृह्णाति ग्रासं नवकमल किंजल्किनि जले,
    न पङ्केराह्लादं भजति बिसभङ्गार्धशकलैः।
सकल्त्रीं प्रेमाद्रामपि चिपहते नान्यकरिणीं
    स्मरन्दावभ्रष्टांहृदय दयितां वारण पतिः॥५॥

नवीन कमल के रेणुयुक्त जल में ग्रास ग्रहण नहीं करता कमल डंडी के टुकड़ों से भी प्रसन्न नहीं होता, प्रमादं दूसरी
१ हथिनी को भी सहन नहीं करता, क्योंकि वन में बिछुड़ी हुई अपनी हृदय दयिता को यह हाथी स्मरण कर रहा है।

लतान्ताबादत्ते शशिशकलशीतं नच जलं
भ्रमद्भृङ्गासङ्गाः परिहरति कान्ताः कमलिनीः।
दधद्भाराकारं करमपि करी जातविरहो
वितन्वन् श्वासान्क्षणमपि वनान्तं न रमते ॥६॥

लताओं को नहीं छूता, चन्द्रखण्ड के समान शीतल जल को भी नहीं छूता, सुन्दर कमलिनी को भी—जिसपर भौंरें गूँज रहे हैं—दूरही से छोड़ देता है, शूँड़ भी भार के समान धारण करता है, विरही हाथी उसासें लेरहा है और वन में उसे एक क्षण के लिए भी चैन नहीं।

नदीवप्रान्भित्त्वा किसलयवदुत्पाट्य च नरू-
न्मदोन्मत्तांजित्वा करचरणदन्तैः प्रतिगजान्।
जरांप्राप्यानायं तरुणजनविद्वेषजननीं
स एवायं नागः सहति कलभेभ्यः परिभवम् ॥७॥

जिसने नदी के तटों को तोड़ दिया है, फूल के समान जिसने वृक्षों को उखाड़ दिया है, शूँड़ पैर और दांतों से जिसने अपने प्रतिद्वन्दी मतवाले हाथियों को जीत लिया है, वही हाथी आज बूढ़ा होगया है, युवक उससे द्वेष करने लगे हैं और वह छोटे छोटे बच्चों से पराजित होरहा है।

वरमियमङ्कुशक्षतिरलक्षितमापतिता
विनयविधित्सया शिरसि तेगजयूथपते।
न पुनरपश्चिमाकरजवज्रशिखाभिहतिः
प्रसभसमुत्थितस्य निशिता वनकेसरिणः ॥८॥

हे गजराज, तुमको सीधा करने के लिए तुम्हारे मस्तक पर अलक्षित पड़नेवाला यह अङ्कुश का प्रहार अच्छा है, नहीं तो वन-सिंह के तीखे और वज्र के समान नखों का आकस्मिक आघात सहना पड़ेगा और वह अच्छा नहीं।

तरलयसि दृशं किमुत्सुकामकलुषमानसवासलालिते ।
अवतार कलहंसि वापिकां पुनरपि यास्यसि पङ्कजालयम् ॥१०॥

स्वच्छकान सरोवर में वास करनेवाली राजहंसि तुम
धर उधर क्या देख रही हो, इस वापी में उतरो, पुनः मान-
रोवर भी जाना ।

'वियोगिनी चन्दनपङ्कपाण्डुमृणालिकाहारनिवद्धग्रीवा ।
बाला चलाम्भःकणदन्तुरेषु हंसीव शिश्ये नलिनीदलेषु ॥११॥

चन्दन पंक के समान पीली, मृणालिका तार के सहारे
जीवित रहने वाली वियोगिनी स्त्री छोटे छोटे जलकणों से
युक्त कमलिनी के पत्तों पर हंसों के समान सोयी ।

दुःखदशां प्रविशन्त्यास्तस्याः कण्ठं मुहुर्मुहुर्वाष्पः ।
स्वल्पावशेषजीवितनिर्याणमिवैव निरुणद्धि ॥ १२ ॥

उसकी बुरी दशा है, गला वाष्प से भर आया है, मानो
थोड़ा बचा हुआ प्राण जाने न पावे इसलिए वह गले को
रोक रहा है ।

सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गबद्धक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि ॥
शुष्यत्स्रोतसि भूरितप्तरजसि ज्वालायमानाम्भसि
ग्रीष्मे मासितताऽर्कतेजसि कथं पान्थ प्रजज्ञीवसि ॥ १३ ॥

इस ग्रीष्म मास ने सब दिशाओं को भर दिया, विरवा
जला दिये, मृगों पर सदा क्रोध किया, वृक्षों को पतला बनाया,
भौंरों के आनन्द को घटाया, स्वतन्त्रता पूर्वक कुन्द-पुष्प से द्वेष
किया, सोतों को सुखवाया, धूलि को गर्म किया, जल को
अग्नि के समान बनाया, पान्थ, तुम इस ग्रीष्म मास में
जब कि सूर्य का तेज फैल रहा है, कैसे जीते हो ।

दूरादेव कृतोञ्जलिर्न तु पुनः पानीय पानार्थिना
रोमाञ्चोपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्यादरात्।
रूपालोकनविस्मितेन चलितो मूर्धा न शान्त्या तृषा-
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन घटितो वीक्ष्य प्रपापालिकाम् ॥ १

दूर से ही पथिक ने हाथ जोड़े, पर पीने के पानी के लि
नहीं, रोमाञ्च हो आया, पर शीत के कारण नहीं, किन्तु प्रेम
कारण। रूप देखकर वह विस्मित हो गया था इस कारण उसने
अपना सिर हिलाया, प्यास शान्त होने के कारण नहीं, प्रपा-
पालिका (पनसाला चलानेवाली) को देखकर पथिक ने
अपने भाग्य सफल किये।

स्वेदाम्भःकणिकाचितेन वपुषा शीतानलस्पर्शनं
तर्षोत्कर्षजुषा मुखेन शिशिरस्वच्छाम्बुपानादरः ॥
दूराध्वक्लमनिःसहैरवयवैश्छायासु विश्रान्तयः
कश्मीरान्परितो निदाघसमये धन्यः परिभ्राम्यति ॥ १

वह मनुष्य धन्य है जो गरमी के दिनों में कश्मीर
भ्रमण करता है, क्योंकि वहां स्वेद बिन्दुयुक्त शरीर
शीतलवायु का स्पर्श होता है, प्यास लगने पर ठंढा
पेलता है, और दूर चलने के कारण अंगों के थक जाने
श्राम के लिए छाया मिलती है।

ग्रीष्मोष्मप्लोषशुष्यत्पयसि बकभयोद्भ्रान्तपाठीनभाजि
प्रायः पङ्कैकमात्रं गतवति सरसि स्वल्पतोये लुठित्वा ॥
कृत्वा कृत्वा जलार्द्रीकृतमुपरि जरत्कर्पटार्धं प्रपायां
तोयं लब्ध्वापि पान्थः पथि चलति हहा हेति कु 'न्पि पाशु॥ ११ ॥

तलाव का जल ग्रीष्म के दाह से सूख गया है, वहां की मछलियां बगलों के भय से व्याकुल हो गयी हैं उसमें प्रायः कीचड़ ही रह गया है, उसके थोड़े—स्वल्प जल में लोट कर जीर्ण वस्त्र के टुकड़े को पथिक ने अपने ऊपर रखा, जब वह पनशाला में गया तब उसे जल मिला, पर वह प्यासा ही हाहा, करता हुआ जा रहा है।

लवणाम्बुनिधेरम्भःकृत्स्नमुद्गीर्य तोयदाः ।
दधुर्धवलतां भूयः पीत दुग्धार्णवा इव ॥ १८ ॥

मेघों ने लवण समुद्र के समस्त जल को गिरा दिया, तब वे श्वेत हो गये, मानों उन्होंने क्षीरसमुद्र का पान किया है।

नीलोत्पलवने रेजुः पादाः श्यामायिता रवेः ।
घनबन्धनमुक्तस्य श्यामिका मलिना इव ॥ १९ ॥

नीलकमल के वन में सूर्य के श्याम बने हुए चरण (किरणें) शोभते हैं। मानों मेघ के बन्धन के कारण वे श्याम हो गये थे और वह श्यामता मुक्त होने पर भी वर्तमान है।

द्वारे गृहस्य पिहिते शयनस्य पार्श्वे वन्हिर्ज्वलत्युपरि तूलपटो गरीयान् ।
अङ्के ऽनुकूलमनुरागवशात्कलत्रमित्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥२०॥

घर का द्वार बन्द है, पलंग के पास आग जल रही है, ऊपर ओढ़ने के लिए भारी रुई का ओढ़ना है अङ्क में अनुरागवती स्त्री है, इस प्रकार सोने वाले को यह जाड़ा क्या कर सकता है।

धृतधनुषि बाहुशालिनि शैला न नमन्ति यत्तदाश्चर्यम् ।
रिपुसंज्ञकेषु गणना कैव वराकेषु काकेषु २१ ॥

जब ये धनुष धारण करते हैं तो पर्वत नहीं नवते यही आश्चर्य है, रिपुनामक विचारे कामो की क्या गिनती।

अङ्गणवीथी वसुधा कुल्या जलधिः स्थली च पातालम्।
वल्मीकश्च सुमेरुः कृतप्रयत्नस्य धीरस्य ॥ २२ ॥

उद्योगी धीर पुरुष के लिए समूची पृथिवी आंगन समुद्र नहर, पाताल मैदान, और सुमेरु पर्वत मिट्टी के ढेर के समान है।

महाकवि बिल्हण।

ये संस्कृत साहित्य के एक धुरन्धर कवि हैं। कालिदास अश्वघोष परिमल आदि की श्रेणी के ये कवि हैं। इन कविता सरस मनोहर और थोड़ा परिश्रम से आस्वाद्य है इन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक अपने काव्य ग्रन्थ में अपना परिचय दिया है, वह यहां लिखा जाता है।

ये काश्मीर के रहने वाले थे, काश्मीर के प्रधान नगर प्रवर पुर (श्रीनगर) से तीन मील दूर खोनमुखनामक एक ग्राम था, यही ग्राम बिल्हण के पूर्वपुरुषों की निवास भूमि थी। बिल्हण तीन भाई थे, इनके बड़े भाई का नाम इष्टराम और छोटे भाई का नाम आनन्द था। मझले ये स्वयं थे। इनके पिता का नाम ज्येष्ठकलश और माता का नाम नागादेवी था। इनके पितामह का नाम राज्यकलश और प्रपितामह का नाम मुक्तिकलश था। बिल्हण ने लिखा है कि मेरे पिता ज्येष्ठकलश ने महाभाष्य पर एक टीका लिखी है। पर उस टीका का आज पता नहीं मिलता। बिल्हण का विद्याभ्यास काश्मीर में ही हुआ था। बिल्हण ने अपनी विद्या के विषय में यह लिखा है:—

साङ्गो वेदः फणिपतिदृशा शब्दशास्त्रे विचार
प्राणा यस्य श्रवणसुभगा साहि साहित्यविद्या,
को वा शक्तः परिगणयितुं श्रुतीं तत्वमेतत्
प्रज्ञादर्शे किमिव विमले नास्य संक्रान्तमासीत् ॥

अङ्गो के सहित वेद और शब्द शास्त्र में महा भाष्यकार के समान जिसका विचार था, श्रवणों के सुखदायी वह साहित्य विद्या जिसके प्राण हैं, अथवा कौन गिन सकता है। यथार्थ बात यह है कि इनके स्वच्छ बुद्धिदर्पण में कौन सी ऐसी बात है, जिसका प्रतिबिम्ब न पड़ा हो।

विद्याध्ययन के पश्चात् इन्होंने देश का परिभ्रमण किया, काशी से चलकर मार्ग में चेदीराज कर्णराज से इनकी मैत्री हुई, इनके यहां कुछ दिनों तक महाकवि बिल्हण ने वास किया था और यहीं उन्होंने अपना पहला काव्य रामचरित लिखा था। यह काव्य बिल्हण ने चेदीराज कर्णराज को ही समर्पित किया था। वहां से चलकर गङ्गाधर नामक किसी कवि के यहां इन्होंने वास किया, वहां से ये कल्याण गये और वहां के राजा विक्रमराज की सभा के ये मुख्य पण्डित चुने गये। ये विक्रमदेव त्रिभुवन मल्लनाम से प्रसिद्ध हैं। सन् १०७६ से ११२७ ई० तक इन्हों ने राज्य किया।

बिल्हण ने अपने विक्रमाङ्कदेवचरित में अनन्त और कलश इन राजाओं का उल्लेख किया है, उस समय अनन्त मर चुका था और कलश को राजगद्दी मिली थी। अनन्तराज ने सन् १०२८ से १०८० ई० तक और कलश १०८० से १०८८ ई० तक काश्मीर का शासन किया। बिल्हण के विषय में काश्मीर के इतिहास राजतरङ्गिणी में इस प्रकार लिखा है।

कर्णापति की बात खेद के साथ सुनकर कुमार [illegible] सरस्वती के चञ्चल वस्त्र के समान सुन्दर दन्त किरणों की परम्परा प्रकाशित करते हुए उत्तर दिया।

वाचालतैव पुरतः कवीनां कान्त्या मदोयं सन्निधे सुधांशोः।
त्वत्सन्निधौ पाटवनाटनं यत्तथापि भक्त्या किमपि ब्रवीमि ॥ ८ ॥

यह कवियों के सामने बकवाद करना है, चन्द्र[illegible] सामने अपनी सुन्दरता का गर्व करना है, वैसे ही [illegible] सामने अपनी पटुता दिखाना भी है, फिर भी भक्ति के [illegible] कुछ कहता हूँ।

विचारचातुर्यमपाकरोति तातस्य भूयान्मयि पक्षपातः।
ज्येष्ठे तनूजे सति सोमदेवे न यौवराज्येऽस्ति ममाधिकारः ॥ ९ ॥

पिता का मुझ पर बड़ा प्रेम है इसी कारण वे इस बात पर गहरा विचार नहीं करते। बड़े लड़के सोमदेव के रहते यौवराज्यपद के ग्रहण करने का हमारा अधिकार नहीं है।

चालुक्यवंशेऽपि यदि प्रयाति मर्यादामाचारविपर्ययस्य।
अहो महद्दुःखमतः किमन्यद्वनेऽङ्कुशोऽभूत्कलिकुञ्जरोऽयम् ॥ १० ॥

चालुक्य वंश में भी यदि मर्यादा का अतिक्रम हो[illegible] यह बड़े दुःख की बात है, और क्या उस समय यही कहना चाहिए कि यह कलियुगी हाथी अनङ्कुश हो गया।

[illegible] प्राङ्विभुं [illegible] [illegible] योग्यः [illegible] मे।
[illegible] [illegible] न मे [illegible] ॥ ११ ॥

[illegible] सी का चाहिए कि सबसे पहले मैं बड़े भाई को [illegible], मर्यादा का अतिक्रम से काली हुई [illegible] [illegible] को हमें ग्रहण नहीं।

ज्येष्ठं परिम्लानमुखं विधाय भवामि लक्ष्मीप्रणयोन्मुखश्चेत् ।
किमन्यदन्यायपरायणेन मयैव गोत्रे लिखितः कलङ्कः ॥ १२ ॥

बड़े भाई के मुँह को मलिन बनाकर यदि हम राज लक्ष्मी के प्रेम में उत्कण्ठित हों तो और क्या, अन्यायी होकर मैंने ही अपने गोत्र में कलङ्क लगाया ।

तातश्चिरं राज्यमलंकरोतु ज्येष्ठे ममारोहतु यौवराज्यम् ।
लीलयाक्रान्तदिगन्तरोऽहं द्वयोः पदातिव्रतमुद्वहामि ॥ १३ ॥

पिता बहुत दिनों तक राज्य करें, मेरे बड़े भाई युवराज बनाये जायं और मैं अनायास दिशाओं पर आक्रमण करूं और इन दोनों का सिपाही बना रहूं ।

रामस्य पित्रा भरतोऽभिषिक्तः क्रमं समुल्लङ्घ्य यदात्मराज्ये ।
तेनोत्थिता स्त्रीजित इत्यकीर्तिरद्यापि तस्यास्ति दिगन्तरेषु ॥ १४ ॥

राम के पिता ने क्रम की परवा न कर भरत को राज्य दिया, इसलिए स्त्री के वश में होने की उनकी अकीर्ति फैली और आज भी वह ज्यों की त्यों वर्तमान है ।

तदेष विश्राम्यतु कुन्तलेन्द्र यशोविरोधी मयि पक्षपातः ।
न किं समालोचयति क्षितीन्दुरायासशून्यं मम यौवराज्यम् ॥ १५ ॥

हे कुन्तलेन्द्र, आप अपने इस विचार को छोड़ें, क्योंकि इससे अपयश होगा । क्या महाराज का ध्यान इस बात की ओर नहीं है कि मैं तो बिना परिश्रम से ही युवराज बना हूं ।

पुत्रादिवः श्रोत्रपवित्रमेवं श्रुत्वा चमत्कारमगान्नरेन्द्रः ।
इयं हि लक्ष्मीदुरितपांसुलानां केषां न चेतः कलुषीकरोति ॥१६॥

कानों को पवित्र करनेवाली बात पुत्र से सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ, क्योंकि यह लक्ष्मी तो दोषों की खान है और इसके लिए किसका चित्त मलिन नहीं हो जाता ।

सस्नेहमङ्के विनिवेश्य चैनमुवाच रोमाञ्चतरङ्गिताङ्गः ।
क्षिपन्निवात्युज्ज्वलदन्तकान्त्या प्रसादमुक्तावलिमस्य कण्ठे ॥ १७ ॥

राजा ने अपने पुत्र को गोद में बैठा लिया, उनका शरीर पुलकित हो गया। वे उज्ज्वल दांतो की शोभा से पुत्र के गले में मानों मोतियों की माला पहना रहे हो, ये बड़े प्रेम से बोले।

भाग्यैः प्रभूतैर्भगवानसौ मे सत्यं भवानीदयितः प्रसन्नः ।
चालुक्यगोत्रस्य विभूषणं यत्पुत्रं प्रसादीकृतवान्भवन्तम् ॥ १८ ॥

बड़े भाग्य से भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए हैं। यह बात बिलकुल सच है, क्योंकि उन्होंने प्रसन्न होकर ही चालुक्य गोत्र के अलङ्कार स्वरूप आपको पुत्र के रूप में प्रसाद दिया है।

एतानि निर्यान्ति वचांसि वक्त्रात्कस्यापरस्य श्रवणामृतानि ।
मधूनि लेह्यानि सुरद्विरेफैर्न पारिजातादपरः प्रसूते ॥ १९ ॥

कानों के लिए अमृत के समान ये बातें किसी दूसरे के मुंह से थोड़ेही निकल सकती हैं। देवलोक के भ्रमरों के लिए मधु पारिजात के अतिरिक्त दूसरे वृक्षों से नहीं मिलता।

यस्याः कृते भूमिभृतां कुमाराः के न पापं मदविह्वलानाम् ।
उन्मत्तमातङ्गमदप्रगुर्वी सा राज्यलक्ष्मीस्तृणवत्पुरस्ते ॥ २० ॥

जिसके लिए राजाओं के लड़के न मालूम कितने बड़े पाप कर डालते हैं, मतवाले हमारे हाथियों से भी युक्त यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारे लिए तृण के समान है।

कट्टाममीतामनुधिनिर्गतेव स्थानाद्गैर्भूपति राजलोक ।
हस्मीरसौ स्वनुजस्वभदा पातं भविनी विनयव्रतस्य ॥ २१ ॥

यह लङ्का के पास वाले समुद्र से निकली है, राक्षसियों के समान इसकी तृप्ति के लिए भी रक्तासव चाहिए, पर यदि यह राज्यलक्ष्मी तुम्हारी भुजाओं में बांध दी जाय तो यह विनयों की पात्र अवश्य होगी।

जानामि मार्गं भवतोपदिष्टं ममापि चालुक्यकुले प्रसूतिः ।
किन्त्वत्र लक्ष्मीगुंणबन्धहीने निसर्गलोला कथमेति दार्ढ्य म् ॥२२॥

तुमने जो बातें कही हैं, वह मुझे मालूम है। मेरा जन्म भी चालुक्य कुलही में हुआ है, पर बात यह है कि तुम्हारा बड़ा भाई गुणहीन है, उसमें स्वभावचञ्चल यह लक्ष्मी कैसे दृढ़ता प्राप्त कर सकेगी।

किंचिन्न मे दूषणमस्ति पृच्छ दैवज्ञचक्रं यदि कौतुकं ते ।
एतस्य साम्राज्यमनन्यमानाः पापग्रहा एव गृहीतपापाः ॥२३॥

मेरा कुछ भी दोष नहीं है, तुम्हें यदि कौतुक हो तो ज्योतिषियों से पूछो, इसके पापग्रह ही इस विषय में अपराधी हैं जो इसको साम्राज्य देना स्वीकार नहीं करते।

साम्राज्यलक्ष्मीदयितं जगाद त्वामेव देवोपि मृगाङ्कमौलिः ।
लोकस्तुतां मे बहुपुत्रतां तु पुत्रद्वयेन व्यतनोत्परेण ॥२४॥

भगवान् शङ्कर ने भी तुम्हीं को साम्राज्य का अधीश्वर बतलाया है, यद्यपि लोक में हमारे बहुपुत्र होने की प्रशंसा है, पर मैं पुत्रवान् तो अपने छोटे दोनों लड़कों ही से हूं, यह बात शङ्कर ने कही है।

तस्मै प्रमाणीकुरु वत्स वाक्यं चालुक्यलक्ष्मीश्चिरमुन्नतास्तु ।
निर्मत्सराः क्षोणिभृतः स्तुवन्तु ममाकलङ्कं गुणपक्षपातम् ॥२५॥

बेटा, इस कारण मेरी बात मान लो, चालुक्य वंश की लक्ष्मी को सदा के लिए उन्नत होने दो, पक्षपात रहित राजा हमारे विशुद्ध गुण पक्षपात की स्तुति करें।

श्रुत्वेति वाक्यं पितुरादरेण जगाद भूयो विहसन्कुमारः ।
मद्भाग्यदोषेण दुराग्रहोयं तातस्य मत्कीर्तिकलङ्कहेतुः ॥२६॥

पिता की बात सुनकर पुनः हंसता हुआ कुमार आदर से बोला, मेरे ही भाग्य दोष से पिता का आग्रह है और यह आग्रह मेरी कीर्ति का कलङ्क है।

यदि ग्रहस्तस्य नाराज्यदूताः कारुण्यशून्यः शशिशेखरो वा ।
तैरेव तातो भविता कृतार्थस्तद्वार्यतां कीर्तिविपर्ययो मे ॥२७॥

यदि मेरे बड़े भाई के ग्रह राज्य प्राप्ति के अनुकूल नहीं और यदि महादेव भी उनके अनुकूल नहीं हैं, तो इसीसे पिता जो चाहते हैं वह हो जायगा, इसलिए मेरा यह कलङ्क आप दूर करें।

अशक्तिरस्यास्ति न दिग्जयेषु यस्यानुजोहं शिरसा धृताज्ञः ।
स्थानस्थ एवाद्भुतकार्यकारी बिभर्तु रक्षामणिना समत्वम् ॥२८॥

मेरे बड़े भाई दिग्विजय नहीं कर सकते, यह बात नहीं है, क्योंकि उनकी आज्ञा का पालन करनेवाला मैं उनका छोटा भाई हूं। वे केवल राजधानी में बैठ कर ही बड़े अद्भुत कार्य कर सकते हैं, केवल रक्षामणि के समान उनकी छाया चाहिए।

इत्यादिभिर्भिन्नतरैर्वचोभिः कृत्वा पितुः कौतुकमुत्सवं च ।
महारयज्येष्ठगुदारशीलः स यौवराज्यप्रतिपत्तिपात्रम् ॥२९॥

कि क्रोध से युद्ध में मैं सौ कौरवों को अवश्य व्यथित करूंगा, दुःशासन के कलेजे का रुधिर अवश्य पीऊँगा, अपनी गदा से दुर्योधन की गदा ज़रूर तोड़ूँगा, आप के राजा चाहें जैसी पर सन्धि करलें ।

यत्सत्यव्रतभङ्गभीरुमनसा यत्नेन मन्दीकृतं
यद्विस्मर्तुमपीहितं शमवता शान्तिं कुलस्येच्छता
तद्यूतारणिसंभृतं नृपसुताकेशाम्बराकर्षणैः
क्रोधज्योतिरिदं महत्कुरुवने यौधिष्ठिरं जृम्भते ।

सत्यव्रत के भङ्ग के भय से जो यत्नपूर्वक कम कर दि गया था, शम प्रधान और कुल का मंगल चाहने वाले राज ने जिसको भूल जाना भी चाहा था, वह जुए की अरणि (अग्नि निकालने के काष्ठ) में बंधा हुआ युधिष्ठिर के क्रोध का प्रकाश द्रौपदी के केश और वस्त्र के आकर्षण से मान कुरुवन में फैल रहा है । (भीम की उक्ति)

नाहं रक्षो नभूतो रिपुरुधिरजलाह्लादिताङ्गः प्रकामम्
१५ निस्तीर्णोरुप्रतिज्ञाजलनिधिगहनः क्रोधनः क्षत्रियोऽस्मि
भो भो राजन्यवीराः समरशिखिशिखादग्धशेषाः कृतं व-
स्त्रासेनानेन लीनैर्हतकरितुरगान्तर्हितैरास्यतेयत् ।

मैं राक्षस नहीं हूं और न भूत हूं किन्तु शत्रु के रुधि जल से मेरा समस्त शरीर लिप्त है, मैंने समुद्र के समान गहन प्रतिज्ञा का पालन किया है, मैं क्रोधी क्षत्रिय हूं; हे रणाग्नि की ज्वाला से जलने से बचे हुए वीर राजागण, तुम व्यर्थही मरे हुए हाथी और घोड़ों की ओट में छिप रहे हो।
(भीम की उक्ति)

धनायुधो यावदहं तावदन्यैः कियायुधैः
यद्वा न सिद्धमस्त्रेण मम तत्केन साध्यताम्,

जब तक मैंने अस्त्र धारण किया है तब तक दूसरे किसी के अस्त्र से क्या, जो काम मेरे अस्त्र से सिद्ध न होगा, वह कौन दूसरा सिद्ध कर सकता है। (कर्ण की उक्ति)

यदि समरमपास्य नास्ति मृत्योर्भयमिति युक्तमितोऽन्यतः प्रयातुम्
अथ मरणमवश्यमेव जन्तोः किमिति मुधा मलिनं यशः कुरुध्वम्,

यदि रण से हट जाने पर मृत्यु का भय न रहे तब तो रणस्थान से भाग जाना ठीक है, पर प्राणियों को तो अवश्य मरना पड़ेगा, फिर भाग कर तुम लोग अपने यश को मलिन क्यों करते हो। (अश्वत्थामा की उक्ति)

युस्मान् ह्र पयति क्रोधाल्लोके शत्रुकुलक्षयः
न लज्जयति दाराणां सभायां केशकर्षणम् ।

क्रोध से शत्रुओं के नाश करने में तुम लोगों को लज्जा मालूम होती है। पर सभा में अपनी स्त्री के केशों के खींचे जाने से तुम लोगों को लज्जा नहीं आती। (भीम की उक्ति)

यो यः शस्त्रं बिभर्ति स्वभुजगुरुमदः पाण्डवीनां चमूनां
यो यः पाञ्चालगोत्रे शिशुरधिकवया गर्भशय्यां गतो वा
यो यस्तत्कर्मसाक्षी चरति मयि रणे यश्चयश्च प्रतीपः
क्रोधान्धस्तस्य तस्य स्वयमिह जगतामन्तकस्यान्तकोऽहम् ।

पाण्डवों की सेना में जो जो शस्त्र धारण करते हैं जिस जिसको अपनी भुजाओं का गर्व हो, पाञ्चाल गोत्र में जो कोई बालक जवान या गर्भ में हो जो उस कर्म के (द्रोणाचार्य के मारे जाने के) साक्षी हों और युद्ध में जो मेरा सामना करे,

क्रोधान्ध होकर मैं उनका (क्रोध से वास्यपूर्ति करना भूल गये) यमराज का भी यमराज हूं (अश्वत्थामा की उक्ति)

लाक्षागृहानलविषान्नसभाप्रवेशैः प्राणेषु वित्तनिचयेषु च नः प्रहृत्य।
आकृष्य पाण्डववधूपरिधानकेशान् स्वस्था भवन्ति मयि जीवति धार्त्त

लक्षागृह में आग लगाकर, भोजन में विष मिलाकर सभा में ले जाकर प्राण और धन का जिन लोगों ने अपहरण किया, पाण्डवों की स्त्री का जिन लोगों ने केश खींचा, वे धृतराष्ट्र के पुत्र मेरे जीते स्वस्थ होवें अर्थात् कभी नहीं, वे मरें। (भीमसेन की उक्ति)

मद्वद्धे वैरं मम खलु शिशोरेव कुरुभिः
न तत्रार्यो हेतुर्न भवति किरीटी न च युवाम्
जरासन्धस्योरःस्थलमिव विरूढं पुनरपि
क्रुधा सन्धिं भीमो विघटयति यूयं घटयत।

बाल्यावस्था से ही कौरवों के साथ मेरा वैर बढ़ा हुआ और उस वैर का कारण युधिष्ठिर अर्जुन या तुम दोनों में कोई नहीं है, इस कारण जरासन्ध के उरःस्थल के समान जोड़ी हुई सन्धि को भीम क्रोधपूर्वक तोड़ता है, तुम लोग उसे जोड़ो (क्रोधी भीम की उक्ति)

निर्वाणवैरदहनाः प्रशमादरीणां
नन्दन्तु पाण्डुतनयाः सह माधवेन
रक्तप्रसाधितभुवः क्षतविग्रहाश्च
स्वस्था भवन्तु कुरुराजसुताः सभृत्याः।

शत्रुओं के नाश से निर्वापित युद्ध आपत्ति, अतएव पाण्डव कृष्ण के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहें, रक्त से भूमि को शोभित

करनेवाले क्षत शरीर कुरुराज के पुत्र अपने भृत्यों के साथ स्वर्गस्थ हों (भीम की उक्ति)

> निर्वीर्यं गुरुशापभावितवशात् किं मे तवेवायुधम्
> सम्प्रत्येव भयाद्विहाय समरं प्राप्तोऽस्मि किं त्वं यथा
> जातोऽहं स्तुतिवंशकीर्तनविदां किं सारथीनां कुले
> क्षुद्रारातिकृताप्रियं प्रतिकरोम्यस्त्रेण नास्त्रेण यत्
> १

गुरु के शाप के कारण तुम्हारे ही समान क्या मेरे अस्त्र निर्वीय हैं, भय से रण छोड़ कर तुम्हारे ही समान मैं भी भाग आया हूं, स्तुति करने में निपुण सारथियों के वंश में मैं भी जन्मा हूं एक क्षुद्र शत्रु के किये अनिष्ट का क्या मैं ही अस्त्रों से नहीं, किन्तु आंसुओं से प्रतीकार कर रहा हूं। (अश्वत्थामा की उक्ति कर्ण के प्रति।)

> अप्रियाणि करोत्वेष वाचा शक्तोनकर्मणा ।
> हतभ्रातृशतैर्दुःखी प्रलापैरस्य का व्यथा ॥

यह शब्दों के द्वारा अप्रिय करता है करने दो, क्या करें विचारा कार्य से तो कुछ कर नहीं सकता, इसके सौ भाई मारे गये हैं, इसके बकने का दुःख क्या (अर्जुन की उक्ति)।

> कर्ता द्यूतच्छलानां जतुमयशरणोद्दीपनः सोऽभिमानी
> राजा दुःशासनादेर्गुरुरनुजशतस्याङ्गराजस्य मित्रम्
> कृष्णाकेशोत्तरीयव्यपनयनपटुः पाण्डवा यस्य दासाः
> क्वास्ते दुर्योधनोऽसौ कथयत न रुषा द्रष्टुमभ्यागतौ स्वः।

यह अभिमानी राजा कहां है, जिसने कपट द्यूत किया था, लाख के घर में आग लगवाया था, दुःशासन आदि सौ भाइयों का जो राजा था, कर्ण का जो मित्र था, द्रोपदी के

केश और वस्त्र खींचने में जो बड़ा निपुण था और पाण्डव जिसके दास हैं, यह दुर्योधन कहां है। मैं क्रोध से नहीं पूछता, हम दोनों (भीम और अर्जुन) देखने के लिए आये हैं। (भीम की उक्ति)

> कुर्वन्त्वाप्ता हतानां रणशिरसि जना वह्निसाद्देहभारान्
> अश्रून्मिश्रं कथंचिद्ददतु जलममी बान्धवा बान्धवेभ्यः।
> मार्गन्तां ज्ञातिदेहान् हतनरगहने खण्डितान् गृध्रकङ्कै—
> रस्तं भास्वान् प्रयातः सह रिपुभिरयं संह्रियन्तां बलानि।

सगे सम्बन्धी रण में मरे हुओं का शरीर दाह करें, बान्धव अपने अपने बान्धवों को आंसू युक्त जल किसी प्रकार दें, मरे हुए मनुष्यों के वन में अपने स्वजनों के शरीर, जो गृद्ध और कङ्को द्वारा खण्डित किये गये हैं—ढूंढ़ें, सूर्य अस्त हुआ, अब अपनी अपनी सेनाएं हटा लो (युधिष्ठिर की युक्ति)

> चञ्चद्भुजभ्रमितचण्डगदाभिघात
> संचूर्णितोरुयुगलस्य सुयोधनस्य
> स्त्यानावनद्धघनशोणितशोणपाणि
> रुत्तंसयिष्यति कचांस्तव देवि भीमः।

फटकते हुए भुजाओं से घुमायी गयी प्रचण्ड गदा के आघात से दुर्योधन का जङ्घा मैं तोड़ दूंगा, उसके गाढ़े रुधिर से भीम तुम्हारे केशों को सवाँरेगा। (भीमसेन की प्रतिज्ञा)

भट्ट भल्लट ।

यह बहुत प्राचीन कवि हैं "भल्लट शतक" नाम का एक ग्रन्थ इनका पाया जाता है, जो कि इनके स्फुट श्लोकों का संग्रह है। जयट, कैयट, उवट मम्मट के समान भल्लट नाम भी है। इस नामसाम्य के कारण इनका कश्मीरी होना माना जाता है। यह कब उत्पन्न हुए थे इसका कुछ पता नहीं चलता। ग्यारहवीं सदी के मम्मट भट्ट ने अपने ग्रन्थ "काव्य प्रकाश" में इनके कई श्लोक उद्धृत किये हैं। लेखशैली से यह भार्तृहरि से पीछे के कवि मालूम होते हैं। शब्दालङ्कार पर इनका अत्यधिक प्रेम है। जिससे कालिदास के पीछे के ये कवि मालूम पड़ते हैं। इनके स्फुट श्लोक प्रायः अन्योक्ति प्रधान हैं और ये बड़े ही मार्के के हैं, नीचे के पद्यों से यह बात प्रमाणित होगी।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुध्या
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति ॥१॥

दान (प्रतिग्रह या मद) चाहनेवाले भ्रमरों को यदि गजराज ने मदान्ध होने के कारण अपने कानों को फटफटा कर दूर कर दिया तो इससे उसी गजराज के ही कपोलों की शोभा न होगी, इससे उसीकी हानि भी होगी, भ्रमर तो खिले कमलों पर जाकर आश्रय ले ही लेंगे।

आत्तीशितु प्रथितयैव पिपासितेभ्यः संरक्ष्यतेम्बुधिरपेयतयैव दूरात्।
दंष्ट्राकरालमकराल्फरालितामिः किं भाययत्यपरमूर्मिपरम्पराभिः ॥२॥

स्त्री बच्चे सभी इस बात को जानते हैं कि प्यासों के भय से समुद्र अपने जल को खारा बना लेता है और इस प्रकार उसकी रक्षा करता है, फिर भी भयानक मकरों के कारण विकराल अपनी लहरियों में लोगों को क्यों भयभीत करता है।

आवद्धकृत्रिमसटाजटिलांसभित्तिरारोपितो मृगपतेः पदवी यदि श्वा।
मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥१॥

यदि कुत्ते के कन्धे पर सटा बना कर वह सिंह के आसन पर बैठा दिया जाय तो वह मतवाले हाथियों के मस्तक फाड़ने वाले मृगराज का गर्जन कैसे करेगा।

रज्वा दिशः प्रवितताः सलिलं विषेण
पाशैर्मही हुतभुजा ज्वलिता वनान्ता
व्याधाः पदान्यनु सरन्ति गृहीत चापाः
कं देशमाश्रयतु यूथपति मृगाणाम् ॥४॥

सब दिशाओं में रस्सी फैल गयी है, जल में विष मिला दिया गया है और पाश से पृथ्वी घेर दी गयी और वन भाग मे अग्नि जल रहा है धनुष लेकर व्याध पीछा कर रहा है, इस समय मृगराज किस देश में जाकर अपनी रक्षा करे।

विशालं शाल्मल्या नयनसुभगं वीक्ष्य कुसुमं
शुकस्यासीद् बुद्धिः फलमपि भवेदस्य सदृशम्
इति ध्यात्वोपास्तं फलमपि च दैवात्परिणतं
विपाके तूलोऽन्तः सपदि मरुता सोऽप्यपहृतः ॥५॥

सेमल के बड़े और मनोहर फूल देखकर शुक ने समझा
ा कि इसका फल भी अति ही सुन्दर होगा यही समझकर
सने उस वृक्ष की सेवा की, भाग्य से फल भी हुआ पर पकने
र उसमें से रुई निकली और उसे भी वायु उड़ा ले गया।

पथि निपतितां शून्ये दृष्ट्वा निरावरणाननां
नवदधिघटीं गर्वोन्नद्धः समुद्धतकन्धरः
निज समुचितास्तास्ताश्चेष्टाविकारशताकुलो।
यदि न कुरुते काणः काकः कदा नु करिष्यति ॥ ८ ॥

शून्य मार्ग में खुले मुँहवाली दही की हड़ियां देखकर भी
दि काना कौआ गर्व न करे, अभिमान से अपना शिर ऊंचा
न करे, मनोविकारों से व्याकुल होकर अपने अनुरूप चेष्टाएं
न करे तो फिर वह कब करेगा।

किं जातोऽसि चतुष्पथे घनतरुच्छायोऽसि किं छायया।
युक्तश्चेत् फलितोऽसि किंफलभरैराढ्योऽपि किं सन्नतः ॥
हे सद्वृक्ष सहस्व सम्प्रति सखे शाखाशिखाकर्षण—
क्षोभामोटनमञ्जनानि भवतः स्वैरेव दुश्चेष्टितैः ॥ ११ ॥

चौरास्ते पर क्यों हो, घनी छायावाले क्यों हो, छाया
से युक्त हुए तो फलवाले क्यों हो, यदि फल से युक्त हुए
तो नय क्यों गये, हे मित्र अच्छे वृक्ष, अपने ही कर्मों से
अब डालियों का तोड़ा जाना, टहनियों का खींचा जाना
सहो।

ग्रावाणो मणयो हरिर्जलचरो लक्ष्मी द्वयो मानुषी,
मुक्तौघाः सिकता प्रवालतिकाः शैवालमम्भः सुधा,

तीरे कल्प महीरुहाः किमपरं नमापि रत्नाकरो
दूरे कर्णरसायनं निकटस्तृष्णापि नो शाम्यति

जहां के पत्थरमणि हैं, जलचर विष्णु भगवान हैं, ल जल की स्त्री हैं, मोतियां बाल हैं मूर्गों का लता शेवाल जल अमृत है, तीर पर कल्पवृक्ष है और क्या, नाम भी रत्न कर है। भाई दूर से तो समुद्र की सभी बातें कानों को सु करती हैं, पर समीप जाने से तो प्यास भी दूर नहीं होती।

भेकेन क्वणता सरोपपरुषं यत्कृष्णसर्पानने
दातुं कर्णचपेट मुज्झितभिया हस्तः समुल्लासित
यधाधोमुखमक्षिणी विदधता नागेन तत्र स्थितं
तत्सर्वं विष मन्त्रिणो भगवतः कस्यापि लीलायितम्

क्रोध से कठोर बोलता हुआ इस मेंढक ने कृष्ण गाल में चपत लगाने के लिए निर्भय होकर जो हाथ उ हैं और सांप ने नीचे मुंह करके जो अपनी आंखें बन्द क हैं, यह सब विष के मन्त्र जाननेवाले किसी भागवत खेल है।

ज्ञाननिधि था। किसी किसी का कहना है कि भवभूति कुमारिल भट्ट के शिष्य थे, पर इस उक्ति में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है।

ये यशोवर्मा के आश्रय में रहते थे, काश्मीर के राजा मुक्तापीड़ ने जब यशोवर्मा को परास्त किया, तब भवभूति आदि कवि भी मुक्तापीड़ के यहां चले गये। राज तरङ्गिणी में लिखा है—

> कविर्वाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः
> जितो ययौ यशोवर्मा यत्पदस्तुतिवन्दिताम्॥

मुक्तापीड़ का समय सातवीं सदी का अन्तिम काल माना जाता है, इससे भवभूति का भी समय ७वीं सदी ही मानना चाहिए।

आचार्य गोवर्धन ने भवभूति के संबन्ध में लिखा है—

> भवभूतेः संबन्धाद्भूधरभूरेव भारती भाति,
> एतत्कृतकारुण्ये किमन्यथा रोदिति ग्रावा

ये करुणरस की कविता बनाने में सिद्धहस्त समझे जाते थे। इनकी करुणरस की कविता सुनकर पत्थर भी रो देता था, यही बात आचार्य गोवर्धन ने भी लिखी है।

स्वयं भवभूति भी सब रसों में करुणरस को ही मुख्य समझते थे। ये समझते थे कि अन्य रस इसी करुणरस के भेद हैं। भवभूति कहते हैं:—

> एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
> भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्
> आवर्तबुद्बुदतरङ्ग मयान् विकारान्
> अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।

(उत्तर राम चरित से)

सर्वथा व्यवहर्तव्ये कुतो ह्यवचनीयता,
यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः ।

जिसका व्यवहार सादा होता है उसकी शुद्धता कै समझी जाय, स्त्री और वाणी की शुद्धता के विषय में अ लोग सन्देह करते हैं ।

किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्तियोगा-
दविरलितकपोलं जल्पतोरक्रमेण,
अशिथिलपरिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो-
रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत् ।

प्रेमवश हम दोनों का मुंह पास पास था और क्रम रहित धीरे धीरे हम लोग कुछ कुछ बोलते थे, दृढ़ आलिंगन में एक एक हाथ व्यापृत थे, इस प्रकार हम लोगों को मालूम ही नहीं हुआ और रात ही बीत गयी ।

हे राम दक्षिण, मृतस्य शिशोर्द्विजस्य
जीवातवे विसृज शूद्रमुनौ कृपाणम्,
रामस्य बाहुरसि निर्भरगर्भखिन्न-
सीताविवासनपटोः करुणा कुतस्ते ।

रामचन्द्र शूद्र मुनि का वध करने के समय अपने हाथ कहते हैं - हे दक्षिण हस्त, मरे हुए ब्राह्मण पुत्र के जीने के लि शूद्र मुनि पर तलवार चलाओ, तुम तो राम के हाथ हो, तु गर्भवती सीता का निर्वासन किया है, तुमको दया क आ सकती है ।

परिपाण्डुदुर्बलकपोलसुन्दरं
दधती विलोलकबरीकमाननम्

करुणस्य मूर्तिरथवा शरीरिणी,
विरहव्यथेव वनमेति जानकी ॥

जानकी के सुन्दर कपोल पीले और दुर्बल होगये हैं, केश-पाश बिखरे हुए हैं, वह करुणा की मूर्ति मालूम पड़ती है अथवा शरीरधारिणी विरह व्यथा मालूम पड़ती है, वह जानकी वन में आरही है।

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्-
भिन्नः पृथक्पृथगिव श्रयते विवर्तान्,
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम्।

रस एक ही है और वह करुणरस है, वही भेद के निमित्त अनेक रूपों में प्रतीयमान होता है, जिस प्रकार जल एक ही है, पर रूप भेद के कारण वह आवर्त, बुद्बुद, तरङ्ग आदि नाम धारण करता है।

सन्तानवाहिन्यपि मानुषाणां
दुःखानि संबन्धिवियोगजानि,
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते ॥

मनुष्यों के सततरूप से बहनेवाला भी सम्बन्धियों के वियोग से उत्पन्न दुःख, प्रिय के दर्शन से और बढ़ जाता है वह दुःसह हो जाता है, उसकी हजारों धाराएँ बहने लगती हैं।

पश्चात् पुच्छं वहति विपुलं तच्च धूनोत्यजस्रं
दीर्घग्रीवः सभवति खुरास्तस्य चत्वार एव
शष्पाण्यत्ति प्रकरति शकृत् पिण्डकानाम्रमात्रान्
किं व्याख्यानैर्व्रजति सपुनर्दूरमेह्येहि यामः।

नायकवाली समस्याओं को पूरा करना है भान्
करती है कीर्ति फैलाती है और शत्रुओं का नाश
पंगों का कहना है कि सुनना वाली मनुष्यों की मान

(मालती माधव में)

सानन्दं नन्दिहस्ताहतमुरजरवाहूतकौमारबर्हि-
त्रासान्नासाग्ररन्ध्रं विशति फणिपतौ भोगसङ्कोचभाजि।
गण्डोड्डीनालिमालामुखरितककुभस्ताण्डवे शूलपाणे-
र्वैनायक्यश्चिरं वो वदनविधुतयः पान्तु चीत्कारवत्यः

महादेव ताण्डव नृत्य कर रहे हैं नन्दी बड़े आनन्द
मृदङ्ग बजा रहा है, मृदङ्ग का शब्द सुन कर कार्तिकेय का
मयूर आया, उसको देखकर सांप डरे और वे गणेश की सूँ
में घुसने लगे, गणेश चिल्लाने लगे और अपनी सूँड पटकने

ते, इससे उनके कपोलस्थल पर बैठे हुए भौंरे उड़ने लगे
ार वे उड़कर दिशाओं में फैल गये, गणेश का यह चिल्लाना
ार सूंड़ का पटकना आप लोगों की रक्षा करे।

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु-
र्न खलु बहिरुपाधीन्प्रीतयः संश्रयन्ते।
विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकं
द्रवति च हिमरश्मावुद्गते चन्द्रकान्तः।

भीतर रहनेवाला कोई कारण विशेष ही प्रेम का कारण
, बाहरी बातें प्रीति के कारण नहीं हो सकतीं, सूर्योदय के
ाथ कमल विकसित होता है और चन्द्रमा के उदय होने के
मय चन्द्रकान्त मणि द्रवित होता है।

प्रेमार्द्राः प्रणयस्पृशः परिचयादुद्गाढरागोदया--
स्तास्ता मुग्धदृशोनिसर्गमधुराश्चेष्टा भवेयुर्मयि।
यास्वान्तःकरणस्य बाह्यकरणव्यापाररोधी क्षणा-
दाशंसापरिकल्पितास्वपि भवत्यानन्दसान्द्रो लयः॥

प्रेम से आर्द्र प्रणय को (श्रेष्ठ प्रेम को) स्पर्श करनेवाली
और परिचय के कारण जिसमें गाढ़ राग का उदय हुआ है,
ऐसी स्वभावसुन्दर उसकी चेष्टाएं यदि मेरे प्रति हों, जिनकी
सम्भावना करने पर भी आनन्दमय विमोह उत्पन्न होजाता
है, और बाहरी इन्द्रियों का ज्ञान जाता रहता है।

म्लानस्य जीवकुसुमस्य विकासनानि
संतर्पणानि सकलेन्द्रियमोहनानि
आनन्दनानि हृदयैकरसायनानि
दिष्ट्या मयाप्यधिगतानि वचोमृतानि।

मुरझाये जीवपुष्प को विकसित करनेवाले, तृप्त करने वाले और सब इन्द्रियों को मोहित करने वाले हृदय के प्रसिद्ध रसायन और आनन्द देनेवाले वचनामृत मैंने भी सुने, यह प्रसन्नता की बात है।

दलति हृदयं गाढोद्वेगं द्विधा तु न भिद्यते
वहति विकलः कायो मोहं न मुञ्चति चेतनाम्।
ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसा-
त्प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम्॥

हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, उद्वेग बढ़ता जाता है पर वह दो टुकड़े नहीं होजाता। इन्द्रिय-ज्ञान शून्य यह शरीर मोह प्राप्त करता है, पर प्राण नहीं जाते, अन्तर्दाह शरीर को तपा रहा है, पर जला नहीं देता।

अनियतरुदितस्मितं विराज-
त्कतिपयकोमलदन्तकुड्मलाग्रम्।
वदनकमलकं शिशोःस्मरामि
स्खलदसमञ्जस मुग्ध जल्पितं ते॥

जिसके रोने हँसने का कोई ठिकाना ही नहीं था, फूल की कली के समान छोटे छोटे दांत थे, तुम्हारी बाल्यावस्था के उस मुख का मैं स्मरण करता हूँ और स्पष्ट तुम्हारी भोली भाली बोली को स्मरण करता हूँ।

भर्तृहरि।

शतकत्रय वाक्यपदीय और भट्टिकाव्य ये तीन ग्रन्थ भर्तृहरि के नाम से प्रसिद्ध हैं। पर इन तीनों के कर्ता एक भर्तृहरि नहीं हैं। भर्तृहरि भी तीन हैं और उन लोगों में एक एक

ग्रन्थ बनाया है। शतकत्रय के कर्ता भर्तृहरि विक्रमादित्य के भाई थे। इनकी स्त्री का नाम पिंगला था। पिंगला के दुर्व्यवहारों से दुःखी होकर इन्होंने संसार का त्याग किया। इनका काल ईसवी सदी के ५७ वर्ष पहले है। वाक्यपदीप व्याकरण का एक बहुत प्रमाणिक और माननीय ग्रन्थ है। शतकत्रय में नीति शृङ्गार और वैराग्य का वर्णन है और भट्टीकाव्य में व्याकरण के प्रयोगों की प्रधानता रखकर रामचरित का वर्णन किया गया है। शतकत्रय के कर्ता राजा विक्रमादित्य के भाई हैं जो कि ईसवी सदी के पहले हुए थे, वाक्यपदीप के कर्ता भर्तृहरि छठी सदी के अन्त और सातवीं सदी के प्रारम्भ में हुए थे। भट्टीकाव्य के कर्ता भर्तृहरि नहीं किन्तु भट्टी हैं। उन्होंने स्वयं यह बात भट्टीकाव्य के अन्त में लिखी है।

नीचे शतकत्रय के कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं:—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति।

मूर्ख मनुष्य परिश्रम के बिना ही समझाया जा सकता है और जो विद्वान् है वह और भी बिना परिश्रम के समझाया जा सकता है, पर थोड़ा जाननेवाले मनुष्य को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते,
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः।

वह मनुष्य हाथी को कोमलकमल के सूत्रों से बांधना चाहता है। शिरीष कुसुम के द्वारा हीरे को छेदना चाहता है और मधुबिन्दु के द्वारा क्षार समुद्र के जल को मीठा बनाना

चाहता है जो दुष्टों को अमृतमयी वाणी से सज्जनों के पर ले जाना चाहता है।

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
तृणं न खादन्नपि जीवमान
स्तद् भागधेयं परमं पशूनाम्।

साहित्य सङ्गीत और कला से विहीन मनुष्य पूंछ सीं रहित साक्षात् पशु है, वह बिना घास खाये ही जीता है और यह उसका बड़ा भारी भाग्य है।

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम्
वैदग्ध्य कीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः।

यदि भाग्य हंस पर बहुत अप्रसन्न हो जाय तो उसका कमल वन में रहना छुड़ा सकता है, पर दूध और ज अलग करने की जो उसकी निपुणता की कीर्ति है, उ नहीं छीन सकता।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।

वे पुण्यात्मा और रसों को वश में रखनेवाले कवीश्व विजयी होते हैं, जिनके यश के शरीर में जरा और मरण क भय नहीं रहता।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण,

तस्मिँश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः।

राजन्, यदि तुम इस पृथ्वीरूपी गौ को दुहना चाहते हो तो बछड़ारूपी इस प्रजा का पालन करो, जब तुम प्रजा का पालन करोगे तो यह भूमि कल्प वृक्ष के समान अनेक प्रकार के फल देगी।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा
न भेजिरे भीमविषेणभीतिम्,
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः।

देवता अमूल्य रत्नों को पाकर तृप्त न हुए भयङ्कर विष से भी वे न डरे, जब तक अमृत न मिला तब तक उन लोगों ने दम न लिया, समुद्र मथन करते ही रहे, धीर मनुष्य अपने उद्देश्य को बिना सिद्ध किये विश्राम नहीं लेते।

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानाम्
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानम्,
सुरतजनितखेदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति।

जिनके बिखरे हुए केश आकर छाती पर पड़े हैं, जिनकी आँखें थोड़ी थोड़ी खुली हैं और बन्द हैं, सुरत की थकावट से जिनके कपोलों पर पसीना आगया है, ऐसी स्त्रियों का अधरमधु भाग्यवान् पीते हैं।

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला-
कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः

चाहता है जो दुष्टों को अमृतमयी वाणी से सज्जनों के मार्ग
पर ले जाना चाहता है ।

> साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः
> साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः
> तृणं न खादन्नपि जीवमान
> स्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।

साहित्य सङ्गीत और कला से विहीन मनुष्य पूंछ सीं
रहित साक्षात् पशु है, वह विना घास खाये ही जीता है और
यह उसका बड़ा भारी भाग्य है ।

> अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव —
> हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता
> नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धाम्
> वैदग्ध्य कीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ।

यदि भाग्य हंस पर बहुत अप्रसन्न हो जाय तो उ
कमल वन में रहना छुड़ा सकता है, पर दूध और जल
अलग करने की जो उसकी निपुणता की कीर्ति है, उसे
नहीं छीन सकता ।

> जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः
> नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ।

वे पुण्यात्मा और रसों को वश में रखनेवाले कवी
विजयी होते हैं, जिनके यश के शरीर में जरा और मरण
भय नहीं रहता ।

> राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां
> तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण,

तस्मिँश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ।

राजन्, यदि तुम इस पृथ्वीरूपी गौ को दूहना चाहते हो तो बछड़ारूपी इस प्रजा का पालन करो, जब तुम प्रजा का पालन करोगे तो यह भूमि कल्प वृक्ष के समान अनेक प्रकार के फल देगी ।

रत्नैर्महार्हैस्तुतुषुर्न देवा
न भेजिरे भीमविषेणभीतम्,
सुधां विना न प्रययुर्विरामं
ननिश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ।

देवता अमूल्य रत्नों को पाकर तृप्त न हुए भयङ्कर विष से भी वे न डरे, जब तक अमृत न मिला तब तक उन लोगों ने दम न लिया, समुद्र मथन करते ही रहे, धीर मनुष्य अपने उद्देश्य को विना सिद्ध किये विश्राम नहीं लेते ।

उरसि निपतितानां स्नस्तधम्मिल्लकानाम्
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानम्,
सुरतजनितखेदस्विन्नगण्डस्थलीना-
मधरमधु वधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति ।

जिनके विखरे हुए केश आकर छाती पर पड़े हैं, जिनकी आँखें थोड़ी थोड़ी खुली हैं और बन्द हैं, सुरत की थकावट से जिनके कपोलों पर पसीना आगया है, ऐसी अधरमधु भाग्यवान् पीते हैं ।

१ मथरम' मथैरपि

विरहिणः प्रखिदन्ति शरीरिणो
विपदि हन्त सुधापि विषायते।

यह बसन्त ऋतु कोकिल के मधुर शब्द और मलयाचल के वायु से भी विरहियों को मार रहा है, दुःख की बात है कि विपत्ति के समय अमृत भी विष बन जाता है।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येव निर्मलविवेकदीपकः
यावदेव न कुरंगचक्षुषां ताड्यते चपललोचनाञ्चलैः।

पण्डितों के भी हृदय में तभी तक विवेक का नि दीपक प्रकाश करता है, जब तक वे मृगनेत्रों के चञ्च कटाक्षों से तड़ित नहीं होते।

मतेभकुम्भपरिणाहिनि कुङ्कुमार्द्रे
कान्तापयोधरतटे रसखेदखिन्नः
वक्षो निधाय भुजपञ्जरमध्यवर्ती
धन्यः क्षपां क्षपयति क्षणलब्धनिद्रः।

जो मनुष्य थक कर मतवाले हाथी के मस्तक के समान बड़े कान्ता के स्तनतट पर वक्षः स्थल रखकर भुज पंजर से बंधा हुआ शीघ्रही सोकर रात बिता देता है, वह धन्य है।

यद्व यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्यास्पृहा मनोज्ञेऽपि।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामः सरोजिन्याः॥

जो जिसको सुन्दर नहीं मालूम होता वह उसको नहीं चाहता है, चन्द्रमा सुन्दर है पर कमलिनी उसपर प्रीति नहीं करती।

सत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः

मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः
प्राप्तः काणवराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्चमाम्।

धन प्राप्ति की लालसा से पृथ्वी को खोदा, पर्वत की धातुओं को फूंका, समुद्र पार किया, बड़े यत्न से राजाओं को सन्तुष्ट किया, मन्त्राराधन करने के लिए श्मशान में रातें बितायीं, पर एक फूटी कौड़ी भी न मिली, हे तृष्णे, अब तो मुझे छोड़।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये,
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिङ्गितं
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्,

संसार के कष्टों को दूर करने के लिए ईश्वर के चरणों का विधिवत् ध्यान नहीं किया, स्वर्ग के कपाट खोलने के लिए धर्म भी उपार्जित नहीं किया, स्त्री का स्वप्न में भी आलिङ्गन नहीं किया, हम लोग केवल माता के यौवनछेदन करने के लिए कुठार हैं।

अजानन्माहात्म्यं पततु शलभस्तीव्रदहने,
स मीनोऽप्यज्ञानाद्बडिशयुतमश्नातु पिशितम्,
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिला–
न्मुञ्चामः कामानहह गहनो मोहमहिमा।

पतंग बिना जाने अग्नि में कूदता है, मछली भी अज्ञान से ही बनसी का मांस खाती है, पर हम लोग जानबूझ कर विपत्तियों के आकर विषय सुख को नहीं छोड़ते, यह मोह की ही महिमा है।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः

तुम राजा हो, तो हम भी गुरु की उपासना से प्राप्त ज्ञान के कारण उन्नत आत्माभिमान रखते हैं। तुम धन के द्वारा प्रसिद्ध हो, और हमारा यश विद्वान् लोग दिशाओं में फैलाते हैं। इस तरह हममें और तुममें कुछ बहुत भेद नहीं है, पर अब तुम हम से पराङ्मुख हो तो हम भी बिलकुल तुम्हारी ओर से लापरवाह हैं।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इह परितोषो निर्विशेषाविशेषः
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।

हम लोग वल्कल से सन्तुष्ट होते हैं और तुम्हारे लिए कपड़े चाहिए, पर हमारे तुम्हारे सन्तोष में कोई भेद नहीं, दरिद्र तो वह है जिसकी तृष्णा बड़ी है, जब मन सन्तुष्ट है तो धनी कौन और दरिद्र कौन?

भारवि।

किरातार्जुनीय काव्य के कर्त्ता महाकवि भारवि सातवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। यह बात एक शिलालेख के नीचे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है।

येनायोजि न वेश्म
स्थिरमर्थविधौ विवेकिनाजिनवेश्म,
स विजयतां रविकीर्तिः
कविताश्रितकालिदास भारविकीर्तिः ।

महाकवि दण्डी ने किरातार्जुनीय के १५ वें सर्ग के कई श्लोक अपने काव्यादर्श में उद्धृत किये हैं। किरातार्जुनीय के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने लिखा है कि नहीं, इसका पता नहीं मिलता।

इष्यतां स वचनीयमशेषं
नेश्वरे परुषता सखि साध्वी ।
आनयैनमनुनीय कथं वा
विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः ।

उसकी निन्दा चाहे जितनी करो, पर स्वामी के विषय में कठोरता अच्छी नहीं, किसी प्रकार अनुकूल बनाकर लेआओ प्रतिकूलाचरण से अनुकूल न बनाना।

द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलौ
जीवितं त्वयि कुतः कलहोऽस्याः ।
कामिनामिति वचः पुनरुक्तं
प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥

“द्वार की ओर आंखें हैं, हाथ पर कपोल हैं, और जीवन तुमपर अवलम्बित है यह वारवार कलह क्यों करेगी” कहा हुआ यह वचन कामियों की प्रसन्नता के लिए नयाही मालूम पड़ता था।

प्रयच्छतोच्चैःकुसुमानि मानिनी
विपक्षगोत्रं दयितेन लम्भिता ।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तरं
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकान्ततो निस्पृहाः

तुम राजा हो, तो हम भी गुरु की उपासना से प्राप्त ज्ञान के कारण उन्नत आत्माभिमान रखते हैं। तुम धन के द्वारा प्रसिद्ध हो, और हमारा यश विद्वान् लोग दिशाओं में फैलाते हैं, इस तरह हममें और तुममें कुछ बहुत भेद नहीं है, पर जब तुम हम से पराङ्मुख हो तो हम भी बिलकुल तुम्हारी ओर से लापरवाह हैं।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः
सम इह परितोषो निर्विशेषाविशेषः
स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।

हम लोग वल्कल से सन्तुष्ट होते हैं और तुम्हारे लिए कपड़े चाहिए, पर हमारे तुम्हारे सन्तोष में कोई भेद नहीं। दरिद्र तो वह है जिसकी तृष्णा बड़ी है, जब मन सन्तुष्ट है तो धनी कौन और दरिद्र कौन?

भारवि।

किरातार्जुनीय काव्य के कर्ता महाकवि भारवि सातवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। यह बात एक शिलालेख के नीचे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है।

येनायोजि न वेश्म
स्थिरमर्थयुक्तो विवेकिनाजिनवेश्म,
स विजयतां रविकीर्तिः
कविताश्रितकालिदास भारविकीर्तिः ।

महाकवि दण्डी ने किरातार्जुनीय के १५ वें सर्ग के कई श्लोक अपने काव्यादर्श में उद्धृत किये हैं। किरातार्जुनीय के अतिरिक्त और कोई ग्रन्थ इन्होंने लिखा है कि नहीं, इसका पता नहीं मिलता।

रुष्यतो स वचनीयमशेषं
नेश्वरे परुषता सखि साध्वी ।
आनयैनमनुनीय कथं वा
विप्रियाणि जनयन्ननुनेयः ।

उसकी निन्दा चाहे जितनी करो, पर स्वामी के विषय में कठोरता अच्छी नहीं, किसी प्रकार अनुकूल बनाकर लेआओ प्रतिकूलाचरण से अनुकूल न बनाना।

द्वारि चक्षुरधिपाणि कपोलो
जीवितं त्वयि कुतः कलहोस्याः ।
कामिनामिति वचः पुनरुक्तं
प्रीतये नवनवत्वमियाय ॥

"द्वार की ओर आंखें हैं, हाथ पर कपोल हैं, और जीवन तुमपर अवलम्बित है यह बारबार कलह क्यों करेगी" कहा हुआ यह वचन कामियों की प्रसन्नता के लिए नयाही मालूम पड़ता था।

प्रयच्छतोच्चैःकुसुमानि मानिनी
विपक्षगोत्रं दयितेन लम्भिता ।

किसी स्त्री की आँख में पुष्पधूल पड़ गयी थी, मुँह से फूँक कर पति उसे निकाल रहा था, पर वह निकाल न सका, अतएव उस स्त्री ने पति को स्तन से धक्का मारा, उसके स्तन ऊँचे और मोटे थे ।

प्रियकरग्रहिताम्बुकणच्छटा-
स्फुरणमीलितलोचनयाप्यहो ।
हृदि कयाचिदसह्य मनोभव-
ज्वलनतापरुजा जगृहेतराम् ॥

पति अपने हाथों से जल के छींटे देरहा था और उन छींटों से स्त्री की आँखें बन्द होजाती थीं, पर इससे उस स्त्री के हृदय में सहन करने के अयोग्य कामाग्नि उत्पन्न होगयी ।

करौ धुनाना नवपल्लवाकृती
पयस्यगाधे किल जातसंभ्रमा ।
सखीष्वनिर्वाच्यमधार्ष्ट्यदूषितं
प्रियाङ्गसंश्लेषमवाप मानिनी ॥

अगाध जल में कोई स्त्री घबड़ा गयी और वह नवपल्लव के समान अपने हाथों को कँपाने लगी, तब उसे प्रियतम का आलिङ्गन प्राप्त हुआ, वह सखियों से कहने योग्य भी न था और धृष्टता से दूषित भी न था ।

प्रियेण संग्रथ्य विपक्षसंनिधा-
वुपाहितां वक्षसि पीवरस्तने ।
स्रजं न काचिद्विजहौ जलाविलां
वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि ॥

सौत के सामने ही गूंथ कर प्रिय ने उसके गले में माला पहना दी, यह माला जल के कारण खराब होगयी है, तो भी वह छोड़ती नहीं, गुण प्रेम में रहता है, किसी वस्तु में नहीं

तिरोहितान्तानि नितान्तमाकुलै-
रपां विगाहादलकैः प्रसारिभिः।
ययुर्वधूनां वदनानि तुल्यतां
द्विरेफवृन्दान्तरितैः सरोरुहैः॥

जल में स्नान करने के कारण उसके बाल बिखर जाते हैं और फैल जाते हैं, जिससे उसका मुंख ढक जाता है भ्रमर समूह से छिपे हुए कमल के समान उस समय स्त्रियों के मुख मालूम पड़ते थे।

रम्यतामुपगते नयनानां
लोहितायति सहस्रमरीचौ।
आससाद विरहय्य धरित्रीं,
चक्रवाकमिथुनान्यभितापः

सूर्य जब आंखों को प्रिय मालूम होनेलगा और जब वह लाल हो गया, उस समय चकवाक की दम्पती ने पृथ्वी का त्याग किया और उसे ताप होने लगा।

हृदये दयितेन हृते वपुषि सवेप थुनि पथि निरालोके।
अयि कथय कथमनङ्ग प्रियगृह मभि सारिकां नयसि॥

हृदय प्रिय ने हर लिया, शरीर कांप रहा है, रास्ते में अन्धकार है, कामदेव, अभिसारिका को पति के घर किसे ले जा रहे हो।

दुर्दिननिशीथतिमिरे निःसंचारासु नगरवीथीषु ।
पत्यौ विदेशयाते परं सुखं जघनचपलायाः ॥

दुर्दिन की अन्धकारमयी अर्धरात्रि में, नगर के मार्गों के सुनसान होने पर और पति के विदेश जाने पर, जघन चपला स्त्रियों को बहुत सुख होता है।

कान्तवेश्म बहु संदिशतीभि-
र्यातमेव रतये रमणीभिः ।
मन्मथेन परिलुप्तमतीनां
प्रायशः स्खलितमप्युपकारि ॥

प्रिय को बारबार सन्देश भेजनेवाली स्त्रियाँ रति के लिए चली हो गयीं, काम के वश होने के कारण उनकी बुद्धि लुप्त हो गयी थी। देखा जाता है कि कहीं कहीं विचलित होने से भी उपकार ही होता है।

कामिनीवदननिर्जितकान्तिः शोभितुं नहि शशाक शशाङ्कः ।
लज्जयेव विमलं वपुराप्तुं शीधुपूर्णचषकेषु ममज्ज ॥

चन्द्रमा शोभित न हो सका, क्योंकि उसकी शोभा को स्त्रियों के मुख ने जीत लिया था। इससे लज्जित होकर सुन्दर शरीर प्राप्त करने के लिए वह मदिरा से भरे प्याले में डूब गया।

यदा विगृह्णाति तदा हतं यशः
करोति मैत्रीमथ दूषिता गुणाः ।
स्थितिं समीक्ष्योभयथा परीक्षकः
करोत्यवज्ञोपहतं पृथग्जनम् ॥

यदि उससे विरोध करें तो यश नष्ट होता है, यदि मित्रता की जाय तो सब गुणों पर ही पानी फिरता है, इस प्रकार

चारों ओर विचार कर बुद्धिमान मनुष्य छोटे आदमियों का तिरस्कारही करते हैं ।

तावदाश्रीयते लक्ष्म्या तावदस्य स्थिरं यशः ।
पुरुषस्तावदेवासौ यावन्मानान्न हीयते ॥

तभी तक इसके पास लक्ष्मी रहती है, तभी तक इसका यश स्थिर रहता है। और पुरुष भी तभी तक है जब तक इसका मान बना हुआ है ।

सपुमानर्थवज्जन्मा यस्य नाम्नि पुरः स्थिते ।
नान्यामङ्गुलिमभ्येति संख्यायामुद्यताङ्गुलिः ॥

उसी मनुष्य का जन्म लेना सार्थक है, उत्तम मनुष्यों की गणना के समय जिसके नाम के लिए पहले अंगुली उठती है और पुनः दूसरी कोई अंगुली नहीं उठती, उसके समान दूसरा नहीं है । अर्थात् न तो कोई उसके बराबर है और न उसके ऐसा ही है ।

ज्वलितं न हिरण्यरेतसं
चयमास्कन्दति भस्मनां जनः ।
अभिभूतिभयादसूनतः
सुखमुज्झन्ति न धाम मानिनः ॥

जलती हुई आग को कोई नहीं छूता, पर भस्मराशी को सभी छूते हैं । इसी कारण पराजय के डर से मानी मनुष्य सुख से प्राणछोड़ते हैं, पर अपना तेज नहीं छोड़ते ।

सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥

जल्दी में कोई काम न करना चाहिए, क्योंकि अविवेक सब आपत्तियों का मूल है, गुणों में अनुराग रखनेवाली सम्पत्तियां विचारपूर्वक काम करनेवालों को स्वयं चुनती हैं ।

सर्वथा स्वहितमाचरणीयं
किं करिष्यति जनो बहुजल्पः
विद्यते नहि स कश्चिदुपायः
सर्वलोकपरितोषकरो यः ॥

सब प्रकार से अपना हित करना चाहिए, बहुत बोलने वालों से कुछ भी नहीं होता, संसार में ऐसा कोई भी उपाय नहीं है जिससे सब लोग प्रसन्न किये जा सकें ।

मुनिरस्मि निरागसः कुतो मे
भयमित्येष न भूतयेऽभिमानः ।
परवृद्धिषु बद्धमत्सराणां
किमिव ह्यस्ति दुरात्मनामलङ्घ्यम् ॥

मैं मुनि हूं, निरपराध हूं, मुझे क्या भय है, इस प्रकार का अभिमान ठीक नहीं, क्योंकि दूसरों के उदय से जलने वाले दुरात्माओं के लिए कुछ असाध्य नहीं ।

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः
प्रविश्य हि घ्नन्ति शठास्तथा विधा-
नसंवृताङ्गान्निशिता इवेषवः ॥

उन मनुष्यों का पराजय हो जाता है, जो छलकपट करनेवालों के प्रति छलकपट नहीं करते । जिस प्रकार

खुले अंग के मनुष्यों के शरीर में घुस कर बाण उन्हें मार देते हैं उसी प्रकार धूर्त मनुष्य भी।

जितेन्द्रियत्वं विनयस्य कारणं
गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ।
गुणाधिके पुंसि जनोऽनुरज्यते
जनानुरागप्रभवा हि संपदः ॥

जितेन्द्रिय होना विनय का कारण है, गुण से विनय की वृद्धि होती है, अधिक गुणवान् से मनुष्य प्रेम करते हैं और मनुष्यों के प्रेम से ही सब सम्पत्तियां प्राप्त होती हैं।

महाकवि भास ।

ये संस्कृत के बहुत बड़े कवि हैं। कहा जाता है कि इन्हों ने २२ नाटक बनाये थे। भास के बनाये नाटक अब तक अनुपलब्ध थे, पर महामहोपाध्याय पं० गणपति शास्त्री की कृपा से ट्रावंकोर संस्कृत सीरीज़ में इनके कतिपय नाटक प्रकाशित हुए हैं। यह प्रसन्नता की बात है। इनके विषय में एक श्लोक है जिससे संस्कृत साहित्य में इनका क्या स्थान है इसका पता लगता है।

"भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः"

भास कवि कविता कामिनी के हास हैं। ये कवि कालिदास से भी प्राचीन हैं। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र में लिखा है।

"प्रथितयशसांभाससौमिल्लककविपुत्रादीनां प्रबन्धानति-
क्रम्य वर्तमानकवेः कालिदासस्य कृतौ कथं बहुमानः"

भास के नाटकों में स्वप्नवासवदत्त बड़ा ही प्रसिद्ध नाटक है। इसके विषय में राजशेखर ने लिखा है।

> भासनाटकचक्रेऽपिच्छेकैः क्षिप्ते परीक्षितुम्,
> स्वप्नवासवदत्तस्य दाहकोऽभून्न पावकः।

महाकवि बाणभट्ट ने भी हर्षचरित में भास का उल्लेख किया है।

> सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः
> सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।

इन बातों से और इनके श्लोकों से इनके महाकवि होने का परिचय मिलता है।

> दग्धे मनोभव तरौ बालाकुचकुम्भमध्यसृतैरमृतैः।
> त्रिवलीकृतालवाला जाता रोमावली वल्ली॥ १॥

काम वृक्ष के जल जाने पर स्तनों में रुके हुए अमृत के द्वारा त्रिवली के आलवाल में रोमावली रूपी वल्ली उत्पन्न हुई!

> पेया सुरा प्रियतमामुखमीक्षणीयं
> ग्राह्यः स्वभावललितो विकटश्च वेषः॥
> येनेदमीदृशमदृश्यत मोक्षवर्त्म
> दीर्घायुरस्तु भगवान्स पिनाकपाणिः॥ २॥

शराब पीना चाहिए, स्त्री का मुंह देखना चाहिए, स्वभाव सुन्दर और विकट वेष ग्रहण करना चाहिए, जिसने मोक्षका मार्ग ऐसा बतलाया है, वह पिनाकपाणि भगवान् शिव चिरजीवी हों।

> तीक्ष्णं रविस्तपति नीच इवाचिराढ्यः
> शृङ्गं रुरुस्त्यजति मित्रमिवाकृतज्ञः।

तोयं प्रसीदति मुनेरिव चित्तमन्तः
कामी दरिद्र इव शोषमुपैति पङ्कः ॥ ३ ॥

सूर्य तीखा तप रहा है, जैसे हाल का धन पाया हुआ कोई नीच। मृग अपनी सींग छोड़ रहा है जैसे अकृतज्ञ मित्र। जल स्वच्छ हो रहा है जैसे मुनि का अन्तः करण और दरिद्र कामी के समान पङ्क सूख रहा है।

बाला च सा विदितपञ्चशरप्रपञ्चा,
तन्वी च सा स्तनभरोपचिताङ्गयष्टिः।
लज्जां समुद्वहति सा सुरतावसाने
हा कापि सा किमिव किं कथयामि तस्याः ॥ ४ ॥

वह बाला है, पर कामदेव के प्रपञ्चों का उसे ज्ञान है, वह तन्वी है पर स्तनों की बाढ़ से उसका शरीर भी बढ़ गया है, सुरत के अन्त में वह लज्जित हो जाती है। वह कौन है कैसी है, यह बात मैं कैसे कहूं।

कपाले मार्जारः पय इति कराँल्लेढि शशिन-
स्तरुच्छिद्रप्रोतान्बिसमिति करी संकलयति।
रतान्ते तल्पस्थान्हरति वनिताप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥ ५ ॥

चन्द्रमा की स्वच्छ किरणें कटोरे में पड़ी हैं, बिल्ली उसे दूध समझ कर चाट रही है। वृक्षों के छिद्र में पड़ी किरणों को कमल तन्तु समझ कर हाथी खींचता है, बिछौने पर पड़ी हुई किरणों को स्त्रियां वस्त्र समझती हैं इसीसे रतान्त में उसे खींचती हैं। इस प्रकार प्रभा से मत्त होकर चन्द्रमा जगत को पागल बना रहा है।

कठिनहृदये मुञ्च क्रोधं सुखप्रतिघातकं
लिखति दिवसं यातं यातं यमः किल मानिनि।
वयसि तरुणे नैतद्युक्तं चले च समागमे
भवति कलहो यावत्तावद्वरं सुभगे रतम्॥ ६॥

हे कठोर हृदयवाली क्रोध छोड़ दो, क्योंकि यह सुख का नाशक है, हे मानिनि, बीते दिनों की संख्या यमराज लिखा करता है। नयी उमर में यह बात अच्छी नहीं, हाथ भी तो चञ्चल है इसका क्या ठिकाना। जिस समय तुम कलह कर रही हो उस समय में तुम्हें प्रेम करना चाहिए।

कृतककुतकैर्मायासख्यैस्त्वयास्म्यतिवञ्चिता
निभृत निभृतैः कार्यालापैर्मयाप्युपलक्षितम्।
भवतु विदितं नेष्टाहं ते वृथा किमु खिद्यसे,
ह्यहमसहना त्वं निःस्नेहः समेन समं गतम्॥ ७॥

बनावटी व्यापारों से तुमने हमको ठग लिया है, तुम्हारे छिपे हुए कार्यों से मुझे इस बात का ज्ञान हो गया है। अच्छा, मालूम हो गया, तुम्हें हम प्रिय नहीं है, व्यर्थ खेद क्यों करते हो, तुम स्नेह रहित हो और हममें सहन करने की शक्ति नहीं, चलो दोनों बराबर हुए।

विरहिवनितावक्त्रौपम्यं बिभर्ति निशापतिः-
र्गलितविभावस्याशेवाद्य द्युतिर्मसृणा रवेः
अभिनववधूरोषस्वादुः करीषतनूनपा
दसरलजनाश्लेषक्रूरस्तुषारसमीरणः॥ ८॥

विरहिणी स्त्री के मुख के समान चन्द्रमा हो गया है, नष्ट विभव की आशा के समान सूर्य की द्युति चिकनी हो गयी है,

नयी वहू के क्रोध के समान भूसों की आग मनोहर हो गयी है, दुष्ट पुरुषों के आलिङ्गन के समान ठण्डी हवा चल रही है।

यदपि विबुधैः सिन्धोरन्तः कथञ्चिदुपार्जितं
तदपि सकलं चारु स्त्रीणां मुखेषु विलोक्यते।
सुरसुमनसः श्वासामोदे शशीच कपोलयो-
रमृतमधरे तिर्यग्भूते विषं च विलोचने॥ ९॥

देवताओं ने बड़े कष्टों से समुद्र में से जो वस्तु पायी है, वे सब सुन्दर स्त्रियों के मुख पर देखी जाती हैं। श्वासकी सुगन्धि में सुरसुमनस (देवता या देवताओं का फूल) दोनों गालों पर चन्द्रमा, ओष्ठ में अमृत और टेढ़ी आँखों में विष है।

दुःखार्ते मयि दुःखिता भवति या हृष्टे प्रहृष्टा तथा।
दीने दैन्यमुपैति रोषपरुषे पथ्यं वचो भाषते॥
कालं वेत्ति कथाः करोति निपुणा मत्संस्तवे रज्यति
भार्या मन्त्रिवरः सखा परिजनः सैका बहुत्वं गता॥ १०॥

मेरे दुःखित होने पर जो दुःखित होती है और प्रसन्न होने पर प्रसन्न होती है, मेरी दीनता में जो दीन होजाती है, मेरे क्रोध के समय जो कोमल बातें करती है, समय समझती है, समझदारी की बातें करती है और मेरे मित्रों पर अनुराग करती है, वह एकही स्त्री भार्या, मन्त्री, सखा, नौकर अनेक हो गयी है।

भिक्षाटन ।

ये भिक्षाटन नामक एक खण्ड काव्य के कर्ता हैं । इनका दूसरा नाम शिवभी है । इन्होंने अपने काव्य में कालिदास और बाण का उल्लेख किया है । इनकी कविताएँ बड़ी सरस हैं । त्रिपुरदाह के बाद शिव ने जो भिक्षा की है, उसी कथानक को लेकर इन्होंने अपना भिक्षाटन काव्य बनाया है । भिक्षाटन काव्य के कर्ता होने के कारण ये भी उसी नाम से प्रसिद्ध हैं ।

> भिक्षाटनेन पुरहूतपुराङ्गनाना-
> माकस्मिकोत्सवविधायिनि चन्द्रमौली ।
> तासामनङ्गशरजर्जरमानसानां
> नानाविधानि चरितानि वयं वदामः ॥

महादेव अमरावती नगरी में भिक्षाटन के लिए निकले, उससे देवाङ्गनाएँ आकस्मिक उत्सव करने लगीं, अनङ्ग बाण से जर्जर उन स्त्रियों के अनेक प्रकार के चरित्र मैं कहता हूँ ।

> काचिन्निवारितबहिर्गमना जनन्या
> द्रष्टुं प्रियं भवनजालकमाससाद ।
> तस्या विलोचनमदृश्यत दाशदत्त-
> यन्त्रोपरुद्धशफरोपमितं क्षणेन ॥

किसी की माता ने उसे बाहर जाने से रोक दिया, अतएव वह प्रिय को देखने के लिए घर की खिड़कीपर चली गयी, उस समय उसकी आखें बंसी में फंसी हुई मछली के समान मालूम होती थीं ।

> काचिन्निवारितबहिर्गमना जनन्या
> द्रष्टुं हरं भवनजालकमाससाद ॥

तस्या विलोचनयुगं घनजालयन्त्र-
मंल्वद्मीनमिथुनोपमितं बभूव ॥

किसी स्त्री को माता ने उसे बाहर जाने से रोक दि
इसलिए वह महादेव को देखने के लिए घर की खिड़की
गयी, उस समय उसकी आखें जालयद्ध दो मछलियों
समान मालूम होती थीं।

कृच्छ्रेण कापि गुरुणैव जनेन रोध-
मुल्लङ्घ्य नायकसमीपमुवं प्रतस्थे ॥
हा हन्त शीघ्रगमनप्रतिरोधहेतु-
स्तस्याः पुनः स्तनभरोपि गुरुर्बभूव ॥

कोई स्त्री बड़े कष्टों से भीड़ को डाँक कर नायक के प
पहुँचने के लिए प्रस्थित हुई, पर हाय, उसका स्तनभार उस
शीघ्र गमन का बाधक हुआ, वह शीघ्र न चल सकी।

प्राणेश विज्ञप्तिरियं मदीया
तत्रैव नेया दिवसाः कियन्तः ।
संप्रत्ययोग्यस्थितिरेव देशः
करा यदिन्दोरपि तापयन्ति ॥

हे प्राणेश, मेरा यह निवेदन है अभी कुछ दिन आप व
बितावें, क्योंकि इस समय यह देश रहने के योग्य नहीं
क्योंकि यहां चन्द्रमा की किरणें भी ताप देती हैं।

अस्थानगामिभिरलंकरणैरुपेता
भूयः पदस्खलननिह्नुतिरप्रसन्ना ।
वाणीव कापि कुकवेर्जनहास्यगान्त
द्राडिनर्गता निजगृहाद्वनिता मदान्धा ॥

जल्दी के कारण किसी स्त्री ने गहनों को यथास्थान नहीं
ना था, यह अनुराग से अन्धी हो गयी थी, यह शीघ्रता-
कि घर से निकली, उसके पैर फिसल गये, यह उनको
पाने लगी, इन कारणों से यह देखने में भी अच्छी नहीं
लूम होती थी, कुकवि की वाणी के समान यह लोगों की
ी की पात्र हुई।

खलेषु सत्सु निर्यांता प्रयत्नर्जयतुं गुणान्
इयं सा तस्करग्रामे रत्नक्रयविडम्बना ॥

खलों की वर्तमानता में हम लोग गुण अर्जन करने
लें, हम लोगों का यह प्रयत्न चोरों के गांव में रत्न खरी-
का उपहासास्पद प्रयत्न के समान है।

कर्पे'ने स्पर्धयेवोभौ संदृशालशासया।
भङ्कुरोवस्करोद्भूतः पुष्पश्चाकुलोद्भवः ॥

स्पर्द्धा से ये दोनों अनेक प्रकार की सम्पत्तियों द्वारा
ो हैं, कूड़े करकट से उत्पन्न अङ्कुर और दुष्कुल में उत्पन्न
।।

भ्रश्यन्ति यानि विरहे विदलन्ति यानि
योगे प्रियेण सखि किं वलयैः फूलं तैः।
नैवास्ति यैर्विपदि संपदि चोपयोग-
स्तैः संगमं न खलु वाञ्छति कोपि मर्त्यः ॥

जो वलय विरह की दशा में गिर जाते हैं और प्रिय से
ा की दशा में टूट जाते हैं, हे सखि! ऐसे इन कंकणों से
लाभ, जिसका सम्पत्ति और विपत्ति में कोई उपयोग
उसका साथ कोई भी मनुष्य नहीं चाहता।

आविःशाखोशिखानेपनन्दनद्रुमकम्पया ।
एकोदकनभोमार्गदिङ्मुद्दिग्मेरवराः ॥

दिखायी पड़नेवाली शाखा और पल्लवों के द्वारा जिसके नन्दन वन के वृक्षों के कम्पित करने की बात मालूम पड़ती है, जिसके जलमें आकाश मार्ग के डूब जाने के कारण दिशाओं का ज्ञान जाता रहा।

आवर्तगर्तसंभ्रान्तविमानप्लवविप्लवा ।
नीलजीमूतशैवालकृतरोधाद्विरिता ॥

जिसके आवर्त रूपी गढ़े में भ्रमण करनेवाले विमान डूबते उतराते हैं, नीले मेघरूपी शैवालों से जिसने अपने तटों को भूषित किया है।

सवलेपभराक्रान्ता सुरलोकतरंगिणी ।
पपात पार्वतीकान्तजटाकान्तारगह्वरे ॥

गर्व के भार से युक्त देवलोक की वह नदी शिव की जटा के गह्वर में गिरी है।

दुःखे सुखे च रज एव बभूव हेतु-
स्तादृग्विधे महति गौतमधर्मपत्न्याः ।
यस्माद्गुणेन रजसा विकृतिं गता सा
रामस्य पादरजसा प्रकृतिं प्रपेदे ॥

गौतम की स्त्री अहल्या को बड़े दुःख और सुख का कारण रज ही हुआ। रजोगुण के द्वारा उसे पत्थर की योनि मिली और रामचन्द्र के चरणरज से पुनः उसे अपना स्वरूप मिला।

आबालवृद्धमनुगच्छति रामभद्र-
मेषा पुरी यदिह मा खलु निर्गुणा स्याम् ।

इत्यादरादिव धरा बहुधा विधाय
धूलिच्छलान्निजतनुं तमनु प्रतस्थे ॥

न्द्र के साथ बालक वृद्ध आदि सभी जारहे
' तो मैं निर्गुण समझी जाऊंगी, यह समा
की भूमि ने आदर पूर्वक धूलि के व्याज से
अनेक बनाया और वह रामचन्द्र के साथ च

पसुखविमुखेन स्वेन कान्तेन सार्द्धं
दितरि विधिशात्काननाय व्रजन्त्याम्।
कुशलमिति मत्वा पुनमन्दाय भाग्री
रेजनमुखवाष्पं पांशुभिः पर्यहार्षीत ॥

राजसुख छोड़ दिया है, उसके साथ भाग्यफ
न को जारहो है। इस समय यह अकुशल है
पृथ्वी ने लोगों के मुंह पर का आँसू धूलि से

ानुमाररसभिगं तपौरवर्गां
ानमानगृहचत्वरराजमार्गां।
पुंकभोगभुजगत्वमिव क्षणेन
वी बभूव रघुपुंगवराजधानी ॥

अनुमरण करने के प्रेम में पौर वर्ग राजधानी
। अब यहां पर हार सड़कें आदि पच रही
हुए सर्प के समान रघुश्रेष्ठ की राजधानी श
ायी।

"यह कैसे रह सकेगा, इस प्रकार सोच कर वन देवताओं ने रामचन्द्र को आंसूभरी आंखों से देखा और रामचन्द्र सूनी पर्णशाला को देखते रहे, उनकी चेतना लुप्त होगई और वे विलाप करने लगे (सीताहरण के समय की यह बात है)

हा कष्टमत्र नहि सा कमदं प्रवृत्त-
मालोकयामि पटुलामिह पादमुद्राम्।
मां वीक्ष्य पूनमगृहीतमृगं मुहूर्त-
मन्तर्हिता तरषु रोषवतीव सीता॥

हाय, यहां सीता नहीं है यह क्या हुआ, मैं यहां उबड़खाड़ पैर के चिन्ह देखता हूँ, मैं मृग को बिना लिये चला आया हूँ यह देखकर क्या वह थोड़ी देर के लिए क्रोध से यहीं किसी वृक्ष की ओट में छिप तो नहीं गयी है।

त्वदभिलषितपूर्त्यां वञ्चितः पञ्चवट्या-
मवरमचरमोऽहं मोहभाजां प्रजानाम्।
तदिह सरलबुद्धे नैष रोषस्य कालः
सुमुखि मम मुखं किं सोढसीतावियोगम्॥

हे भोली, जानकी, तुम्हारे ही मनोरथ की पूर्ति के लिए ठगा जाकर अज्ञानी मनुष्यों का अग्रगामी होकर मैं पञ्चवटी में घूम आया। सुवर्ण मृग को ढूंढ़ना अज्ञानी का काम है, पर तुम्हारी इच्छापूर्ति के लिए मैंने यह भी किया। यह समय क्रोध करने का नहीं है, हे सुमुखि, क्या राम के मुख ने कभी सीता का वियोग देखा है।

यदसि कौतुकमपूर्वमृगे मृगाक्षि
चान्दं हरामि हरिणं मम सन्निधेहि।

यावन्न मुञ्चसि मया हृतमेणमेनं
तावद्दधातु तव वक्त्रतुलां मृगाङ्कः ॥

हे मृगाक्षि, यदि तुम अद्भुत मृग लेना चाहती हो तो चन्द्रमा का हरिण मैं ले आता हूं, तुम मेरे पास आओ, मेरे द्वारा लाये हुए इस मृग को जब तक तुम न छोड़ोगी तब तक के लिए चन्द्रमा तुम्हारे मुख की समानता करे। अर्थात् हरिण के निकलने से चन्द्रमा भी निष्कलङ्क हो जायगा।

सप्राणा चेज्जनकतनया किं न निर्गेत मह्यं
हिंस्रैः सत्त्वैर्न खलु निहता रक्तसिक्ता न पृथ्वी।
गोदावर्यां पुलिनविहृतिं रामशून्या न कुर्या-
दुक्तं नक्तंचरकवलनात्संस्थिता सर्वथा सा ॥

यदि जानकी जीती है तो मेरे सामने क्यों नहीं आती, हिंस्र जन्तुओं ने उसे मारा भी नहीं है, क्योंकि पृथ्वी रुधिर से रंगी नहीं है, राम के बिना गोदावरी के तीर पर वह घमने भी नहीं जाती। इससे राक्षसों ने उसे अवश्य खा लिया।

लोकान्तरप्रणयिनं श्वशुरं प्रणन्तु-
मासन्नकालमनिलङ्घ्य यदि प्रयासि।
विज्ञाप्य मामपि समाह्वय सार्वभौमं
सौमित्रिरेव भरते निदधातु राज्यम् ॥

स्वर्ग गये हुए श्वसुर को प्रणाम करने के लिए मरणकाल के नियत समय को लांघ कर यदि तुम जाती हो तो हे माता! उनसे कहकर मुझको भी बुलाओ, लक्ष्मण ही भरत को राज्य सौंप देंगे।

मङ्खक

ये काश्मीर निवासी थे। इनको लोग कर्णिकार मंख और पण्डित मंखक भी कहते थे। इन्होंने श्रीकण्ठचरित नाम का एक महाकाव्य और मंखकोश नाम का एक कोश बनाया है। डा० ब्यूलर ने काश्मीर के कवियों संबन्धी अपने रिपोर्ट में लिखा है कि मङ्खक का श्रीकण्ठचरित ११३५ ई० से ११४५ ई० तक के बीच के समय में बना है। इनके विषय में इससे अधिक और कुछ मालूम नहीं।

इनके कुछ श्लोक सुनिये—

अज्ञातपाण्डित्यरहस्यमुद्रा ये काव्यमार्गे दधतेऽभिमानम् ।
ते गारुडीयाननधीत्य मन्त्रान्हालाहलास्वादनमारभन्ते ॥१॥

जिन्हें पाण्डित्य रहस्य का कुछ भी ज्ञान नहीं है, उन्हें काव्यमार्ग में अभिमान नहीं करना चाहिए। यदि कोई ऐसा करे तो उसका करना गारुड़ मन्त्रों को न जान कर विष खाने के समान होगा।

सरस्वतीमातुरभूच्चिरं न यः कवित्वपाण्डित्यपयस्तनंधयः । —
कथं स सर्वाङ्गमनोज्ञतामियाद्दिनाद्दिनं प्रौढिविशेषमश्नुते ॥२॥

जिसने सरस्वती माता के कवित्व और पाण्डित्य रूपी स्तनों का बहुत दिनों तक पान नहीं किया है उसके समस्त अङ्ग कैसे सुन्दर हो सकते और दिनोंदिन उसकी पुष्टिही कैसे हो सकती है?

जिगीषवः शिखा इव हन्त दन्तमरस्वतीवाहनराजहंसाः ।
ये क्षीरनीरप्रविभागदक्षा विवेकिनस्ते कवयो जयन्ति ॥३॥

हृदय में वास करनेवाली सरस्वती के वाहन राजहंसों से शिक्षा पाये हुए के समान जो विवेकी क्षीर नीर को विलगाने में समर्थ हैं, वे ही कवि विजयी होते हैं।

काव्यामृतं दुर्जनराहुनीतं प्राप्यं भवेन्नो सुमनोजनस्य।
सचक्रमव्याजविराजमानतैक्ष्ण्यप्रकर्षं यदि नाम न स्यात् ॥४॥

दुर्जन राहु के द्वारा चुराया हुआ काव्यामृत कभी सज्जनों को प्राप्त न होता, यदि उसमें अधिक तीक्ष्णता न होती।

विशालसाहित्यविदापरत्र गुणः कथंचित्प्रथते कवीनाम्।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः ॥५॥

साहित्यज्ञों को छोड़ कर कवियों के गुण अन्यत्र प्रसिद्ध नहीं होते। तत्क्षण जल में ही तैलबिन्दु विस्तार पाता है अन्यत्र नहीं।

अत्यर्थवक्रत्वमनर्थकं या शून्या तु सर्वान्यगुणैर्व्यनक्ति।
अस्पृश्यतादूषितया तया किं तुच्छश्वपुच्छच्छदयेव वाचा ॥६॥

कविता की अनावश्यक अधिक कठिनता उसको अन्य सब गुणों से शून्य बतलाती है, जो छूने योग्य नहीं। जिसका रसास्वाद होना कठिन हो उस वचन से लाभ क्या? वह तो कुत्ते की पूँछ के समान है।

नीचस्तनोत्वश्रु नितान्तकार्ष्ण्यं पुष्णातु साधर्म्यं मदञ्जनेन।
विना तु जायेत कथं तदीय क्षोदेनसारस्वतदृक्प्रसादः ॥७॥

नीच अश्रु गिरावें, वह अत्यन्त काला भी हो और अञ्जन के साथ समानता भी प्राप्त कर ले, पर विना उसके रज के (के) सारस्वत दृष्टि की प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती।

अर्थोऽस्ति चेन्न पदशुद्धिरथास्ति सापि
नो रीतिरस्ति यदि सा घटना कुतस्त्या ।
साप्यस्ति चेन्न नववक्रगतिस्तदेव
व्यर्थं विना रसमहो गहनं कवित्वम् ॥८॥

अर्थ है तो पदशुद्धि नहीं, यदि पदशुद्धि है तो रीति नहीं है, यदि रीति भी है तो शब्दों का विन्यास अजीब तरह का है यदि यह भी है तो नयी कल्पनाएं नहीं हैं, रस के बिना यह कठिन कविता का मार्ग व्यर्थ ही है ।

स्फार्जवं वक्रिमगतिर्घन दारुबन्ध—
रस्याः कवीश्वरसूक्तिधनुर्लतायाः ।
कर्णान्तिकप्रणयभाजि गुणे यदीये
चेतांसि मत्सरवतां झटिति त्रुटन्ति ॥९॥

कवीश्वरों की उक्तिरूपी धनुष की वक्रता और अच्छी तरह का दृढ़ बन्धन प्रशंसनीय ही है । अर्थात् कवियों की कविता की कठिनता प्रशंसनीय ही है, क्योंकि उसके गुण (धनुष की रस्सी या गुण) कानों तक पहुँचने पर मत्सरी मनुष्यों का चित्त जल्दी टूट जाता है, अर्थात् समझ में न आने के कारण मत्सरी मनुष्यों का अहंकार नष्ट हो जाता है ।

[illegible] वे
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥१०॥

जो लोग इसको निचोड़ कर उसके सार द्वारा काव्य-नाटक को इसका पहले बनाते थे, वे सचमुच आग

चले गये । इस समय तो ऐसे कवि उत्पन्न होते हैं जो
प्रास और कठिन चित्र यमक श्लेष आदि के फंदे एक
करते हैं ।

परश्लोकाँस्लोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये ।
चतुष्पादीं कुर्युर्वहव इव ते सन्ति कवयः ॥
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः ।
सुहृद्यावैशद्यं दधति किल केषाञ्चन गिरः ॥११॥

प्रतिदिन दूसरों के कुछ श्लोकों को कण्ठस्थ कर के चार
पद के श्लोक बना देनेवाले कवियों की कमी नहीं; वे बहुत
हैं । समुद्र की लहरों के समान सतत निकलने वाली,
हृदय को हरने वाली किसी किसी की कविता होती है, और
वही उज्वलता धारण करती है ।

वियोगिनी-प्रलाप ।

आलि कल्पय पुरः करदीपं चन्द्रमण्डलमिति प्रथितेन ।
मन्वनेन विहितं मम चक्षुर्मङ्क्षु पाण्डुरतमोगुलकेन ॥ १२॥

हे सखि, हमारे आगे हाथ का दीपक ले आओ, क्योंकि
चन्द्रमण्डल नाम से प्रसिद्ध पीले अन्धकार के द्वारा मेरी
आँखें ढँक गयी हैं ।

कोटरे तिमिरमेव कलङ्कच्छद्मना वहति हन्त शशाङ्कः ।
यत्कणैरपि विलुम्पति दृष्टिमांहशां दयितदोषवियोगे ॥१३॥

यह चन्द्रमा कलङ्क के व्याज से अन्धकार धारण करता
है, जिसके छोटे कण से भी प्रियतम रात्रि के वियोग
दशा में हम लोगों की आँखें ढँक जाती हैं ।

कालकूटमिव बिभ्रति कोकी केन शंभुरजरामर एव ।
अम्बर विरहिणीषु सुधांशुः कौमुदीमुपवि[illegible] ॥१४

विष की लोग निन्दा करते हैं, पर विष खाने से ही शिव अजरामर होगये है। विरहिणियों के यमराज इस चन्द्रमा की लोग स्तुति करते हैं, इस न्याय के लिए क्या कहा जाय ?

कालकूटमधुनापि निहन्तुं हन्त नो वहसि लाञ्छनमङ्ग ।
यद्भयादिव निगीर्णमपित्वामाशु मुंचति सुधाकर राहुः ॥ १५ ॥

हे चन्द्रमा, हम लोगों को मारने के लिए तुम इस समय भी कलङ्क के व्याज में विष धारण करते हो। उस विष के भय मे राहु तुमको निगल कर भी छोड़ देता है।

अंशवस्तव निशाकर नूनं कल्पितास्तरुणकेतकखण्डैः ।
येन पाण्डुरतरद्युतयो नः कण्टकैरिव तुदन्ति शरीरम् ॥१६॥

हे निशाकर, तुम्हारी किरणें प्रौढ़ केतक के टुकड़ों से बनायी गयी हैं, जिनकी कान्ति पीली है, पर काँटे के समान हम लोगों के शरीर को वे छेदती हैं।

अम्बुधेरुदगमद्विधुभङ्ग्या नूनमौर्वशिखिभास्वरपिण्डः ।
यत्किलास्य घटते नहि तृप्तिः खण्डिताजनदृगम्बुसरिद्भिः ॥१७॥

यह बड़वानल का अग्निपिण्ड समुद्र से चन्द्रमा के रूप में निकला है, यह सच बात है। क्योंकि खण्डिता स्त्रियों की आँखों से निकली हुई नदियों से इसकी तृप्ति नहीं होती।

रात्रिराजसुकुमारशरीरः कः सहेत तव नाम मयूखान् ।
स्पर्शमाप्य सहसैव यदीयं चन्द्रकान्तदृषदोपि गलन्ति ॥१८॥

हे रात्रिराज, कौन कोमल शरीर का मनुष्य तुम्हारी किरणों को सह सकता है ? जिनके स्पर्श होने से चन्द्रकान्त नामक पत्थर भी गल जाते हैं।

युष्मदाह दयितोऽममवक्त्रं पंकजं रहसि चाटकपाटु ।
संस्तवं शशिभिरस्य हिमांशो प्राप्य कामपि दशं पटुवृत्ति ॥१९॥

एकान्त की बातचीत में मेरे पति मेरे मुख को कमल कहा करते थे । उनका यह कहना ठीकही है, क्योंकि वह चन्द्रमा के प्रकाश से सम्पर्क होने पर एक विलक्षण पीड़ा का अनुभव करता है ।

पद्मनाभ करुणां कुरु भूयो विग्रहेण परिपूरय राहुम् ।
येन तज्जठरकोटरशायी जात्वयंविधुरयेन्न विधुर्नः ॥२०॥

हे पद्मनाभ, पुनः आप दया करें, राहु का शरीर जोड़ दें जिससे चन्द्रमा राहु के पेट में चला जाय, और फिर हम लोगों को यह कभी पीड़ा न दे ।

मत्कार्यसिद्ध्यै तव हन्त कान्त्या मार्गे पुरोऽभूत्परुषः समीरः ।
यद्गाढतेयं लुलितालकस्त्वं पर्यस्तबन्धः कबरीनिवेशः ॥२१॥

मेरे कार्य की सिद्धि के लिए तुम्हे मार्ग में भयङ्कर अ का सामना करना पड़ा था यह मालुम होता है । क्यों तुम्हारे केश बिखर गये हैं और चोटी भी खुल गयी

अपराधिनी सखी के प्रति उक्ति ।

संस्पृश्य तं दुश्चरितैकबन्धुं सखि त्वया किं विहितोऽवगाहः ।
आर्द्राणि गात्राणि तवासते यद्गतं च यद्विस्तिलकं ललाटम् ॥२२

हे सखि, उस पापी को छूकर क्या तुमने स्नान कि है ? क्योंकि तुम्हारे शरीर भीगे हैं और माथे का चन्दन नहीं है ।

केन कर्मेणरिवद्यद्वितीया तेनाधिकं सुन्दरि भावितामूः ।
पश्यामि व्याकुलितेक्षणाम नायापि ते कम्पकलानुबन्धः ॥२३॥

हे सुन्दरि, किसी कारण विशेष से अथवा अकेली होने के कारण तुम बहुत डरी हुई सी मालूम पड़ती हो। तुम्हारी आँखें घबड़ायी हुई सी हैं और तुम इस समय तक भी काँप रही हो।

स एव कस्तूरिकपंकजन्मा दोषं ध्रुवं ते व्यधिताङ्गरागः।
विभर्षि यत्सौरभलब्धभृङ्गदेशव्रणैर्भङ्गुरमङ्गमङ्गम् ॥२४॥

उसी कस्तूरी के घने अङ्गराग ही ने तुम्हे बहुत कष्ट दिया उसके सौरभ से भौंरे आ आकर तुम्हे काटते हैं, जिससे तुम्हारा अङ्ग अङ्ग छिद गया है।

मत्तानखि प्रस्तुत आस्त तस्य केनापि सार्धं किमु संप्रहारः।
यद्वारणार्थं सहसा विशन्ती त्वं तद्यशोल्लेख पथं गतासि॥२५॥

क्या जब तुम गयी उस समय किसीसे वह युद्ध कर रहा था? नखों की लड़ाई वहाँ हारहीं थीं? जिसको छुड़ाने के लिए तुम बीच में गयी और तुम्हे नख लग गये?

मयूर भट्ट

ये संस्कृत के प्रसिद्ध कवि हैं। राजा हर्षवर्धन के सम-कालीन और उनकी सभा के ये पण्डित थे। बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में इनके लिए लिखा है—

एवं कविभुजङ्गानां गता श्रवणगोचरम्,
विष विद्येव मायूरी मायूरी वाग् निकृन्तति"

मयूरभट्ट की कविता जब कवियों के श्रवण गोचर होती उस समय उनका अभिमान चूर चूर हो जाता है। जि प्रकार मयूर संबन्धी विष-विद्या से सर्पों का अभिमान चूर हो जाता है।

जैनकवि मानतुंगाचार्य ने अपने भक्तामरस्तोत्र में मयूर को बाणभट्ट का श्वसुर बतलाया है। इसीके संबन्ध में एक किंवदन्ती भी प्रचलित है। बाणभट्ट और मयूर में यह संबन्ध तो था ही, इनमें मैत्री भी थी। एक दिन बाणभट्ट की स्त्री उनपर किसी कारण से नाराज़ थी। उसको मनाने के लिए बाणभट्ट प्रयत्न कर रहे थे, अन्त में हार कर बाण ने एक श्लोक बना कर पढ़ा, उस समय मयूर भी द्वार पर खड़े थे। बाण ने श्लोक के तीन चरण तो बना लिये, पर चौथा चरण मयूर ने बना दिया। यह देख कर बाण की स्त्री लज्जित हुई और उसने मयूर को कुष्ठ होने का शाप दिया।

यह श्लोक नीचे लिखा जाता है।

गतप्राया रात्रिः कृशतनु शशी शीर्यत इव,
प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णत इव,
प्रणामान्ते मानस्तदपि न जहासि क्रुधमहो, (बा
कुच प्रत्यासत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कठिनम् ॥ (मयू

उसी कुष्ठ को दूर करने के लिए सौ श्लोकों से मयूरभट्ट ने सूर्य की स्तुति की है, जो सूर्यशतक के नाम से प्रसिद्ध है। यह आदरणीय ग्रन्थ समझा जाता है। इसके अतिरिक्त उनका और भी कोई ग्रन्थ है कि नहीं, इसका पता नहीं।

विजये कुशलस्त्र्यक्षो न क्रीडितुमहमनेन सहाशक्ता ।
विजये कुशलोऽस्मि ननु त्र्यक्षोऽक्षद्वयमिदं पाणौ ॥१॥

पार्वती कहती हैं—त्र्यक्ष (महादेव तीनआंखवाला) निपुण है, इसके साथ मैं खेल नहीं सकती । शिव ने उत्तर दिया – हे विजये, मैं कुशल तो अवश्य हूँ, पर त्र्यक्ष (तीन पासे वाला) नहीं; क्योंकि मेरे हाथों में ये दोही अक्ष (पासे) हैं।

किं मे दुरोदरेणव्रजतु यदि गणपतिर्न तेऽभिमतः ।
कः प्रद्वेष्टि विनायकमहिलोकः किं न जानासि ॥२॥

पार्वती – मुझे दुरोदर (जुआ) से क्या लाभ ? शिव ने दुरोदर का अर्थ समझा बुरा पेटवाला, इससे वे कहते हैं गणेश यहाँ से चले जाँय, यदि वे अच्छे न हों। पार्वती ने कहा- विनायक (गणेश) से द्वेष कौन करता है ? शिव ने विनायक का अर्थ समझा गरुड़, और वे उत्तर देते हैं- विनायक से द्वेष करने वाले सांप हैं, क्या मालूम नहीं ?

चन्द्रग्रहणेन विना नास्मि रमे किं प्रवर्तयस्येवम् ।
देव्यै यदि रुचितमिदं नन्दिन्नाहूयतां राहुः ॥३॥

चन्द्रग्रहण के (जब तक चन्द्रमा दांव पर नहीं लगाया जाय) विना मैं न खेलूंगी, तुम क्यों तङ्ग करते हो । शिव ने उत्तर दिया, यदि देवी को यही अच्छा मालूम होता है, तो नन्दी राहु को बुलाओ। पार्वती ने चन्द्रग्रहण का अर्थ चन्द्रमा का दांव पर लगाना समझा था और शिव ने इसका अर्थ समझा चन्द्रग्रहण ।

हाराही निकटस्थे निजदयिते भयकृति रतिः कस्य ।
यदि मेऽपि स्पृहा तत् संत्यजेयैव हारादिः ॥४॥

हा, राहु पास है, इसके दाँत सफ़ेद और भयानक हैं, इस पर कौन अनुराग करेगा? शिव ने उत्तर दिया, यदि तुम नहीं चाहती हो तो लो इसी समय मैं हाराहि (सर्पहार) छोड़ता हूँ।

भारोपयसि मुधा किं नाहमभिज्ञा त्वदङ्कस्य।
दिव्य वर्षसहस्रं स्थित्वैव युक्तमभिधातुम् ॥५॥

पा०—मुझे अपने अङ्क में क्यों लेना चाहते हो, मैं इससे अनभिज्ञ हूँ। शि०—देवताओं के हज़ार वर्ष तक इस अङ्क में रहने के बाद ऐसा कहना अवश्य शोभा देता है।

अनुदिनमभ्यासदृढैः सोढुं दीर्घोऽपि शक्यते विरहः।
प्रत्यासन्नसमागममुहूर्तविघ्नोऽपि दुर्विषहः ॥६॥

प्रतिदिन अभ्यास की दृढ़ता के कारण बहुत दिनों का भी विरह सहा जा सकता है। पर समागम के समीप आ जाने पर एक मुहूर्त का भी विघ्न असहनीय होता है।

संग्रामाङ्गणमागतेन भवता चापे समारोपिते
देवाकर्णय येन येन सहसा यद्यत्समासादितम्।
कोदण्डेन शराः शरैररिशिरस्तेनापि भूमण्डलं
तेन त्वं भवता च कीर्तिरमला कीर्त्या च लोकत्रयम् ॥७॥

महाराज, आप रणक्षेत्र में आये और आपने धनुष चढ़ाया, उस समय शीघ्रही जिस जिसको जो जो वस्तु मिली सो सुनिए। धनुष को बाण मिले, बाणों को शत्रुओं के सिर, शत्रु सिरों को भूमण्डल, भूमण्डल को आप मिले, आपको कीर्ति मिली और कीर्ति को तीनों लोक मिले।

देवाकर्णय वाहिनी युधि मृगा भीके पुरं भागिना-
द्यापम्बंचन सन्ति केवल मरा न्यायशानि ये कंचन ॥

तन्मध्ये न बभूव नास्ति भविता तादृङ् न नीतौ नतौ।
कान्तौ काव्यरतौ नतौ रिपुहतौ कीर्तौ च यत्ने समः॥८॥

महाराज, सुनिए; देवलोक में, मर्त्यलोक में और नागलोक में कोई थे। कोई हैं और कोई रहेंगे। पर उनमें कोई भी वैसा नहीं हुआ, न है और न होगा, जो नीति में, नम्रता में, कान्ति में, काव्यप्रेम में, स्तुति में, शत्रु मारने में और कीर्ति में तुम्हारी बराबरी कर सके।

भूपालाः शशिभास्करान्वयभुवः के नाम नासादिता।
भर्तारं पुनरेकमेव हि भुवस्त्वां देव मन्यामहे॥
येनाङ्गं परिमृद्य कुन्तलमथाकृष्य व्युदस्यायतं।
चोलं प्राप्य च मध्यदेशमधुना काञ्च्यांकरः पातितः॥९॥

सूर्यवंश और चन्द्रवंश के कितने राजा पृथ्वी के स्वामी नहीं हुए; पर हम तो तुम्हीं को पृथिवी का एक स्वामी मानते हैं। जिसने अङ्ग (इस नाम का देश) को मर्दन कर कुन्तल (इस नाम का देश अथवा चोटी) को खींच कर चोल (इस नाम का देश अथवा ज़नानी कुरती) को हटा कर, मध्य देश (देश या कमर) में पहुँच कर इस समय काञ्ची (एक नगर अथवा करधनी) में हाथ लगाया है।

महाकवि माघ।

महाकवि माघ ने शिशुपाल-वध नामका एक काव्य बनाया है। इनकी रचना बड़ी प्रौढ़ है। एक प्राचीन श्लोक है, जिसमें माघ की कविता की प्रशंसा की गयी है।

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः

माघ ने अपना परिचय इस प्रकार दिया
माल के राजा के प्रधान मन्त्री सुप्रभदेव थे । सु
दत्तक हुए और दत्तक के पुत्र माघ ने यह का
भोजप्रबन्ध में भी इनके विषय में थोड़ा लिखा
इनके दानी और दानी होने के कारण ही दरिद्र होने
लिखी है । माघ के दो तीन श्लोक हैं जिनमें इन
उल्लेख है ।

अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा,
त्यागान्न सङ्कुचति दुर्ललितं मनो मे ।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं ।
प्राणाः स्वयं व्रजत किन्तु विलम्बितेन ॥
बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, नपीयते काव्यरसः पिपासितैः
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कला

इन श्लोकों से माघ ने अपनी अवस्था दिखायी है
पिता से ऊब गये थे ।

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं ।

नारीनितम्बफलके प्रतिबध्यमाना
हंसीव हेमरशना मधुरं ररास ॥
तं मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा
आक्रन्दुरार्त्तमुखरं चरणावलग्नाः ॥ १ ॥

नारी के नितम्ब पर बँधी हुई सोने की करधनी हंसिनी के समान धीरे धीरे बोल रही है । उसका बन्धन छुड़ाने के लिए नूपुररूपी राजहंस बड़े दुःख से चिल्लाने लगे और वे पैरों पर भी पड़े ।

मुहुरुपहसितामिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेताम् ।
वसतिमभिगमेन धाम्नि तस्याः शठकलिरेव महांस्त्वयाद्य दत्तः ॥२॥

कोई खण्डिता नायिका अपराधी पति को, जो उसे पुष्प देकर प्रसन्न करना चाहता है कहती है—इस कलिका का उपहास ये भ्रमर अपने शब्दों से कर रहे हैं। क्योंकि इसके द्वारा तुम मुझे ठगना चाहते हो। मुझे यह कलिका क्यों देते हो, हे शठ (छिप कर अपराध करने वाले) तुम अपनी प्रिया के घर पर जाकर बहुत बड़ा कलि (कलह) दे चुके हो। अब दूसरी कलि (पुष्पकली) की ज़रूरत क्या है ?

अवचितकुसुमा विहाय वल्लीर्युवतीषु कोमलमाल्यधारिणीषु ।
पदमुपदधिरे कुलान्यलीनां न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ॥३॥

भ्रमरों के समूह ने उन लताओं को छोड़ दिया, जिनके पुष्प स्त्रियों ने तोड़ लिये थे। वे कोमल माला धारण करने वालों युवतियों पर जाकर बैठे। जिनकी आत्मा काली है; वे क्या परिचय की परवा करते हैं ?

विनयति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन ।
तदहितयुवतेरभीक्ष्णमक्ष्णोर्द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥४॥

एक स्त्री की आँखों में किसी फूल की धूलि पड़ गयी थी। उसे उसका प्रियतम मुँह से फूँक कर निकाल रहा था। यह देख कर उसकी सौत की दोनों आँखें क्रोध की धूल से भर गयी।

संकीर्णे पयसि मुहुर्महेभकुम्भश्रीभाजा स्तनयुगलेन नीयमाने ।
विश्लेषं युगमगमद्रथाङ्गनाम्नोरुद्वृत्तः क इव सुखावहः परेषाम् ॥५॥

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

माघ ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है—श्रीवर्म नाम के राजा के प्रधान मन्त्री सुप्रभदेव थे। सुप्रभदेव के दत्तक हुए और दत्तक के पुत्र माघ ने यह काव्य बनाया। भोजप्रबन्ध में भी इनके विषय में थोड़ा लिखा है। जिससे इनके दानी और दानी होने के कारण ही दरिद्र होने की बात लिखी है। माघ के दो तीन श्लोक हैं जिनमें इन बातों का उल्लेख है।

अर्था न सन्ति न च मुंचति मां दुराशा,
त्यागान्न सङ्कुचति दुर्ललितं मनो मे।
याञ्चा च लाघव करी स्ववधे च पापं।
प्राणाः स्वयं व्रजत किन्तु विलम्बितेन॥
बुभुक्षितैर्व्याकरणं न भुज्यते, नपीयते काव्यरसः पिपासितैः।
न विद्यया केनचिदुद्धृतं कुलं, हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः कलाः।

इन श्लोकों से माघ ने अपनी अवस्था दिखायी है, वे घिघा से ऊब गये थे।

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं।

नारीनितम्बफलके प्रतिबध्यमाना
हंसीव हेमरशना मधुरं ररास॥
तं मोचनार्थमिव नूपुरराजहंसा
आक्रन्दुरात्त मुखरं चरणावलग्नाः॥ १॥

नारी के नितम्ब पर बँधी हुई सोने की करधनी हंसि के समान धीरे धीरे बोल रही है। उसका बन्धन छुड़ाने लिए नूपुररूपी राजहंस बड़े दुःख से चिल्लाने लगे और पैरों पर भी पड़े।

पहसितामिवालिनादैर्वितरसि नः कलिकां किमर्थमेताम् ।
तमभिगमेन धाम्नि तस्याः शठकलिरेव महांस्त्वयाद्य दत्तः ॥२॥

कोई खण्डिता नायिका अपराधी पति को, जो उसे पुष्प प्रसन्न करना चाहता है कहती है—इस कलिका का स ये भ्रमर अपने शब्दों से कर रहे हैं। क्योंकि इसके तुम मुझे ठगना चाहते हो। मुझे यह कलिका क्यों देते शठ (छिप कर अपराध करने वाले) तुम अपनी प्रिया पर जाकर बहुत बड़ा कलि (कलह) दे चुके हो। अब कलि (पुष्पकली) की ज़रूरत क्या है?

तकुसुमा विहाय वल्लीर्युवतीषु कोमलमाल्यभारिणीषु ।
दधिरे कुलान्यलीनां न परिचयो मलिनात्मनां प्रधानम् ॥३॥

मरों के समूह ने उन लताओं को छोड़ दिया, जिनके नयों ने तोड़ लिये थे। वे कोमल माला धारण करने युवतियों पर जाकर बैठे। जिनकी आत्मा काली है; वे रिचय की परवा करते हैं?

नति सुदृशो दृशः परागं प्रणयिनि कौसुममाननानिलेन।
तदुपनेरभोऽप्यमस्यो द्वयमपि रोषरजोभिरापुपूरे ॥४॥

स्त्री की आँखों में किसी फूल की धूलि पड़ गयी थी। का प्रियतम मुँह से फूँक कर निकाल रहा था। यह उसकी सौत की दोनों आँखें क्रोध की ...

स्त्रियाँ जलक्रीड़ा कर रही हैं। गजराज के मस्तक के समान विशाल उनके स्तनों से जल हिल उठा और इससे चक्रवाक दम्पती का वियोग हो गया। उच्छृङ्खल से क्या किसी को सुख हो सकता है ?

आनन्दं दधति मुखे करोदकेन श्यामाया दयिततमेन सिच्यमाने।
ईर्ष्यन्त्या वदनमसिक्तमप्यनल्पस्वेदाम्भःस्नपितमजायतेतरस्याः ॥६॥

प्रियतम नवयौवना के मुख पर अपनी अंजली से ज सींच रहा था और उस नवयौवना का मुख प्रसन्न हो रहा क्योंकि प्रियतम उसका सम्मान कर रहा है। पर दूसरी मुख पर जल के छींटे नहीं पड़े, इससे ईर्ष्या के कारण उस मुँह पर इतना पसीना आया कि वह भींग गया।

कान्तानां कुवलयमप्यपास्तमक्ष्णोः शोभाभिर्न मुखरुचाहमेकमेव।
संहर्षादलिविरुतैरितीव गायँल्लोलोर्मौ पयसि महोत्पलं ननर्त ॥७॥

जल में चञ्चल लहरियाँ उठ रही हैं। उनमें कमल नाच रहा है। उसके नाचने का कारण यह है, वह समझता है कि स्त्रियों के मुख की शोभा से मैं ही परास्त नहीं हुआ हूँ किन्तु आँखों की शोभा से कुवलय भी (रक्त कमल) परास्त हुआ है। इसी हर्ष के कारण वह भौंरों के शब्द से गाता हुआ नाच रहा है। उसको एक नया साथी मिल गया, इसीसे वह प्रसन्न होगया।

प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि ॥८॥

भाग्य के प्रतिकूल होने पर अनेक साधन भी विफल हो जाते हैं। जब सूर्य गिरने (अस्त होने) लगता है, तब उसके हजारों हाथ भी उसकी सहायता नहीं कर सकते।

अनुरागवन्तमपि लोचनयोर्दधतं वपुः सुखमतापकरम् ।
निरकासयद्रविमपेतवसुं वियदालयादपरदिग्गणिका ॥ ९ ॥

अनुरागी है, आंखों को सुख देनेवाला उसका शरीर भी है अर्थात् सुन्दर भी है; पर उसके पास वसु (धन या किरण) नहीं है, अतएव पश्चिम दिशा रूपिणी वेश्या ने सूर्य को आकाश रूपी घर से निकाल दिया ।

रुचिधाम्नि भर्तरि भृशं विमलाः परलोकमभ्युपगते विविशुः ।
ज्वलनं त्विषः कथमिवेतरथा सुलभोऽन्यजन्मनि स एव पतिः ॥१०॥

तेजोनिधि पति के परलोक जाने पर अस्त होने पर या मरने पर-कान्ति अग्नि में प्रविष्ट हुई। यदि वह ऐसा न करती तो दूसरे जन्म में वही पति उसको कैसे मिलता ।

अभिभूतपतारकमपूर्वहिमद्युतिबिम्बमस्तमितभानुनभः ।
विरतौष्ण्यतापमतमिस्रमभाद्दोषतैव विगुणस्य गुणः ॥ ११ ॥

ताराओं का उदय नहीं हुआ है, चन्द्रमा भी दिखायी नहीं पड़ता, सूर्य अस्त हो चुका है, ताप शान्त हो चुका है और अन्धकार नहीं है, ऐसा आकाश शोभितहो रहा है । क्योंकि गुणहीन के लिए दोषों का न रहना ही गुण समझा जाता है ।

दूरेऽपि भास्करकरान्दिः सततं तमोभिरधिगम्य तताम् ।
द्युतिमहीद्ग्रहगणो रूपवत् प्रकटीभवन्ति मलिनाश्रयतः ॥ १२॥

जो ग्रहगण दिन में सूर्य के प्रकाश से दिखायी नहीं पड़ते थे, वे ही अन्धकारमयी रात्रि पाकर प्रकाशित होगये। नीच मलिनों का आश्रय पाकर चमकते हैं ।

प्रथमं कलाभवदथार्थमथो हिमदीधितिर्महदभूदुदितः ।
दधति ध्रु वं क्रमत एव न तु द्युतिशालिनोऽपि सहसाऽभ्युद

चन्द्रमा पहले कलामात्र था, पर वही उदित महान् हो गया। तेजस्वी भी धीरे धीरे अभ्युदय पाते सहसा नहीं, यह निश्चित है।

उदमज्जि कैटभजितः शयनादपनिद्रपाण्डुरसरोजरुचा ।
प्रथमप्रबुद्धनदराजसुताऽऽवदनेन्दुनेव तुहिनद्युतिना ॥१४॥

विकसित श्वेत कमल के समान चन्द्रमा विष्णु के शयन से अर्थात् समुद्र से उदित हुआ। मानों विष्णु से पहले जागी हुई लक्ष्मी का मुखचन्द्र ही उदित हुआ।

अथ लक्ष्मणानुगतकान्तवपुर्जलधिं व्यतीत्य शशिदाशरथिः ।
परिवारितः परित ऋक्षबलैस्तिमिरौघराक्षसकुलं विभिदे ॥ १५ ॥

उदित होने पर लक्ष्मण (कलङ्क या लक्ष्मण) जिस के पीछे चल रहा है, और ऋक्षों (नक्षत्र या भालू) की सेना से जो घेरित है, वह चन्द्रमारूपी राम समुद्र लाँघ कर अन्धकार रूपी राक्षसों का नाश करने लगा।

रजनीमवाप्य रुचमाप शशी सपदि व्यभूषयदसावपि ताम् ।
अविलम्बितक्रममहो महतामितरेतरोपकृतिमच्चरितम् ॥१६॥

रात्रि ने चन्द्रमा को कान्ति दिया और चन्द्रमा ने भी उसी समय उस रात्रि को भूषित किया। बड़ों का यह चरित धन्य है, जिसमें शीघ्र ही परस्पर उपकार करने की रीति है।

दिवसं भृशोष्णरुचिपादहतां रुदतीमिवाम्बरतालिरुतैः ।
मुहुरामृशन्मृगधरोऽग्रकरै रुदशिश्वसत्कुमुदिनीवनिताम् ॥१७॥

दिन में सूर्य ने चरणों (किरणों) से कुमुदिनी को मारा है। इस कारण सतत होनेवाले भौंरों के ...

है, इस कारण चन्द्रमा अपने अग्रकर से (हाथ से या किरणों से) पोंछ रहा है और उसे आश्वासन दे रहा है।

अम्बरं विनयतः प्रियपाणेर्योषितश्च करयोः कलहस्य।
वारणामिव विधातुमभीक्ष्णं कक्ष्यया च वलयैश्च शिशिञ्जे ॥१८॥

प्रिय का हाथ वस्त्र खींचता है, और स्त्री के दोनों हाथ उसे रोकते हैं इस प्रकार इन दोनों में कलह हो रहा है। इस कलह को मिटाने के लिए स्त्री की करधनी और कङ्कण वार वार बोल रहे हैं।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥ १९ ॥

सूर्य का उदय होता है, और चन्द्रमा अस्त होता है, इस प्रकार यह पर्वत हाथी के समान मालूम होता है जिसके दोनों ओर दो घंटा लटके रहते हैं।

सपदि कुमुदिनीभिर्मीलितं हा क्षपापि
क्षयमगमदपेतास्तारकास्ताः समस्ताः
इति दयितकलत्रश्चिन्तयन्नङ्गमिन्दु-
र्वहतिकृशमशेषं भ्रष्टशोभं शुचेव ॥२०॥

कुमुदिनी मुकुलित होगयीं, रात्रि का भी अन्त होगया और वे समस्त तारकाएं नष्ट हो गयीं, इस कारण अपनी स्त्री से रात्रि से प्रेम रखनेवाला चन्द्रमा कृश होगया है, वह शोक से शोभारहित अङ्ग धारण कर रहा है।

नवनखपदमङ्गं गोपयस्यंशुकेन स्थगयसि मुहुरोष्ठं पाणिना दन्तदष्टम्
प्रतिदिशमपरस्त्रीसङ्गशंसी विसर्पन्नव परिमलगन्धः केन शक्यो वरीतुम् ॥२१॥

नवीन नख का चिह्न वस्त्र से छिपा रहे हो; दाँतों से काटा हुआ ओष्ठ हाथों से छिपा रहे हो; पर दूसरी स्त्री के संग का सूचक, चारों ओर फैलनेवाले इस परिमल गन्ध के लिए क्या करोगे ! इसको कैसे छिपाओगे ?

बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहं
चकर च किल चाटु प्रौढयोषिद्वदस्य।
विदितमिति सखीभ्यो रात्रिवृत्तं विचिन्त्य
व्यपगतमदयाह्नि व्रीडितं मुग्धवध्वा ॥२२॥

मैं उन्मत्तावस्था में उसके सामने बहुत बोलती रही क्या ! प्रौढ़ा स्त्रियों के समान मैंने उसके सामने व्यवहार किया क्या ? सखियों के द्वारा रात की बातें जानकर नशा उतरने पर मुग्ध वधू को बड़ी लज्जा आयी।

द्रुततरकरदक्षाः क्षिप्तवैशाखशैले
दधति दधनि धीरानारवान्वारिणीव।
शशिनमिव सुरौघाः सारमुद्धर्तुमेते
कलशिमुदधिगुर्वीं बल्लवा लोडयन्ति ॥२३॥

शीघ्र हाथ चलाने में निपुण इन अहीरों ने दही में मथानी रूपी पर्वत डाला है। इससे उसमें से गम्भीर ध्वनि निकल रही है। जिस प्रकार जल को मथकर देवताओं ने उसका सार चन्द्रमा निकाला था, उसी प्रकार ये भी समुद्र के समान कलश को मथ रहे हैं।

अनुनयमगृहीत्वा व्याजसुप्ता पराची
रुतमथ कृकवाकोस्तारमाकर्ण्य कल्ये।
कथमपि परिवृत्ता निद्रयान्धा किल स्त्री
मुकुलितनयनैवाश्लिष्यति प्राणनाथम् ॥२४॥

उसकी बहुत खुशामद की गयी, पर उसने कुछ भी न सुना और करवट बदल कर सो गयी। पर प्रातः काल मुर्गे की बाँग जब उसने सुनी, तब निद्रित रहकर ही जँभाई के बहाने उसने पुनः करवट बदली और आँखें बंद किये ही पति का आलिंगन किया।

परिशिथिलितकर्णग्रीवमामीलिताक्षः
क्षणमयमनुभूय स्वप्नमूर्ध्वज्ञुरेव।
रिरसयिपति भूयः शष्पमग्रे विकीर्णं
पटुतरचपलौष्ठप्रस्फुरत्प्रोथमश्वः ॥२५॥

कान और गर्दन सीधी करके आँखें बन्द करके इ अश्व ने जङ्घा को ऊपर करके थोड़ी देर तक शयन किय अब इसके घास खाने में निपुण ओठ चञ्चल हो रहे हैं, प्रो फड़क रहा है। यह आगे रखी घास को खाना चाहता है।

उदयमुदयदीप्तिर्याति यः संगतौ मे
पतति न वरमिन्दुः सोपरामेष गत्वा।
स्मितरुचिरिव सद्यः साभ्यसूयं प्रभेति
स्फुरति रुचिरमेषा पूर्वकाष्ठाङ्गनायाः ॥२६॥

जो सूर्य मेरे साथ उदय होता है, वही अपरा (पश्चि दिशा या दूसरी स्त्री) के यहाँ जाने से पतित (अस्त पतित) हो जाता है। यह समझकर पूर्व दिशारूपी स्त्री प्रभा मुस्कुराहट के समान दिखायी पड़ती है।

दधदसकलमेकं खण्डितामानमद्भिः
श्रियमपरमपूर्णामुच्छ्वसद्भिः पलाशैः।
कलरवमुपगीते षट्पदौघेन धत्तः
कुमुदकमलखण्डे तुल्यरूपामवस्थाम् ॥२७॥

एक—कुमुदवन मुकुलित होनेवाले पत्तों से आधा होगया है, अतएव नष्ट होनेवाली शोभा को यह धारण करता है। और दूसरा—कमल विकसित होनेवाले पत्तों से अपूर्ण अर्थात् बढ़ने वाली शोभा को धारण करता है। दोनों के पास भौंरे मधुर गम्भीर गान कर रहे हैं, इस प्रकार कुमुदवन और कमलवन दोनों समान अवस्था धारण करते हैं।

विकचकमलगन्धैरन्धयन्भृङ्गमालाः
सुरभितमकरन्दं मन्दमावाति वायुः ।
प्रमदमदनमाद्यद्यौवनोद्दामरामा
रमणरभसखेदस्वेदविच्छेददक्षः ॥२८॥

विकसित कमल की गन्ध से भौंरों को अन्धा बनाता हुआ, सुगन्धित पुष्परेणु को धारण करनेवाला वायु धीरे धीरे बहता है। यह हर्ष और मदन से उन्मत्त, यौवन के कारण उच्छृङ्खल स्त्रियों के रमण की थकावट से उत्पन्न पसीने को दूर करने में समर्थ है।

नवकुमुदवनश्रीहासकेलिप्रसङ्गा—
दधिकरुचिरशेषामप्युषित्वा त्रियामाम् ।
अयमपरदिशोऽङ्के मुञ्चति स्रस्तहस्तः
शिशिरविधुरिव पाण्डुम्लानमात्मानमिन्दुः ॥२९॥

अधिक शोभाशाली यह चन्द्रमा नवीन कुमुदवनश्री के हास की क्रीड़ा में लगे रहने के कारण सम्पूर्ण रात जागता रहा, अब पश्चिम दिशा के अङ्क में सोने की इच्छा से थके हुए अपने को छोड़ रहा है। उसके हाथ (किरण) शिथिल हो गये हैं, अर्थात् यह अस्त हो रहा है।

विगततिमिरपङ्कं पश्यति व्योम यावद्
धुवति विरहखिन्नः पक्षती यावदेव ।
रथचरणसमाह्वस्तावदौत्सुक्यनुन्ना
सरिदपरतटान्तादागता चक्रवाकी ॥३०॥

यह चकवाक जब तक आकाश को अन्धकार हीन देखता है और जब तक वह अपने पंखों को झाड़ता है, तभी तक नदी के उसपार से उत्सुकता से प्रेरित होकर चकवाकी चली आयी।

तदवितथमवादीर्यन्मम त्वं प्रियेति
प्रियजनपरिभुक्तं यद्दुकूलं दधानः ।
मदधिवसतिमागाः कामिनां मण्डनश्री-
र्व्रजति हि सफलत्वं वल्लभालोकनेन ॥३१॥

तुम मेरी प्रिया हो, यह जो तुमने कहा है वह बिलकुल सच है। क्योंकि प्रियजन के द्वारा भोगा हुआ वस्त्र पहन कर तुम मेरे यहां आये। कामियों के शृङ्गार की शोभा वल्लभा के देखने से ही सफल होती है।

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमांश्चक्रवाकः
उदयतिरविरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ॥३२॥

कुमुदवन शोभाहीन हो गया और कमलवन ने शोभा धारण की। उलूक की प्रसन्नता गयी और चकवाक प्रसन्न हुए। सूर्य उदित हो रहा है और चन्द्रमा अस्त,। दुर्भाग्य का परिणाम अनेक प्रकार का होता है।

मा जीवन्यः परावज्ञादुःखदग्धोपि जीवति।
तस्याजननिरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥३३॥

जो दूसरों के द्वारा होनेवाले निरस्कार के दुःख से जल-कर भी जीते हैं, वे न जीयें। उनका न जीना ही अच्छा है; क्योंकि उनसे केवल माता को कष्ट ही होता है।

तुल्येपराधे स्वर्भानुर्भानुमन्तं चिरेण यत्।
हिमांशुमाशु ग्रसते तन्म्रदिम्नः स्फुटं फलम् ॥३४॥

दोनों का अपराध बराबर है, पर सूर्य को देर से और चन्द्रमा को शीघ्र शीघ्र राहु ग्रसता है। यह कोमलता का फल है।

पादाहतं यदुत्थाय मूर्धानमधिरोहति।
स्वस्थादेवापमानेपि देहिनस्तद्वरं रजः ॥३५॥

पैर से आहत होने पर जो उठती है और शिर पर जाती है, वह धूल अपमान होने पर भी जो चुपचाप बैठे हैं उन मनुष्यों से अच्छी है।

मुरारि।

इन्होंने अनर्घराघव नाम का एक नाटक इनके पिता का नाम भट्ट श्रीवर्धमान था और तन्तुमति था। हरविजय प्रणेता रत्नाकर से रत्नाकर ने अपने हरविजय काव्य में इनका स्म

" अङ्कोत्यनाटक इवोत्तमनायकस्य -
नाशं कविर्व्यधित यस्य मुरारिरित्थम्।

अतएव ये रत्नाकर से प्राचीन हैं। मुरारि ने अपने विषय में इस प्रकार लिखा है—

देवीं वाचमुपासते हि बहवः सारं तु सारस्वतं
जानीते नितरामसौ गुरुकुलक्लिष्टो मुरारिः कविः ।
अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरता-
मापातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचलः ॥

सरस्वती की आराधना करनेवाले बहुत हैं, पर उसका सार गुरुकुल के क्लेशों को सहनेवाले मुरारि कवि ही जानते हैं। वानर समुद्र लाँघ गये, पर उसकी गहराई का पता मन्थाचल ही को है।

इनके कुछ मनोहर श्लोक आगे लिखे जाते हैं—

अभेदेनोपास्ते कुमुदमुदरे वा स्थितवतो
विपक्षादम्भोजादुपगतवतो वा मधुलिहः ॥
अपर्यासः कोपि स्वपरपरिचर्यापरिचय—
प्रबन्धः साधूनामयमनभिसंधानमधुरः ॥ १ ॥

कमल शत्रु के यहाँ से आया हुआ भ्रमर और अपने कोश में रहने वाला भ्रमर इन दोनों को एक प्रकार से देखता है। उसकी इनमें भेद-दृष्टि नहीं है। यह अपना है यह दूसरा है, इस बात का विचार किये विनाही सज्जन सब का समान रूप से सेवा-सत्कार करते हैं।

अविनयभुवामज्ञा नानांशमाय भवन्नपि ।
प्रकृतिकुटिलाद्विद्याभ्यासः खलत्वविवृद्धये ॥
फणि भयभृतामस्तुच्छेदक्षमस्तमसामसौ ।
विषधरफणारत्नालोको भयं तु भृशायते ॥ २ ॥

स्वभाव से कुटिल मनुष्य से विद्या के अध्ययन करने से यद्यपि अविनयी अज्ञानियों को कुछ शान्ति मिल जाती है, पर

उससे उसकी खलता की वृद्धि होती है। सर्प की फणा प रहने वाले मणि के प्रकाश से साँप से डरने वालों के लि अन्धकार का नाश अवश्य होता है, पर भय तो कम नहीं होता, वह तो बढ़ता जाता है।

> स्ववपुषि नखलक्ष्म स्वेन कृत्वा भवत्या
> कृतमिति चतुराणां दर्शयिष्ये सखीनाम्
> इति रहसि मया ते भीषिताया स्मरामि
> स्मरपरिमलमुद्रामङ्गसर्वसहायाः ॥३॥

स्वयं अपने शरीर में अपने नखों का चिन्ह बनाया और यह तुमने (स्त्री ने) किया है, यह मैं चतुर सखियों को दिखाऊँगा, । यह कह कर मैंने तुमको डरवाया और तुमने इसके प्रकाशित होने के भय से सब सह लिया।

> जाताः पक्वपलाण्डुपाण्डुरमुचच्छायाकिरस्तारकाः
> प्राचामङ्कुरयन्ति किंचन रुचो राजीवजीवातवः
> लूतातन्तुवितानवर्तुलमिदं बिम्बं दधच्चन्द्रमा (?)
> प्रातः प्रोषित रोचिरम्बरतलादस्ताचलं चन्द्रमाः ॥ ४ ॥

ताराओं की प्रभा पके पलाण्डु के समान पीली हो गयी है। कमलों को जीवित करनेवाली रुचि पूर्व दिशा में उग रही है। मकड़ी के जाला के समान बिम्बधारण करनेवाला यह चन्द्रमा प्रातःकाल आकाश से अस्ताचल पर आरहा है इसकी शोभा हीन हो गयी है।

> भोगीन्द्रः प्रमदांसरत्नमुरगीसंगीतगोष्ठीपुने
> कीर्तिं देव भवत्तु विशन्गिरी मधपुरी वर्तने
> स्मः[illegible] सुरसुन्दरीनिनिनो गीतानु कर्णं द्वयी
> [illegible] श्रोतवति भाव किं यदि पट्वाशो न बाहुःप्रभः ॥५॥

देव, भागवतजनों की सद्गीत सभा में आनन्द से गद्गद होकर शेषराज तुम्हारी कीर्ति सुनें, क्योंकि उनके दो हज़ार कानें हैं। पर मनुष्य देवांगनाओं के द्वारा गायी हुई तुम्हारी कीर्ति इन्द्र कैसे सुन सकेगा। क्योंकि उसके तो दो ही कान हैं। यद्यपि इन्द्र के भी हज़ार आँखें हैं, पर उनमें तो सुनने की शक्ति नहीं है।

जा रहा हूँ यह इच्छा हृदय में उत्पन्न हो सकती है, प
प्राणप्रिया के सामने निर्दय होकर यह कहा कैसे जा सकत
है ? पर वह कहा गया। अविरत अश्रु प्रवाहयुक्त प्रिया क
मुख देख कर भी लोग विदेश चले जाते हैं। स्वल्पधन क
प्राप्ति की इच्छा तुम लोगों के हृदय में ऐसी मज़बूत है ?

लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाष्पाम्बुधौतगण्डतला।
अवधिदिवसावसानं माभूदिति शङ्किता बाला ॥३॥

आंसू से उसके दोनों गाल भींग गये हैं। यह अवधि के
दिन बीतने की शङ्का से न तो लिखती है और न अवधि के
लिए लगायी रेखा को ही गिनती है।

प्रियतमस्त्वमिमामनघार्हसि प्रियतमा च भवन्त मिहार्हति।
नहि विभाति निशारहितः शशी न च विभाति निशापि विनेन्दुना ॥४॥

हे निष्पाप, तुम इसके प्रियतम होने योग्य हो और यह
तुम्हारी प्रिया होने के योग्य है। रात्रि के बिना चन्द्रमा नहीं
शोभता और चन्द्रमा के बिना रात्रि भी नहीं शोभती।

महाकवि राजानक रत्नाकर।

ये कश्मीर के निवासी कवि थे। इनका पूरा नाम
राजानक रत्नाकर वागीश्वर है। कश्मीर के राजा अवन्तिवर्मा
के समय में ये हुए थे। यह बात राजतरङ्गिणी में लिखी है।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।

अवन्तिवर्मा का समय ८५५ से ८८४ ई० तक माना जाता है। रत्नाकर भी इसी समय के थे, यह समझना चाहिए।

रत्नाकर के पिता का नाम अमृतभानु था और ये [illegible] नामक ध्यान में रहते थे। महाकवि राजशेखर ने इनके विषय में लिखा है—

> मा स्म सन्तु हि चत्वारः प्रायो रत्नाकरा इमे।
> इतीव स कृतो धात्रा कविरत्नाकरोऽपरः॥

चारही रत्नाकर (समुद्र) न रहें, इनकी संख्या और भी बढ़े इसलिए ब्रह्मा ने पांचवें रत्नाकर कवि की सृष्टि की।

इन्होंने हरविजय नामक एक महाकाव्य बनाया है। यह काव्य पचास सर्गों में पूर्ण हुआ है। इनकी कविता प्रौढ़ होती थी। इन्होंने अपने ग्रन्थ के अन्त में एक प्रतिज्ञा की है। प्रतिज्ञा यह है—

> हरविजयमहाकवेः प्रतिज्ञां शृणुत कृतप्रणयो मम प्रबन्धे,
> अपि शिशुरकविः कविः प्रभावाद् भवति कविश्च महाकविः क्रमेण।

मेरे ग्रन्थ से प्रेम रखनेवाले हरविजय काव्य के महाकवि की प्रतिज्ञा सुनो, कवि के प्रभाव से अकवि बालक कवि और महाकवि क्रम से हो जाता है।

> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]
> [illegible]

आ रहा हूँ यह इच्छा हृदय में उत्पन्न हो सकती है, प्राणप्रिया के सामने निर्दय होकर यह कहा कैसे जा सकता है! पर यह कहा गया। अविरत अश्रु प्रवाहयुक्त प्रिया का मुख देख कर भी लोग विदेश चले जाते हैं। स्वल्पधन की प्राप्ति की इच्छा तुम लोगों के हृदय में ऐसी मज़बूत है!

लिखति न गणयति रेखा निर्भरबाष्पाम्बुधौतगण्डतला।
अवधिदिवसावसानं मा भूदिति शङ्किता बाला ॥३॥

आंसू से उसके दोनों गाल भींग गये हैं। वह अवधि के दिन बीतने की शङ्का से न तो लिखती है और न अवधि के लिए खगायी रेखा को ही गिनती है।

प्रियतमस्त्वमिमामनघार्हसि प्रियतमा च भवन्त मिहार्हति।
नहि विभाति निशारहितः शशी न च विभाति निशापि विनेन्दुना ॥४॥

हे निष्पाप, तुम इसके प्रियतम होने योग्य हो और यह तुम्हारी प्रिया होने के योग्य है। रात्रि के बिना चन्द्रमा नहीं शोभता और चन्द्रमा के बिना रात्रि भी नहीं शोभती।

महाकवि राजानक रत्नाकर।

ये कश्मीर के निवासी कवि थे। इनका पूरा नाम राजानक रत्नाकर वागीश्वर है। कश्मीर के राजा अवन्ति वर्मा के समय में ये हुए थे। यह बात राजतरङ्गिणी में लिखी है।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्द्धनः
प्रथां रत्नाकरश्चगात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः।

सूर्य बिम्ब के अस्ताचल पर चले जाने के कारण और चन्द्रबिम्ब के उदयाद्रि शिखर पर रहने के कारण आकाश की शोभा स्वर्णकार के सूप के लिए दो थाल लिये हुए नर के समान मालूम पड़ती है।

[illegible] ।
[illegible] ॥

अतीव प्रेम के कारण एक में मिले हुए शिव और पार्वती की तरह शोभा के समान संध्या के द्वारा दबायी दिन और रात्रि दोनों के शरीर के मिलने की शोभा प्रकाशित हुई।

[illegible]-
[illegible] ।
[illegible]-
[illegible] ॥

स्वर्णकार के समान और रुधिर के समान लाल वायुओं की धूल के फैलने से आकाश और दिशाओं को छिपाने लिये विशिष्ट रूप बना दिया है, और जो उड़नेवाले [illegible] के कारण व्याकुल हो गयी है, वह दिन की शोभा [illegible] के समान समुद्र में [illegible] हुई गयी।

[illegible],
[illegible] ।
[illegible]-
[illegible] ॥

जब सूर्य अस्ताचल के शिखर पर गया, तब [illegible] बिम्ब दिखलाने के लिए [illegible], वे [illegible] [illegible]

दिन एक कमल का फूल है। फैलने वाली स
उसकी केशर हैं। और सूर्यबिम्ब बड़ा सा कर्णि
दिशा अष्टदल हैं, सायंकाल के प्रदोष के कारण
अंधकार भौंरे हैं। यह कमल बन्द हुआ, अ
हुई।

> अस्ताद्रिगोचरचरं रुरुचे चिराय
> गोरोचनारुचिमरीचि विरोचनस्य
> बिम्बं दिनान्तपवनाहृतपुण्डरीक-
> पर्यस्तपद्मरजसेव विलिप्यमानम् ॥

सूर्यबिम्ब की किरणें गोरोचना के सम
हैं। वह सूर्यबिम्ब अस्ताचल पर जाता हुअ
मालूम होता है। सायंकाल के पवन के द्वा
कों बिखरी हुई धूल मानो उसमें लिपट गयी

> सिन्धौ कुसुम्भकुसुमस्तबकाभिता
> माजिष्ठकान्तितपनः प्रतिबिम्बित
> संपरपतिरम निजमण्डलमस्तहू
> संघट्टभग्नरथकाधनचक्रशङ्की ॥

समुद्र में प्रतिबिम्बित होने पर सू
पुष्पों के गुच्छों के समान लाल और कु
अस्ताचल के शिखरों के धक्का लगने के
के रथ के पहिये टूट तो नहीं गये हैं,
को समुद्र में देखता है।

> अस्तावलम्बिरविबिम्बकपोदयाद्रिशृङ्गाभिराम
> ...पहरवापभूतीनशोरणकाळद्वयेव सम

(य)ड़खावड़ होगये थे और इसीसे कमलवन के गर्दन उठाने (क)ी बात समझी गयी।

आकृष्य मायमिव पश्चिम दिग्विभाग,
बद्धास्पदद्विरददीर्घकरार्गलेन,
ताराम्बुबुद्बुदकरालनभस्तडाक-
रक्ताम्बुजं तपन बिम्बमलम्बतारात् ॥ ११ ॥

आकाश एक तालाब है जिसमें तारायें बुद्बुद के समान हैं। और सूर्य कमल है। उस कमल को मानों पश्चिम दिशा के हाथी ने अपनी सूँड से खींच लिया है; अतएव सूर्यबिम्ब इस समय पश्चिम की ओर दिखायी देता है।

पर्यस्तमस्तगिरि सानुनि सान्द्रसंध्य-
रागाच्छच्छविसहस्रमरीचिबिम्बम्।
कंदर्पकोपित हरस्फुरितानलार्चि-
रुच्चांक्षितारकतिरोहित भेदमासीत् ॥ १२ ॥

अस्ताचल के शिखर पर संध्या के कारण सूर्य लाल सूर्य का बिम्ब फैल गया है। यह कामदेव पर कुपित महादेव के तृतीय नेत्र से निकले हुए अग्नि स्फुलिंग के समान मालूम होता है।

आविर्भवत्तिमिरसंवलनानुविद्ध,
संध्यांशुधूसरविराटलशुल्यधामः।
भाति स्म निःश्वसितपूनरिखाबकीर्ण-
विस्तीर्णशंखकपरवविडम्बि बिम्बम् ॥ १३ ॥

सूर्य का बिम्ब फैलनेवाले अंधकार के मिलने से और सायंकाल के प्रकाश के मिलने से थोड़ा काला लिये लाल-वर्ण का बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। यह साँप के फुफ-

ढोंढियों को अंजली बनाकर घबराहट के साथ संध्या को प्रणाम किया।

> संध्यातपारुणितपार्श्वतटावलम्बि-
> विन्ध्यैकदेशजलदः क्षणमस्तशैलः।
> वज्रव्रणाननगलत्क्षतजोक्षितार्ध-
> विच्छिन्नविस्रयपतत्र इवावभासे ॥८॥

वज्र के आघात लगने के कारण मुख से बहनेवाले रुधि से जिसका आधा अङ्ग लाल होगया है और जिसके पं शिथिल और बिखरे हुए हैं, उस पक्षी के समान एक क्षण लिए अस्ताचल मालूम होने लगा। क्योंकि उसके एक भाग लटकनेवाले मेघ का प्रान्त भाग संध्या के सूर्य की कि से लाल हो गया था।

> अभ्येयुषः परिणतिं समयक्रमेण, सायंनभःसरसि वासरपङ्कजस्य।
> स्वर्णांशुपद्मरविमण्डलवीजकोपचक्रं वभार परिधूसर पीवरत्वम् ॥९॥

आकाशरूपी तालाब का दिन रूपी कमल सायंकाल में पक गया और उस कमल का बीजरूपी रविमंडल पीला और मोटा होगया।

> तुङ्गावकाश रचितस्थितिमातपस्य,
> शेषं समुत्सुकतयेव दिदृक्षमाणाः।
> उत्कंधरा इव सरोजभुवोबभुः-
> रुद्यत्कोरक करालित पुण्डरीकाः ॥१०॥

ऊँचे स्थान में सूर्य की स्थिति देखने के लिए उत्सुक हो कमलवन ने मानो गर्दन उठायी है। क्योंकि उस स कमलवन में ढोंढियाँ ऊपर उठ गयी थीं, जिससे क

ऊबड़खाबड़ होगये थे और इसीसे कमलवन के गर्दन उठाने की बात समझी गयी।

आकृष्य मार्गमिव पश्चिम दिग्विभाग,
वद्धास्पदद्विरददीर्घकराग्रलेन,
ताराच्छबुद्बुदकरालनभस्तटाक-
स्काम्बुजं तपन विम्बमलम्बतारात्॥ ११॥

आकाश एक तालाब है जिसमें तारायें बुद्बुद के समान हैं। और सूर्य कमल है। उस कमल को मानों पश्चिम दिशा के हाथी ने अपनी सूँड से खींच लिया है; अतएव सूर्यविम्ब इस समय पश्चिम की ओर दिखायी देता है।

पर्यस्तमस्तगिरि सानुनि सान्द्रसांध्य-
रागारुणच्छविसहस्रमरीचिविम्बम्।
कंदर्पकोपित हरस्फुरितानलार्चि-
रूर्ध्वाक्षितारकतिरोहित भेदमासीत्॥ १२॥

अस्ताचल के शिखर पर संध्या के कारण खूब लाल सूर्य का बिम्ब फैल गया है। वह कामदेव पर कुपित महादेव के तृतीय नेत्र से निकले हुए अग्नि स्फुलिंग के समान मालूम होता है।

आविर्भवत्तिमिरसंवलनानुविद्ध,
संध्यांशुधूसरविराटलगुल्पधाम्नः।
भाति स्म निःश्वसितधूमशिखावकीर्ण-
विस्तीर्णशेषफणरत्नविडम्बि बिम्बम्॥ १३॥

सूर्य का विम्ब फैलनेवाले अंधकार के मिलने से और सायंकाल के प्रकाश के मिलने से थोड़ा काला लिये लालवर्ण का बड़ा ही सुन्दर मालूम होता है। वह साँप के फुफु-

कारों से कुछ मलिन हुए सर्प की मणि की शोभा इस समय धारण कर रहा है।

मुक्ताम्बरस्तिमिरतस्करलुप्यमानलक्ष्मीमलीमसरुचिः प्रकटोपघातः।
अह्नाय वासरहितस्फुटलोहितश्रीरस्ताद्रिरस्तगिरिकाननमभ्यविक्षत् ॥१४॥

सूर्य ने अम्बर (आकाश या वस्त्र) छोड़ दिया; अंधकार-रूपी चोरों से लूटे जाने के कारण उसकी शोभा मलिन हो गयी है। उसपर प्रहार पड़े हैं, वह लाल हो गया है और वास रहित (वासर हित, वास=रहित) वह सूर्य अस्ताचल के वनों में चला गया।

तेजःप्रकर्षपरिहानिमपेयिवांसमारान्प्रदोषतमसाभिभूयमानम्।
अम्भोनिधौ तरलमन्वपतद्दिनश्रीरेकात्मतां विदधतामिदमेव युक्तम् ॥१५॥

सूर्य का समस्त तेज नष्ट होगया। वह संध्या के अंधकार से भूषित होरहा है यह देख कर दिनश्री समुद्र में डूब गयी, क्योंकि एकात्मता - अभेद रखने वालों के लिए यही उचित है।

आरूढमार्द्रमथ साम्बुधिलम्बमानबिम्बः क्रमेण निपतन्वियतो विवस्वान्।
उल्लासितस्तसलिलप्रसृतप्रभ ... ॥१६॥

अन्तरिक्ष से धीरे धीरे गिरता हुआ सूर्य का बिम्ब जब समुद्र के आसपास पहुँचा, तब वह कोमल होगया। मानों ऊपर उछलनेवाली समुद्र की किरणों के संसर्ग के कारण उसका तेज कोमल हुआ है।

बिम्बं समानकलितांशु शिखासहस्र
बिम्बाम्बुमाम्बु ... पूर्व बिम्बम्।
छिन्नं प्रवालमणिनीचि निपात काल-
... ॥१७॥

सायंकाल होगया है सूर्य की किरणें एक एक गिर रही हैं, मानों सूर्य-विम्ब से रुधिर की धारा बह रही है। वह सूर्य-विम्ब मानो दिन का मस्तक है और कालरूपी खड्ग से कट गया है, वह समुद्र में गिर गया।

ते साधवो भुवनमण्डलमौलिभूता
ये साधुतां निरुपकारिषु दर्शयन्ति।
आत्मप्रयोजनवशी कृतखिन्नदेहः
पूर्वोपकारिषु खलोपि हि सानुकम्पः ॥१८॥

पृथिवी मण्डल में वे श्रेष्ठ साधु हैं जो निरुपकारियों पर भी अपनी साधुता दिखाते हैं। अपने स्वार्थ के लिए व्याकुल रहनेवाला खल भी अपने पूर्वोपकारी पर दया दिखाता है।

हेतोः कुतोप्यसदृशाः सुजना गरीयः
कार्यं निसर्ग गुरवः स्फुटमारभन्ते।
उत्थाय किं कलशतोपि न सिन्धुनाथ-
मुद्वीचिमालमपिवद्भगवानगस्त्यः ॥१९॥

स्वभाव से गुरु सुजनगण किसी कारण वश बड़ा ही कार्य प्रारम्भ करते हैं। अगस्त्य ने घड़ों से उठा कर तरंगों वाले समुद्र का पान किया था।

ख्यातिं यत्र गुणा न यान्ति गुणिनस्तत्रादरः स्यात्कुतः।
किं कुर्याद्बहुशिक्षितोऽपि पुरुषः पाषाणभूते जने॥
प्रेमार्द्रविलासिनीमदवशाव्यापृतकण्ठस्वनः
सीत्कारो हि मनोहरोपि बधिरे किं नाम कुर्याद्गुणम् ॥२०॥

जहाँ गुणों की प्रसिद्धि ही नहीं होती, वहाँ गुणियों का आदर क्या होगा? पत्थर के समान आदमियों में बहुत पढ़ा लिखा भी मनुष्य क्या कर सकता है? प्रेमाकुल विला-

सिनी के गला टेढ़ा करने से निकला
होता है। पर यह यहाँ पर क्या प्रमा

यद्य' शशिशेखरो हरो हरिप्येष यद्दीशि
भ्रमरा अपि यत्सुरा असी तद्विमास्तस्य वि

जो मस्तक पर चन्द्रमा धारण क
ये लक्ष्मी के स्वामी विष्णु हैं और जो
ये सब उस समुद्र को विभूति के विन्दु हैं

आस्तां क्लमापहरणं जलधेर्जलेन दूरे दवाग्निशरदी
एतावदस्तु यदि तोयकणैर्न जिह्वा दन्दह्यते द्विगुणत

दवाग्नि से जिनका मन सन्तप्त हो गया
यह यदि समुद्र के जल से दूर नहीं होती
इतना ही होना चाहिए कि उसके जल से उ
प्यास दूनी न बढ़ जाय।

मूर्च्छानुबन्धश्वसितज्वलापप्रजागरोत्कम्पविजृम्भण
फलान्यवाप्तानि तया सुखार्थमात्मार्पितं त्वय्यपि म

दूती कहती है, उसने सुख के लिए आपके
किया था, पर उसका फल उसे मूर्च्छा, श्वास,
गर, कम्प और जम्भाई मिल रहा है।

यदधरगतमाधुर्याति तृष्णां दिशति नवभ्रकोत्पलस्य निद्रा
क्वमपि वदहन स कोपि चन्द्रो वदनमयः श्रियमातनोति त

जो अधर के समीप आने पर
कमल का नि

काञ्चिगुणैर्विरचिता जघनेषु लक्ष्मी-
रुच्चा स्थितिः स्तनतटेषु च रत्नहारैः।
नो भूषिता वयमितीव नितम्बिनीनां
कार्श्यं निरर्गलमधार्यत मध्यभागैः॥२५॥

करधनी के द्वारा जघनों की शोभा बढ़ायी गयी, स्तनों पर उत्तम हार पहनाया गया। पर हम को कोई भूषण नहीं मिला, इसी दुःख से स्त्रियों का मध्यभाग दुर्बल हो गया।

व्यक्तोपकारममुना स्थगितासु दिक्षु
प्रेयोगृहं सुखमलक्षितमेव यामः।
धम्मिल्ल बन्धरुचिरैरभिसारिकाभिः
प्रेम्णातमस्त्रिरमितीव शिरोभिरूहे॥२६॥

इसने दिशाओं को छिपाकर स्पष्ट उपकार किया है। अब हम लोग छिप कर अपने प्रिय के घर जायँगी। इसी कारण प्रेमपूर्वक अभिसारिकाओं ने गूथे हुए केशों के कारण सुन्दर सिरों से अन्धकार को धारण किया है।

आबद्धपद्ममुकुलाञ्जलियाचितोऽसा-
वत्सृज्य संप्रति गतः कथमंशुमाली।
अन्तर्विरुद्धमधुपक्वणितैरितीव
स्वप्नायितस्म नलिनी निशि बद्धनिद्रा॥२७॥

ढोंढ़ीरूपी अंजली बाँधकर हमने प्रार्थना की थी; इस समय छोड़कर चन्द्रमा कहाँ चले गये। रात को सोयी हुई कमलिनी, कमलपुट में बन्द भ्रमर के शब्दों से यह स्वप्न देख रही है।

अस्तादिपार्श्वमुपजग्मुषि तिग्मभासि
जानीत शीतकिरणोऽभ्युदितो न वेति।
चारा इवाथ रजनीतिमिरप्रयुक्ता--
श्चेरुश्चिरं चरणभूमिषु चञ्चरीकाः ॥२८॥

सूर्य अस्ताचल के पास चले गये, देखो चन्द्रमा उदित हुआ कि नहीं, रात्रि के अन्धकार से यह आज्ञा पाकर चार (दूत) के समान भौंरे घूम रहे हैं।

निष्क्यूतकज्जलकरालशिखाशिखण्डै--
स्त्सङ्गवृत्तिमधिगम्य निकेतनानाम्।
स्नेहानुबन्धिभिरदीपि दिनावसाने
संध्यार्भकैरिव सरागकरैः प्रदीपैः ॥२९॥

जिन्होंने कज्जल का भयानक मस्तक हटा दिया है और जो घरों के गोद में वर्तमान हैं। वे स्नेह (प्रेम या तैल) का अनुसरण करने वाले लालकर (हाथ या किरण) के दीपक दिन के अन्त में प्रकाशित हुए, मानों ये सन्ध्या के पुत्र हों।

पीततुषारकिरणो मधुनैव सार्ध--
मन्तःप्रविश्य चषकप्रतिबिम्बवर्ती।
मानान्धकारमपि मानवतीजनस्य
नूनं बिभेद यदसौ प्रससाद सद्यः ॥३०॥

चषक में (मद्य पीने के पात्र में) चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब पड़ा था, मालूम होता था कि स्त्रियों ने शराब के साथ चन्द्रमा को भी पीलिया। क्योंकि उनके हृदय में पैठ कर चन्द्रमा ने ...मानरूपी अन्धकार का नाश कर दिया और वे शीघ्र ही

हस्तादिदानकमलीकुमदेन वधू—
मधोऽङ्गिते श्रवणपुरवल्लिवन्दूः॥
आलीजनेऽपकुरन्तहरवानवतीया
मधु' क्षहार सविशेषकुतूहलितम्॥११॥

सुरा के नशा के कारण वह बोलने के लिए उत्साहित हुई। पर आधा कहने पर वह लज्जित होकर चुप रह गयी। उसने अपना कथन समाप्त नहीं किया। इससे पति का कुतूहल और बढ़ गया।

राजशेखर।

इन्होंने कर्पूरमंजरी, बाल रामायण, विद्धशाल भंजिका और बाल भारत नाम के नाटक बनाये हैं। ये महाराष्ट्र देश के निवासी थे। इनके पिता का नाम ठीक ठीक मालूम नहीं होता। इन्होंने अपनेको एक जगह दौर्दकि लिखा है एक जगह दौहकि, सम्भवतः इनके पिता का नाम दुहकि या दुर्दकि होगा। ये नाम सुनने में ज़रा विचित्र मालूम पड़ते हैं। इनकी माता का नाम शीलवती था। महाकवि अकालजलद इनके पितामह थे। यायावर कुल में ये उत्पन्न हुए थे। बालरामायण की प्रस्तावना में स्वयं राजशेखर यह बात कहते हैं—

स मूर्त्तो यत्रासीद्गुणगण इवाकालजलदः
सुरानन्दः सोऽपि श्रवणपुटपेयेन वचसा
न चान्ये गण्यन्ते तरलकविराजप्रभृतयो
महाभागस्तस्मिन्नयमजनि यायावरकुले।

कुछ लोग राजशेखर को शैव सम
ग्रन्थों में प्रायः शिव को ही नमस्कार
इनके शैव होने की प्रसिद्धि लोगों में फैल
रचित यशस्तिलक चम्पू में राजशेखर के
के लिए प्रयत्न करने की बात लिखी है। स
कर दूसरे हों।

अवन्तीसुन्दरी नाम की चहुआन कुल
इन्होंने ब्याह किया था। ये कान्यकुब्ज के र
के गुरु थे। यह बात विद्धशालभंजिका में स्व
लिखी है—

रघुकुलतिलको महेन्द्रपालः
सकलकलानिलयः स यस्य शिष्यः।

महीपाल का शिलालेख प्राप्त हुआ है, जो
संवत् का लिखा हुआ है। यह महिपाल मह
पुत्र था। इससे राजशेखर का समय नवीं सदी
समझना चाहिए। दशरूपक, औचित्य विचार च
ग्रन्थों में इनके श्लोक उद्धृत हुए हैं।

राजशेखर की कविता बड़ी ही मनोहर है। इनकी
की प्रशंसा में शङ्करवर्मा ने एक श्लोक लिखा है,
लिखा जाता है—

पातुं श्रोत्ररसायनं रचयितुं वाचः सतां सम्मता,
व्युत्पत्तिं परमामवाप्तुमवधिं लब्धुं रसस्रोतसः
भोक्तुं स्वादुफलञ्च जीवितरोर्यद्यस्ति ते कौतुकं
तद्भ्रातः

इनके कुछ श्लोक सुनिये —

पर्णं नागरखण्डमार्द्रं सुभगं पूगीफलैलास्तथा।
कर्पूरस्य च यत्र कोऽपि चतुरस्ताम्बूलयोगक्रमः।
देशः केरल एष केलिसदनं देवस्य शृङ्गारिण-
स्तद् दृष्ट्वा कुरु कोमलाङ्गि सफले द्राघीयसी लोचने ॥१॥

हरा और अच्छा पान सुपारी और इलायची और इनमें कपूर की सावधानी से योग यहाँ होता है। यह केरल देश है, यह कामदेव का क्रीड़ास्थान है। हे कोमलाङ्गि, इसको देखकर अपनी आँखों को सफल करो।

वाक्सत्वाङ्गसमुद्भवैरभिनयैर्नित्यं रसोल्लासतो,
वामाङ्ग्यः प्रणयन्ति यत्र मदनक्रीडामहानाटकम्।
अत्रान्ध्रास्तत्र दीक्षणेन त इमे गोदावरीः स्रोतसां
सप्तानामपि वारिभिः प्रणयिनां द्वीपान्तराणि श्रिताः ॥२॥

वचन मानसिक भाव और शरीर के द्वारा उत्पन्न होने वाले अभिनयों से जहाँ स्त्रियाँ हर्षपूर्वक कामदेव का महानाटक खेलती हैं, समुद्र में मिलनेवाली गोदावरी की सातों धाराओं से द्वीप के समान बना हुआ यह देश है।

कावेरी कवरीव भामिनि भुवो देव्याः पुरो दृश्यतां।
पूगैर्नागलताश्रितैरुपदिशत्याश्लेषविद्यामिव।
कर्णाटीजनमज्जनेषु जघनैर्यस्याः पयः प्लावितं।
पीत्वा नाभिगुहाभिरात्तरुचिभिः प्राचीं दिशं नीयते ॥३॥

हे देवि, कावेरी नदी पृथ्वी देवी के केशपाश के समान मालूम होती है। यह आगे देखो, लताश्रित सुपारी के वृक्षों के द्वारा यह आलिङ्गन विद्या का उपदेश दे रही है। कर्णाट की स्त्रियों के स्नान के समय उनके जघनों से उछाले जल को पीकर पूर्व दिशा की ओर जारही है।

यत्क्षेम' त्रिदिवाय वर्त्म निगमस्याङ्ग' च यत्तम'
स्वादिष्ठञ्च यदैक्षवादपि रसाच्छुश्च यद्वाङ्मयम्
तद् यस्मिन् मधुरप्रसादि रसवत् कान्तञ्च काव्यामृत'
सोऽयंसुभ्रु पुरोविदर्भविषयः सारस्वतीजन्मभूः ॥

जो कल्याण है, जो स्वर्ग का मार्ग है, जो शा
उत्तम अङ्ग है, ईक्षु रस से भी जो स्वादिष्ट है जो व
वन्द है वह मधुर प्रसन्नकरनेवाला सरस और
काव्यामृत जिसमें है वह यह विदर्भ देश है। हे सुभ्रु
विद्याओं की जन्मभूमि है।

यद्योनिः किल संस्कृतस्य सुदृशां जिह्वासु यन्मोदते
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः।
गद्य' चूर्णपदं पदं रतिपतेस्तत्प्राकृतं यद्वच-
स्तांल्लाटांल्ललिताङ्गि पश्य नुदती दृष्टेर्निमेषव्रतम् ॥

जो संस्कृत भाषा का मूल कारण है, जिसे स्त्रियाँ बोल
हैं, जिसके सुनलेने पर अन्य भाषा के अक्षर कठोर मालूम
पड़ते हैं, जिसका असमस्त पद गद्य कामदेव का स्थान है, वा
प्राकृत जिनकी बोली है। हे ललिताङ्गि, उस लाट देश को
देखो, उसके देखने के लिए आँखों का निमेष व्रत भूल

सेयं सुभ्रु पुरः कलिन्दतनयातीरालिभिर्भासते,
धामः कालियपन्नगस्य यमुना दृग्गोचरं वर्तते,
मन्दस्यार्पणमणीमिमां दुहितरं वैवस्वतस्यानुजां
यस्याः स्वर्णपरीक्षणप्रमुखतापी स्वसा मोदते ॥११॥

हे सुभ्रु, यह गङ्गा की बहिनी कलिन्दतनया यमुना न
जहाँ कालिय नाग रहता है। इस सूर्य की कन्या।
यम की छोटी बहिन को नमस्कार करो, जिसकी तो

वहिन तापी है, जहां सुवर्ण की परीक्षा करने योग्य पत्थर होते हैं।

यत्रार्ये न तथानुरज्यति कविग्रामीणगीर्गुम्फने।
शास्त्रीयासु च लौकिकीषु च यथाभव्यासु नव्योक्तिषु,
पञ्चालास्तव पश्चिमेन न इसे वामा गिरां भाजना-
स्तद्गद्देरतियी भवन्तु यमुनां त्रिस्रोतसं चान्तरा ॥७॥

आर्ये, जहां का कवि ग्रामीण कविता करना नहीं चाहता, किन्तु शास्त्रीय लौकिक सुन्दर और नयी उक्तियों में ही वह अनुराग प्रकाशित करता है, तुम्हारे पश्चिम के ओर वही यह पाञ्चाल देश है, जहां वक्र उक्ति का बड़ा आदर है, उस यमुना और गङ्गा के बीचवाले पाञ्चाल देश को देखो।

यो मार्गः परिधानकर्मणि गिरां यः सूक्तिमुद्राक्रमो
भङ्गीर्यो कवरीचयेषु रचनं यद्भूषणालीषु च
दृष्टं सुन्दरि कान्यकुब्जललनालोकैरिहान्यच्च य-
च्छिक्षन्ते सकलासु दिक्षु तरसा तत्कौतुकानि स्त्रियः ॥८॥

कान्यकुब्ज स्त्रियों के कपड़े पहने की जो रीति है, बोलने का जो ढंग है और केशपाश बनाने की तथा गहने पहनने की जो विधि है उसको अन्य देश की स्त्रियां कौतुक पूर्वक सीखती हैं।

इन्दोर्लक्ष्म त्रिपुरजयिनः कण्ठमूलं मुरारे-
स्त्वद्यागानां मदजलमषीभाञ्जि गण्डस्थलानि,
अद्याप्युर्वीवलयतिलक, श्यामलिप्तानुलिप्ता-
न्याभान्त्येव वद धवलितं किंयशोभिस्त्वदीयैः॥

चन्द्रमा का कलङ्क शिव का कण्ठमूल, श्रीकृष्ण और तुम्हारे हाथियों के कपोल स्थल जिनमें काला मदजल

लगा हुआ है, हे पृथ्वीतलभूषण ये सब आज भी काले फिर आपके यश ने किसको श्वेत बनाया।

> वरम्बुद्धिरिवा भूः सप्तपतिरपि योजनशतम्,
> सदा पान्थः पूषा गगनपरिमाणं कथयति।
> इतिप्रायो भावाः स्फुरदवधिमुद्रामुकुलिताः
> सतां प्रज्ञोन्मेषः पुनरयमसीमा विजयते॥

पृथ्वी समुद्र से घिरी हुई है और यह समुद्र सौ योजन परिमाण का है, आकाश में सदा परिभ्रमण करने वाला यह पथिक सूर्य आकाश का भी परिमाण बतलाता ही है, इस प्रकार जितने पदार्थ हैं, उन सब की कोई न कोई अवधि है, पर सज्जनों के बुद्धिविकास की सीमा नहीं, वह असीम है।

> दातुर्वारिधरस्य मूर्धनि तडिद्गाङ्गेयशृङ्गारिता,
> वृक्षेभ्यः फलपुष्पदायिनि मधौ मत्तालिवृन्दस्तुतिः।
> भीतत्रातरि वृत्तिदातरि गिरौ पूजाकरैश्चामरैः
> सत्कारोऽयमचेतनेष्वपि विधेः किं दातृषु ज्ञातृषु॥

देनेवाले मेघ के मस्तक पर सुवर्ण शृङ्गारित विद्युत होती है, वृक्षों को फलपुष्प देनेवाले वसन्त के मतवाले भौंरों का समूह स्तुति करता है, डरे हुओं की रक्षा करनेवाला और वृत्ति देने वाला पर्वत झरना रूपी चामरों से पू[illegible] होता है। अचेतनों में भी दाता का इस प्रकार का सम्म[illegible] देखा जाता है, फिर चेतन दाता के विषय की तो बा[illegible] ही क्या।

> दाहोऽम्भः प्रसृतिंपचः प्रचयवान् बाष्पः प्रणालोचितः
> श्वासाः प्रेङ्खितदीप्रदीपलतिकाः पाण्डिम्नि मग्नं वपुः

किञ्चान्यत् कथयामि रात्रिमखिलां त्वन्मार्गवातायने
हस्तच्छत्रनिरुद्धचन्द्रमहसस्तस्याः स्थितिर्वर्तते ।

जल गर्म मालूम पड़ता है, भोजन पत्थर भर होगया है, आसूं बढ़ता जाता है, वह नालो में बहने के योग्य होगया है, श्वास उज्ज्वल दीप ज्वाला के समान अविराम निकल रहे हैं, समस्त शरीर पीला होगया है, और क्या कहूँ, समूची रात तुम्हारा मार्ग देखने के लिए वातायन पर बैठी रहती है और हाथ को छाता बनाकर अपने पर पड़नेवाली चन्द्रमा की किरणों को रोकती है, ऐसी दशा उसकी हो रही है (यह दूती का नायक से कथन है)

लीलाशुकः ।

इस कवि का कुछ परिचय नहीं मिलता । इनके विषय में केवल इतनाही कहा जा सकता है कि यह दक्षिणी थे, शिवभक्त थे और श्रीकृष्ण में इनकी अटल भक्ति थी ।

यह कोई महाकवि नहीं थे; किन्तु पण्डितराज जगन्नाथ कुलशेखर और भल्लट आदि के समान मधुर और भावपूर्ण श्लोकों के निमार्ता थे । इनके श्लोकों का संग्रह "कृष्णकर्णामृत" नाम से प्रसिद्ध है । यह तीन शतकों में विभक्त है । इनके प्रबन्ध से कुछ चुने हुए श्लोक नीचे दिये जाते हैं ।

मुकुलायमाननयनाम्बुजंविभो मुरलीनिनादमकरन्दनिर्भरम् ।
मुकुरायमाणमृदु गण्डमण्डलं मुखपंकजं मनसि मे विजृम्भताम् ॥१॥

श्रीकृष्ण का मुखकमल मेरे मन में प्रकाशित हो, जि
आँखरूपी दो कौड़ियां लगी हैं, वंसी का निनाद जिस
मकरन्द है, जिसका कोमल कपोलमण्डल दर्पण के स
चमकता है ।

मदशिखण्डिशिखण्डविभूषणं मदनमन्थरमुग्ध मुखाम्बुजम् ।
व्रजवधूनयनाञ्चलवाञ्छितं विजयतां मम वाङ्मयजीवितम् ॥२॥

मस्त मयूर के पूँछ को जिसने भूषण बनाया
विलास के कारण जिसका मुखकमल सुन्दर होगया है, ब्र
की स्त्रियों के कटाक्ष से जो ठगा गया है, उस मेरे वाङ्म
जीवित की जय हो, अर्थात् उसकी जय हो जिसका मैं वर्ण
करना चाहता हूँ ।

पुनः प्रसन्नेन मुखेन्दुतेजसा पुरोऽवतीर्णस्य कृपामहाम्बुधेः ।
तदेव लीलामुरलीरवामृतं समाधिविघ्नाय कदा नु मे भवेत् ॥३॥

कब वह कृपासागर मेरे सामने उपस्थित होगा वह कब
अपने प्रसन्न मुखचन्द्र से मुरली बजायेगा और वह मुरली
ध्वनि कब मेरी समाधि का विघ्न होगी । अर्थात् जिसके
लिए समाधि लगायी जाती है उसकी मुरली ध्वनि सुनायी
पड़े तो समाधि की आवश्यकता ही क्या है ! वह विघ्न ही
समाधि की पूर्ति है ।

परामृष्टं दूरे परिणतमुनीनां मनसयु-
दृशां वरदं शश्वनभिमुखमनोहारि मधुरम् ।
अनावृष्टं वाचामविद मुग्धानामपि कदा
हरीहृदये देवं दरदलितनीलोत्पलरुचिम् ॥४॥

मुनियों की परिषद् जिसका केवल विचार करती है, ब्रज की स्त्रियाँ जिसको अपनी आंखों से वश में करती हैं, जिसका शरीर त्रिभुवन में सुन्दर है, वचनों से जिसका वर्णन नहीं होता, उस देव को मैं कब देखूंगा, जो थोड़ा विकसित नील-कमल के समान कान्तिवाला है।

सुष्ठानमेतत्पुनरुक्तशोभमुष्णेतरांशोरुदयं मुखेन ।
तृष्णाम्बुराशिं त्रिगुणीकरोति कृष्णाद्वयं किंचन जीवितं मे ॥५॥

चन्द्रमा का उदय पुनरुक्त है; क्योंकि उसीके समान श्रीकृष्ण का मुख है, इस कारण चन्द्रोदय को अपने मुख की शोभा से अनर्थक बनानेवाला और जिसके दर्शन से तृष्णा (अतृप्ति) का समुद्र बढ़ जाता है, वह एक कृष्ण ही मेरा जीवन है।

शुश्रूषसे यदि वचः शृणु मामकीनं पूर्वैरपूर्वकविभिर्न कटाक्षितं यत् ।
नीराजनक्रमधुरं भवदाननेन्दोर्निर्व्याजमर्हति चिराय शशिप्रदीपः ॥६॥

यदि कुछ सुनना चाहते हो तो मेरी बात सुनो, जिसे पहले के महाकवियों ने भी नहीं कहा, जो एकदम नयी है। वह यह है—यह चन्द्रमारूपी दीपक आपके मुखचन्द्र की आर्ती के ही योग्य है।

यां दृष्ट्वा यमुनां पिपासुरनिशं व्यूहो गवां गाहते ।
विद्युत्वानिति नीलकण्ठनिवहो द्रष्टुं समुत्कण्ठते ॥
उत्तंसाय तमालपल्लवमिति च्छिन्दन्ति यां गोपिकाः ।
कान्तिः कालियशासनस्य वपुषः सा पावनी पातु वः ॥७॥

प्यासे गौओं का समूह जिसको देखकर जमुना में पानी पीने जाता है। मेघ है, यह समझकर मयूर जिसको देखने के

लिए उत्कण्ठित होते हैं, यह तमाल का पत्र है यह जा
गोपिकाएं जिसको तोड़ना चाहती हैं, उस कालियद
करनेवाले श्रीकृष्ण के शरीर की पवित्र कान्ति तुम्हा
रक्षा करे ।

अयि मुरलि मुकुन्दस्मेरवक्त्रारविन्दश्वसनमधुरसज्ञे त्वां प्रणम्याद्य याचे।
अधरमणिसमीपं प्राप्तवत्यां भवत्यां कथय रहसि कर्णे मद्दशां नन्द

हे मुरलि, हे कृष्ण के हंसते मुखकमल के श्वास का
रस जानने वाली, तुमको प्रणाम कर मैं यह प्रार्थना क
हूँ। जब तुम नन्दपुत्र के मुंह के समीप जाना तो एकान्त
उनके कानों में मेरी दशा अवश्य कहना ।

अमुनाखिलगोपगोपनार्थं यमुनारोधसि नन्दनन्दनेन ।
दमुनावनतंभवः परे नः किमुनासौ शरणार्थिनां शरण्यः ॥९

इस नन्दनन्दन ने यमुना के तीर पर सब गोपों की रक्षा
करने के लिए कालियदह का मथन किया, क्या वह शरण
चाहने वालों को शरण न देगा ।

वृन्दावनद्रुमतलेषु गवां गणेषु वेदावसानसमयेषु च दृश्यते यत् ।
तद्वेणुनादनपरं शिखिपिच्छचूड़ं ब्रह्म स्मरामि कमलेक्षणमभ्रनीलम्॥१०॥

वृन्दावन के वृक्षों की छाया में, गौओं के समूह में, वेदों
की समाप्ति में, जो दिखायी पड़ता है, उस वंशी बजानेवाले
मयूर पुच्छ धारण करने वाले कमल के समान आंखों
वाला और मेघ के समान नीले ब्रह्म का मैं स्मरण
करता हूँ।

देवकीतनयपूजनपूतः, पूतनारि-चरणोदक धूतः ।
यद्यहं स्मृतधनञ्जयसूतः, किं करिष्यति स मे यमदूतः ॥११॥

यदि हमने अपने को देवकी तनय के पूजन से पवित्र किया है, यदि हम पूजनादि के चरणोदक से प्रक्षालित हुए हैं, यदि हमने अर्जुन के सारथि का स्मरण किया है तो वह यमदूत हमारा क्या कर सकता है।

आताम्रपाणिकमलं प्रणयि प्रतोदमालोलहारमणिकुण्डलहेमसूत्रम् ।
आविःश्रमाम्बुकणमम्बुदनीलमव्याद्याद्यं धनञ्जयरथाभरणंमहोनः ॥१२॥

जिसका हस्तकमल लाल है, क्रीड़ा जिसको प्रिय है, हार तथा कुण्डल जिसके हिल रहे हैं, परिश्रम से जिसके पसीने निकल रहे हैं जो मेघ के समान नीलवर्ण का है वह अर्जुन के रथ का भूषण दिव्यप्रभा हम लोगों की रक्षा करे।

कालिन्दीपुलिनादरेपुमुसली यावद्गतः खेलितुं
तावत्कर्बुरिकापयः पिब हरे वर्धिष्यते ते शिखा ॥
इत्थं बालतया प्रतारणपराः श्रुत्वा यशोदागिरः
पायाद्वः स्वशिखां स्पृशन्प्रमुदितः क्षीरेऽर्धपीते हरिः ॥१३॥

बलदेव जब तक यमुना के तीर खेलने गया है तब तक हे कृष्ण कलोर का दूध पीलो, तुम्हारी चोटी बढ़ेगी। कृष्ण बालक था इसलिए उसे ठगने के लिए यशोदा ने ये बातें कहीं। कृष्ण आधा दूध पीने पर अपनी चुटिया देखने लगा, वह कृष्ण तुम्हारी रक्षा करे।

लावण्यवीचीललिताङ्गभूषं भूषापदारोपितपुण्यबर्हाम् ।
कारुण्यधाराच्छकटाक्षमालां बालं भजेवल्लववंशलक्ष्मीम् ॥१४॥

लावण्य परम्परा ही जिसके शरीर का सुन्दर भूषण है जिसने भूषण के स्थान पर पवित्र बर्ह (मयूर पुच्छ) धारण किया है, जिसकी चितवन करुणा की सुन्दर धारा है, उस गोपकुल की लक्ष्मी, बाले को मैं भजता हूं।

प्रातःस्मरामि दधिघोषविधूतनिद्रं
निद्रावसानरमणीयमुखारविन्दम् ॥
हृद्यानवद्यवपुषं नवनीतचोर-
मुन्मीलिताब्जनयनं नयनाभिरामम् ॥४॥

प्रातःकाल दही मथने की आवाज़ से जिसकी निद्रा दूर हो गयी है, निद्रा खुल जाने से जिसका मुखकमल सुन्दर होगया है जिसका शरीर सुन्दर और मनोहर है जिसकी कमलरूपी आंखें खुल गयी हैं उस नयनाभिराम को मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूं।

वररुचि

राजा विक्रमादित्य के समय में एक वररुचि का पता मिलता है। पत्रकौमुदी नाम की एक पुस्तक वररुचि की बनायी है, जिसमें पत्र लिखने की विधि बतलायी गयी है। उस पुस्तक के प्रारम्भ में लिखा है।

विक्रमादित्यभूपस्य कीर्तिसिद्धेर्निदेशतः
श्रीमान् वररुचिर्धीमांस्तनोति पत्रकौमुदीम्,
राज्ञां मन्त्रिप्रवीराणां पण्डितानां तथैव च,
गुरूणां स्वामि मर्त्यानां तथैव पितृ पुत्रयोः
सख्यानिभृत्यशत्रूणां तथैवान्यविशेषताम्,
एतेषामपि सर्वेषां पत्रलेखादि कथ्यते।

इस पुस्तक में पत्र लिखने का प्रकार बतलाया गया है, किसको किस प्रकार का पत्र लिखना चाहिए आदि बातें इस पुस्तक में बतलायी गयी हैं। इसके बाद का नाम सुश्रु

था जिन्होंने वासवदत्ता नाम का गद्यकाव्य लिखा है। सुबन्धु ने वैद्यशतक नाम का एक और ग्रन्थ बनाया है।

व्याकरणवार्तिककार कात्यायन को भी वररुचि कहते हैं, पर वे इन वररुचि से भिन्न हैं। उनका समय लगभग ई० सदी के चार सौ वर्ष पूर्व माना जाता है, जिस समय महानन्द का राज्य था। यह बात भविष्य पुराण में लिखी है। पतञ्जलि मुनि के पहले कात्यायन हुए थे और पतञ्जलि का समय ई० सदी से १५० सौ वर्ष पूर्व है। इसलिए वररुचि का पूर्वोक्त समय ठीक जान पड़ता है।

प्राकृतप्रकाश नामक एक प्राकृत व्याकरण के कर्ता वररुचि का भी पता मिलता है। बहुत संभव है कि ये वररुचि विक्रमादित्य के समय वाले हों और पालिव्याकरण के कर्ता कात्यायन हों, इसप्रकार वररुचि नामक दो पंडितों का पता मिलता है, कौन ग्रंथ किस का बनया है, इसके निश्चय करने का इस समय कोई उपाय नहीं।

सूक्तिमुक्तावाली में महाकवि राजशेखर ने इनके लिए एक श्लोक कहा है—

> यथार्थता कथं नाम्नि माभूद्वररुचेरिह।
> व्यधत्त कण्ठाभरणं यः सदारोहणप्रियः॥

इस श्लोक से मालूम होता है कि कण्ठाभरण नामक एक और ग्रन्थ इन्होंने बनाया था।

> दानोपभोगवन्ध्या या सुहृद्भिर्या न भुज्यते।
> पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीरलक्ष्मीः कतमा भवेत्॥१॥

जो दान और उपभोग के काम में न आवे, जिसका उप-भोग मित्रगण भी न कर सकें, वह यदि पुरुषों के लिए लक्ष्मी है तो अलक्ष्मी कौन कही जायगी।

पाण्डुच्छायं क्षामं वक्त्रं कमलमुखि ललितमलकं करे स्थितमान
शून्यालोका दीना दृष्टिः शिथिलमभिपतितरशना तनुस्तनुतां गता
ध्यानैकाग्रामन्दा बुद्धिर्मदजननि रहसि रमसे करोषि न सत्कथां
को नामायं रम्यो व्याधिस्तव सुतनु कथय किमिदं न सत्त्वमि नातु

हे कमलमुखि, तुम्हारा पीला मुख दुर्बल हो गया, ह केशपाशवाला मुख तुमने हाथ पर रखा है, दुःखी नेत्र मानों देखने की शक्ति जाती रही, शरीर दुर्बल हो गय जिससे करधनी मस्तक की ओर चली गयी है। हे मदजन तुम्हारी प्रखर बुद्धि सदा ध्यान में लगी रहती है, अकेले रहना तुम्हें पसन्द है, तुम बातचीत तक नहीं करत सुतनु, तुम्हारा यह कौन सा विलक्षण रोग है, कहो यह क हैं, जिससे तुम आतुर नहीं हो।

हस्ते कपोलममलं पथि चक्षुर्मनस्त्वयि।
व्यस्तमास्ते चिरं तस्या मानस्यावसरः कुतः ॥३॥

सुन्दर कपोल हाथ पर है. आँखें मार्ग की ओर । हुई है और मन सदा तुममें लगा हुआ है, ऐसी दश मान करने का अवसर कहां है।

बहुनात्र किमुक्तेन दूति मत्कार्यसिद्धये।
स्वमांसान्यपि दत्तानि वस्तुष्वन्येषु का कथा ॥४॥

हे दूति, अधिक क्या कहा जाय, मेरे कार्य की सिि के लिए तुमने अपने मांस तक दे दिये, अन्य वस्तुओं की त बात ही क्या?

इन्द्रगोपैर्बभौ भूमिर्निचितेव प्रवासिनाम् ।
अनङ्गवाणैर्हृद्भेदस्त्रुतलोहितविन्दुभिः ॥५॥

इन्द्रगोप (इस नाम का एक कीड़ा) भूमि में
समय कामदेव के वाणों से छिदे प्रवासियों के हृद
हुए रुधिरविन्दु मानो भूमि पर फैले हैं ऐसा माल्

सान्द्रनीहारसंवीततोयगर्भगुरूदरा ।
सततस्तनिताभाली निपसादाद्रिसानुषु ॥६॥

सघन कुहरे से ढंकी हुई, गर्भ में जल रह
भारी पेटवाली और सदा बोलनेवाली मेघों की
के शिखर पर बैठी ।

व्योम्नि नीलाम्बुदच्छन्ने गुरुवृष्टिभयादिव ।
जगाह ग्रीष्मसंतापो हृदयानि वियोगिनाम् ॥

आकाश में काले काले बादल छा गये, बड़ी
होगी, इसी भय से ग्रीष्म ऋतु का सन्ताप
हृदय में चला गया अर्थात् वर्षाकाल के आग
वियोगियों का हृदय जलने लगा ।

आलोहितमाकलयन्कन्दलमुत्कम्पितं मधुकरेण
संस्मरति पथिषु पथिको दयिताङ्गुलितर्जनाल

थोड़ा लाल और भ्रमर के द्वारा कँपाया हुआ
पथिकों ने मार्ग में देखे और उससे उन्हें अपनी
उन अंगुलियों का स्मरण हुआ, जो कि तर्ज
समय भी सुन्दर मालूम पड़ती हैं ।

प्रसादयन्त्या शिरसा चन्द्रमन्तर्मलीमसम् ।
सीमतापः कृतो भास्वानुपेवाक्षोहितयु तिः ॥९॥

कमलिनी सिर नया कर भीतर से काले चन्द्रमा को म रही है, यह देखकर सूर्य क्रोध से लाल हो गया और उस कड़ा ताप या क्रोध किया ।

> कलमं फलभारातिगुरुमूर्धतया शनैः ।
> विननामान्तिकोद्भूतं समाघ्रातुमिवोत्पलम् ॥१०॥

कलम नामक धान का मस्तक फल के भार से बहुत भारी हो गया था इस कारण वह नत गया मालूम होता था मानो अपने पास ही फूले हुए कमल को सूंघने के । उसने थोड़ासा सिर नयाया है ।

> मयैवाजन्मसम्बृद्धः संपन्न क्व नु यास्यति ।
> शालेर्वियोगभीत्येव क्षेत्राम्भः कृशतां ययौ ॥११॥

इन्हीं ने उसे जन्म दिया और बढ़ाया, अब तयार होकर न मालूम कहां जायगा, मानो धान के वियोग होने के भय से ही खेतों का जल सूखने लगा ।

> मन्युनेव कृशां ग्रीष्मे वर्षासु रुदितामिव ।
> शरत्प्रसादमनयच्छशाङ्कस्य निशाङ्गनाम् ॥१२॥

मानों क्रोध से ग्रीष्म ऋतु में चन्द्रमा की रात्रि नाम की जो स्त्री कृश होगयी थी और वर्षाकाल में जो रोती थी, उसे शरद्‌ऋतु ने प्रसन्न किया, अर्थात् शरदकाल के आने से रात्रि सुन्दर हुई ।

> उपकारिणि विशीर्णे शनैः केदारवारिणि ।
> सानुक्रोशतया शालिरभूत्पाण्डुरवाङ्मुखः ॥१३॥

अपने उपकार करने वाले खेत के जल जब धीरे धीरे सूखने लगे, तब बड़े दुःख से धान पीला हो गया और उसने अपना मुंह नीचा कर दिया ।

यत्रयत्राभिजायेयं यदि दुःखाकुले कुले ।
तत्र तत्राक्षयमेऽस्तु माधवाराधनं धनम् ॥१४॥

जहां जहां मैं उत्पन्न होऊं, चाहे दुःख से व्याकुल कुल में ही मेरा जन्म क्यों न हो, वहीं वहीं मेरा माधव का आराधन रूपी धन सदा बना रहे, उसका नाश न हो ।

वाल्मीकि (आदिकवि)

ये आदिकवि कहे जाते हैं । इन्होंने ही प्रसिद्ध रामायण काव्य बनाया है, लौकिक छन्दों में इसी काव्य की रचना पहले पहल हुई है, इस कारण यह काव्य भी आदिकाव्य कहा जाता है ।

रामचन्द्र लङ्का विजय करके अयोध्या चले आये, राज्य-शासन करने लगे । किसी लोकापवाद के भय से उन्होंने लक्ष्मण को आज्ञा दी कि सीता को कहीं जङ्गल में ले जाकर छोड़ आओ । लक्ष्मण ने सीता को तमसा नदी के उस पार जाकर छोड़ दिया । उसी समय वाल्मीकि ऋषि से सीता की भेंट हुई । उसी समय वाल्मीकि ऋषि की कविता शक्ति जाग उठी और वे वाल्मीकीय रामायण बनाने लगे; क्योंकि रामचन्द्र के आदर्श पुरुष होने की बात वे पहले नारद से सुन चुके थे। रामायण के बनाने में ऋषि के १०, १२ वर्ष लगे । जब रामचन्द्र ने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया था, उस समय राम-चन्द्र के पुत्र लव और कुश ने वाल्मीकीय रामायण का गान किया था । लव कुश को शस्त्र और शास्त्र विद्या की शिक्षा

रामचन्द्र के विना हमलोगों को लौटा देखकर
अयोध्यानगरी सभी बाल और वृद्धों के साथ आ
हो जायगी ।

निर्यातास्तेन वीरेण सह नित्यं महात्मना ।
विहीनास्तेन च पुनः कथं द्रक्ष्याम तां पुरीम्

हम लोग उस महात्मा के साथ नगरी से निक
आये हैं, पर अब उस महात्मा के बिना हम लोग उस
को कैसे देख सकेंगे ।

इतीव बहुधा वाचो बाहुमुद्यम्य ते जनाः ।
विलपन्तिस्म दुःखार्ताह्विवत्सा इवाग्रगाः ॥ १२ ॥

इसी प्रकार वे अयोध्यावासी हाथ उठा कर विल
करते थे, वे उस गौ के समान दुःखी थे, जो अपने बछड़े
बिछुड़ गयी हो ।

ततो मार्गानुसारेण गत्वा किंचितः क्षणम् ।
मार्गनाशाद्विषादेन महता समभिप्लुता ॥ १३ ॥

कुछ दूर तक तो वे ठीक रास्ते से लौटे, पर आगे जाकर
वे मार्ग भूल गये और इससे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ ।

रथमार्गानुसारेण न्यवर्तन्त मनस्विनः ।
किमिदं किं करिष्यामो दैवेनोपहता इति ॥१४॥

जिस मार्ग से रथ लौटा था, उसी मार्ग से वे भी लौटे
यह क्या है अभागी हमलोग क्या कर रहे हैं, यह बात उनकी
समझ में न आयी ।

तदा यथागतेनैव मार्गेण क्लान्तचेतसः ।
अयोध्यामगमन्सर्वे पुरीं व्यथितसज्जनाम्

उनका चित्त थक गया था, वे उसी मार्ग से लौटे, जिस मार्ग से आये थे, वे उस नगरी में लौट आये, जहाँ के वासी दुःखी थे।

आलोक्य नगरीं तां च क्षयव्याकुलमानसाः।
आवर्तयन्त तेऽश्रूणि नयनैः शोकपीडितैः ॥१६॥

अयोध्या नगरी की दशा देखकर वे बहुत व्याकुल हुए, शोक पीड़ित आँखों से वे पुनः आँसू बहाने लगे।

एषा रामेण नगरी रहिता नातिशोभते।
आपगा गरुडेनेव ह्रदादुद्धृतपन्नगा ॥१७॥

राम के बिना आज इस नगरी की शोभा जाती रही, जिस प्रकार गरुड़ के द्वारा सर्प के उठा ले जाने के पश्चात् किसी तालाब की शोभा नष्ट हो जाती है।

चन्द्रहीनमिवाकाशं तोयहीनमिवार्णवम्।
अपश्यन्निहतानन्दं नगरं ते विचेतसः ॥१८॥

चन्द्रमा के बिना आकाश की, जल के बिना समुद्र की जैसे शोभा नष्ट हो जाती है, उसी तरह राम के बिना आनन्द-शून्य शोभाहीन उस नगर को उन लोगों ने देखा।

ते तानि वेश्मानि महाधनानि दुःखेन दुःखोपहता विशन्तः।
नैव प्रजज्ञुः स्वजनं परं वा निरीक्षमाणाः प्रविनष्टहर्षाः ॥१९॥

वे पुरवासी दुःख से पीड़ित थे, वे बड़े दुःख से अपने अपने बड़े बड़े मकानों में गए। उन लोगों ने स्वजन या परिजन की ओर देखकर भी उधर की ओर नहीं गये, क्योंकि उनमें उत्साह नहीं था, हर्ष नहीं था।

तेषामेवंविषण्णानां पीडितानामतीव च ।
बाष्पविप्लुतनेत्राणां सशोकानां मुमूर्षया ॥ २० ॥

इस प्रकार वे दुःखी थे, पीड़ित थे, उनकी आंखों से आंसू बह रहे थे, शोक से वे मर रहे थे ।

अभिगम्य निवृत्तानां रामं नगरवासिनाम् ।
उद्गतानीव सत्वानि बभूवुरमनस्विनाम् ॥ २१ ॥

रामचन्द्र को पहुँचा कर लौटे हुए नगरवासी ऐसे मालूम पड़ते थे, मानों उनके प्राण ही निकल गये हों ।

स्वं स्वं निलयमागम्य पुत्रदारैः समावृताः ।
अश्रूणि मुमुचुः सर्वे बाष्पेण पिहितानना: ॥ २२ ॥

अपने अपने घर आकर स्त्री पुत्र आदि के साथ वे रोने लगे, उनका मुखमण्डल आंसू से भींग गया ।

न चाहृष्यन्न चामोदन्वणिजो न प्रसारयन् ।
न चाशोभन्त पण्यानि नापचन्गृहमेधिनः ॥ २३ ॥

कोई हर्षित नहीं था, कोई प्रसन्न नहीं था, बनियों ने दूकानें नहीं खोलीं बाजार सूना मालूम पड़ता था और गृहस्थों के घर में चूल्हे नहीं जलाये गये ।

नष्टं दृष्ट्वा नाभ्यनन्दन्विपुलं वा धनागमम् ।
पुत्रं प्रथमजं लब्ध्वा जननी नाभ्यनन्दत ॥ २४ ॥

किसी भूली हुई चीज के मिलने पर भी कोई प्रसन्न न हुआ, अधिक धन मिलने का भी किसी को हर्ष नहीं हुआ और पहले पहल पुत्रप्रसव करने का भी आनन्द माता को नहीं हुआ ।

गृहे गृहे रुदन्त्यश्च भर्तारं गृहमागतम् ।
व्यगर्हयन्त दुःखार्ता वाग्भिस्तोत्रैरिव द्विपान् ॥२५॥

प्रत्येक घर में रोती हुई स्त्रियां घर में आये हुए पति को दुःख के कारण वचनों से कोसती थीं, जिस प्रकार अङ्कुश से हाथी कोसा जाता है।

किं नु तेषां गृहैः कार्यं किं दारैः किं धनेन वा ।
पुत्रैर्वापि सुखैर्वापि ये न पश्यन्ति राघवम् ॥२६॥

उनको घर से क्या करना है, स्त्रियों से भी क्या प्रयोजन, पुत्र या सुख भी उनके किस काम के, जो रामचन्द्र को नहीं देख पाते।

एकः सत्पुरुषो लोके लक्ष्मणः सह सीतया ।
योऽनुगच्छति काकुत्स्थं रामं परिचरन्वने ॥२७॥

संसार में एक लक्ष्मण ही सत्पुरुष हैं और सीता, जो रामचन्द्र की सेवा करते हुए वन में उनका अनुगमन करते हैं।

आपगाः कृतपुण्यास्ताः पद्मिन्यश्च सरांसि च ।
येषु पास्यति काकुत्स्थो विगाह्य सलिलं शुचि ॥२८॥

ये नदियां पुण्यवती हैं, ये कमलिनियां, ये तालाब पुण्यवान् हैं, जिनका जल रामचन्द्र पायेंगे।

शोभयिष्यन्ति काकुत्स्थमटव्यो रम्यकाननाः ।
आपगाश्च महानूपाः सानुमन्तश्च पर्वताः ॥२९॥

ये अटवी जिनमें सुन्दरवन हैं, ये नदियां ये पर्वत रामचन्द्र को प्रसन्न करेंगे।

काननं वापि शैलं वा यं रामोऽनुगमिष्यति ।
प्रियातिथिमिव प्राप्तं नैनं शक्ष्यन्त्यनर्चितुम् ॥३०॥

वन या पर्वत जिस किसीके पास रामचन्द्र जायँगे, प्रिय अतिथि के समान विना उनकी पूजा किये नहीं सकता ।

विचित्रकुसुमापीडा बहुमञ्जरिधारिणः ।
राघवं दर्शयिष्यन्ति नगा भ्रमरशालिनः ॥३१॥

पुष्पों का विचित्र शिरोभूषण और अनेक प्रकार मञ्जरी धारण करनेवाले वे वृक्ष अपने को रामचन्द्र को दिखायँगे जिन पर भौंरे शोभित हो रहे हैं ।

अकाले चापि मुख्यानि पुष्पाणि च फलानि च ।
दर्शयिष्यन्त्यनुक्रोशाद्गिरयो राममागतम् ॥३२॥

पर्वत वृक्षों के द्वारा रामचन्द्र का स्वागत करेंगे, अनऋतु का पुष्प और फल आये हुए रामचन्द्र को समर्पित करेंगे ।

प्रस्रविष्यन्ति तोयानि विमलानि महीधराः ।
विदर्शयन्तो विविधान्भूयश्चित्रांश्च निर्झरान् ॥३३॥

रामचन्द्र के लिए पर्वत विमल जल बहावेंगे और अनेक अद्भुत झरने उनको दिखायेंगे ।

पादपाः पर्वताग्रेषु रमयिष्यन्ति राघवम् ।
यत्र रामो भयं नात्र नास्ति तत्र पराभवः ॥३४॥

वृक्ष पर्वतों पर रामचन्द्र की प्रसन्नता सम्पादन करेंगे । जहां राम हैं वहां भय नहीं और वहां पराजय भी नहीं ।

स हि शूरो महाबाहुः पुत्रो दशरथस्य च ।
पुरा भवति नोऽदूरादनुगच्छाम राघवम् ॥३५॥

यह महाबाहु और शूर है, वह दशरथ का पुत्र है। वह हम लोगों से दूर चला जायगा, हम लोग उसका अनुगमन करें।

पादच्छाया सुखमनु रतास्तस्य महात्मनः ।
स हि नाथो जनस्यास्य स गतिः स परायणम् ॥३५॥

ऐसे महात्मा स्वामी के चरणों का आश्रय बड़ा सुख है, वे ही हमारे स्वामी हैं, वे ही गति हैं और वे ही हम लोगों की प्रतिष्ठा हैं।

वयं परिचरिष्यामः सीतां यूयं च राघवम् ।
इति पौरस्त्रियो भर्तॄन्दुःखार्तास्तत्तदब्रुवन् ॥३६॥

हम लोग सीता की सेवा करेंगी और आप लोग राम की, इस प्रकार नगर की स्त्रियां दुःखित होकर अपने अपने पति से कहने लगीं।

युष्माकं राघवोऽरण्ये योगक्षेमं विधास्यति ।
सीता नारीजनस्यास्य योगक्षेमं करिष्यति ॥३७॥

वन में तुम लोगों का योगक्षेम रामचन्द्र करेंगे और स्त्रियों का योगक्षेम सीता जी करेंगी।

कोऽन्वेनाप्रतीतेन सोत्कण्ठितजनेन च ।
संप्रीयेतामनोज्ञेन वासेन हृतचेतसा ॥३८॥

उस वास को कौन चाहेगा, जिसमें कोई सुख नहीं, जहां मनुष्य उत्कण्ठित हों जो असुन्दर और चित्त को नष्ट करने वाला हो।

कैकेय्या यदि चेद्राज्यं स्यादधर्म्यमनाथवत् ।
नहि नो जीवितेनार्थः कुतः पुत्रैःकुतो धनैः ॥३९॥

यदि यह राज्य कैकेयी का हो तो यहां अधर्म का राज्य होगा, और प्रजा अनाथ के समान हो जायगी, वैसी दशा में हम लोगों को जीना भी उचित नहीं है, फिर पुत्र और धन आदि लेकर क्या होगा।

यया पुत्रश्च भर्ता च त्यक्तावैश्वर्यकारणात्।
कं सा परिहरेदन्यं कैकेयी कुलपांसनी ॥४०॥

जिसने पुत्र और पति को ऐश्वर्य के लिए छोड़ दिया, वह कुलनाशिनी कैकेयी और किसको छोड़ सकती है।

कैकेय्या न वयं राज्ये भृतका हि वसेमहि।
जीवन्त्या जातु जीवन्त्यः पुत्रैरपि शपामहे ॥४१॥

कैकेयी के जीवनकाल में उसके द्वारा पोषित होने पर भी अपने जीवितकाल में उसके राज्य में हम लोग रहना नहीं चाहतीं, इस बात के लिए हम लोग अपने पुत्र की शपथ करती हैं।

या पुत्रं पार्थिवेन्द्रस्य प्रवासयति निर्घृणा।
कस्तां प्राप्य सुखं जीवेदधर्म्यां दुष्टचारिणीम् ॥४२॥

जिस निर्दयी ने महाराजा के पुत्र को वन में भेज दिया, उस दुष्टा और अधर्मी के आश्रय में कौन सुखपूर्वक जी सकता है।

उपद्रुतमिदं सर्वमनालम्बमनायकम्।
कैकेय्यास्तु कृते सर्वं विनाशमुपयास्यति ॥४३॥

इस राज्य में अब उपद्रव होंगे, यज्ञ न होंगे, इसका कोई स्वामी भी नहीं है, इस राज्य का अब नाश होगा और इसका कारण कैकेयी ही है।

नहि प्रव्रजिते रामे जीविष्यति महीपतिः ।
मृते दशरथे व्यक्तं विलोपस्तदनन्तरम् ॥४४॥

रामचन्द्र के वन जाने पर राजा जी नहीं सकते और इनके मरने पर राज्य का नाश निश्चित है ।

ते विषं पिबतालोड्य क्षीण पुण्याः सुदुःखिताः ।
राघवं वानुगच्छध्वमश्रु तिं वापि गच्छत ॥४५॥

अब हम स्त्री पुरुषों के पुण्य क्षीण होगये हैं, हमारे दुःखों का ठिकाना नहीं, अब हम लोग विष घोलकर पीलें, अथवा रामचन्द्र का अनुगमन करें ।

मिथ्या प्रव्राजितो रामः सभार्यः सहलक्ष्मणः ।
भरते संनिबद्धाः स्म सौनिके पशवो यथा ॥४६॥

व्यर्थ ही लक्ष्मण और सीता के साथ रामचन्द्र वन में भेज दिये गये, अब हम लोग भरत के हवाले किये गये, जैसे पशु कसाई को सौंप दिये जाते हैं ।

पूर्णचन्द्राननः श्यामो गूढजत्रुररिंदमः ।
आजानुबाहुः पद्माक्षो रामो लक्ष्मणपूर्वजः ॥४७॥

रामचन्द्र का मुख पूर्णचन्द्र के समान है, वे श्याम हैं, शत्रुओं के दमन करने वाले और गूढ़जत्रु हैं आजानुबाहु और पद्माक्ष हैं, वे लक्ष्मण के बड़े भाई राम वन में घूमकर उसे सुशोभित करेंगे ।

पूर्वाभिभाषी मधुरः सत्यवादी महाबलः
सौम्यश्च सर्वलोकस्य चन्द्रवत्प्रियदर्शनः ॥४८॥

वे पहले ही बोलनेवाले, सुन्दर, सत्यवादी, महाबल, सौम्य और चन्द्रमा के समान सबके प्रिय हैं, वे घूमकर वन की शोभा बढ़ायेंगे।

नूनं पुरुषशार्दूलो मत्तमातङ्गविक्रमः
शोभयिष्यत्यरण्यानि विचरन्स महारथः ॥४९॥

वे पुरुषसिंह मतवाले हाथी के समान पराक्रमवाले वन में घूमकर अवश्य ही उसकी शोभा बढ़ायेंगे।

तास्तथा विलपन्त्यस्तु नगरे नागरस्त्रियः
चुक्रुशुर्भृशसंतप्ता मृत्योरिव भयागमे ॥५०॥

मृत्यु के आगमन के भय से जिस प्रकार मनुष्य [illegible] होकर रोता है, उसी प्रकार वे नगर की स्त्रियां दुःख से पीड़ित होकर रोती थीं।

इत्येवं विलपन्तीनां स्त्रीणां वेश्मसु राघवम्
जगामास्तं दिनकरो रजनी चाभ्यवर्तत ॥५१॥

इस प्रकार रामचन्द्र के लिए विलाप करनेवाली उन स्त्रियों का दुःख देखकर सूर्य अस्ताचल को चला गया और रात आगयी।

नष्टज्वलनसंतापा प्रशान्ताध्यायसत्कथा
तिमिरेणानुलिप्तेव तदा सा नगरी बभौ ॥५२॥

होम आदि के लिए आग नहीं जलायी गयी, अध्ययन तथा सत्कथा बन्द रही, उस समय वह नगरी अन्धकार से लीपी गयी के समान हो गयी थी।

उपशान्तवणिक्पण्या नष्टहर्षा निराश्रया
अयोध्या नगरी चासीन्नष्टतारमिवाम्बरम् ॥५३॥

वनियों की दूकानें बन्द थीं, आनन्द चला गया था, आश्रय नष्ट हो गया था, अयोध्यानगरी ताराहीन आकाश के समान होगयी थी।

> तदा स्त्रियो रामनिमित्तमातुरा यथा मृते भ्रातरि वा विवासिते ।
> विलप्य दीना रुरुदुर्विचेतसः सुतैर्हि तासामधिकोऽपि सोऽभवत् ॥५४॥

उस समय स्त्रियां राम के लिए आतुर होकर मानो उनका पुत्र या पति ही निर्वासित किया गया हो - वे दुःखित होकर विलाप करने लगीं, रोने लगीं; क्योंकि रामचन्द्र उनके पुत्र से भी बढ़कर उन्हें प्रिय थे।

> प्रशान्तगीतोत्सवनृत्यवादना विभ्रष्टहर्षा पिहितापणोदया ।
> तदा ह्ययोध्यानगरी बभूव सा महार्णवः संक्षपितोदको यथा ॥५५॥

गीत उत्सव नृत्य और बाजा बन्द हो गये थे, हर्ष दूर हो गया था, दूकानें बन्द थीं, उस समय अयोध्यानगरी अल्प जल समुद्र के समान हो गई थी।

वासुदेव।

इन्होंने युधिष्ठिर विजय नामक एक काव्य लिखा है, यह काव्य कठिन है, उसके प्रत्येक श्लोक में यमक है। कविता की दृष्टि से न सही शब्द चमत्कार की दृष्टि से यह काव्य श्रेष्ठ है। ग्रन्थकार ने अपना परिचय लिखा है जिससे मालूम होता है कि ये राजा कुलशेखर के समय में वर्तमान थे और इनके गुरु का नाम भारत गुरु था।

> तस्य च वसुधामवतः काले कुलशेखरस्य वसुधामवतः
> वेदानामध्यायी भारतगुरुरभवद्द्विजानामध्यायी,

ममजनि कश्चित्तस्य प्रवणः शिष्योऽभवत् कश्चित्तस्य,
काव्यनामालोके पद्मनसो वासुदेवनामा लोके ।

वासुदेव का समय निर्णय करने के लिए अब राजा कुलशेखर का समय जानना चाहिए । एक राजा कुलशेखर सिंहल द्वीप से निकाले गये थे और उन्होंने भारत में आकर आश्रय ग्रहण किया था, उनका समय बारहवीं सदी है, यदि वासुदेव के कुलशेखर ये ही हैं तो इनका भी १२ वीं सदी मानना चाहिए ।

वासुदेव विजय नामक एक काव्य भी वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध है, ये दोनों वासुदेव एक हैं या दो इसका निर्णय करना सहज नहीं है ।

अथ रभसेनानीकं व्यूह्य सरित्पतिमुना सवेगानीकम् ॥
कुरवः शौर्यमिरणारम्भं द्वापशक्रशौर्यमिरणाः ॥ १ ॥

इसके पश्चात् भीष्म ने सेनापति के सहित सेना के व्यूह बनाकर सजाया. और कुरुगण युद्ध के लिए तयार हुए, उनका यह युद्ध इन्द्र और उपेन्द्र के रण के समान था ।

तानभियुद्धाय ततः सरोषमर्षणमभ्युद्गतानन्तः ।
मरुद्भुजकाली कुन्तीपुत्रबलोघः शरीरमाली कुम्भी ॥ २ ॥

युधिष्ठिर की सेना ने जिसके सेनापति धृष्टद्युम्न थे और जिसमें वीरों का शब्द होरहा था कौरवों पर आक्रमण किया । युधिष्ठिर की सेना के लोग शत्रुओं के प्रति कठोर शब्दों का व्यवहार कर रहे थे, बाण तूणीर और आलेपादि उस सेना में थे ।

आनृभिरेव कुरुनृविभीषणो राजते द्रोण कुरुणु ।
कौन्तेयाविभाताभिरधार्मिसमना ॥ [illegible] ॥ ३ ॥

जिस प्रकार विभीषण रामचन्द्र के आश्रय में गया था, उसी प्रकार भाइयों से युद्ध करने की इच्छा रखनेवाले युयुत्सु ने (दुर्योधन का भाई) शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले पाण्डवों के पक्ष का आश्रय लिया, पर डर से नहीं किन्तु नीति से।

दृष्ट्वा मान्यानमितान्पार्थो योद्धुं कुरूनमान्यानमितान् ॥
असुखचापं करतः कृष्णेनाऽश्वामिनः स चापहृतः ॥ ४ ॥

अर्जुन ने सवारी पर बैठे हुए पूज्य अनेक कौरवों को युद्ध के लिए उपस्थित देखकर हाथ से धनुष छोड़ दिया, तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया कि तुम यह पाप नहीं कर रहे हो।

युद्धारम्भेऽरीणां नादः समभुत्पदम्बरं भेरीणाम् ।
द्रवतां वै धुर्याणां खुरजन्म रजोऽपि रहितवैधुर्याणाम् ॥ ५ ॥

युद्ध के आरम्भ के समय शत्रुओं की भेरी का नाद हुआ जो आकाश तक फैल गया और धोर घोड़े आदि के चलने से उड़ी हुई धूलि भी आकाश में फैल गयी।

अनितारवे शङ्खे चारणचक्राणि चक्रुराबेराशे ।
विवमावभानरजः समर्दः सर्वदिशु बभ्राम रजः ॥ ६ ॥

युद्ध की घोषणा के लिए जब शङ्ख बजा, तब चारणों (देवयोनि) का समूह आकाश में चला गया, आकाश में देवताओं की भीड़ पकड़ी होगया, और दिशाओं में धूलि फैल गयी।

मुहुरुरुपणवानामारव इव रवनेन पदशायान म् ।
अनुपतदन्दिव्यजनः समागमद् दूरमाहवं दिव्यजनः ॥ ७ ॥

बड़े लोगों के द्वारा बजाये जानेवाले पणव आदि बाजों के शब्द से ताड़ित के समान देवगण युद्ध देखने के लिए आकाश में आये और वन्दि और चामर उनके साथ था ।

> नागनागोऽधावद्रथिनं च रथी नरं च ना गोधावत् ।
> तुरगवरं च तुरङ्गः प्राप बलौघः परस्परं चतुरङ्गः ॥ ८ ॥

हाथी हाथी से रथी रथी से पैदल पैदल से और घोड़े घोड़ों से मिले, अर्थात् उनमें युद्ध प्रारम्भ हुआ, इस प्रकार सेना के चारो अङ्ग आपस में मिले ।

> अवनिभृद्दाहवहोत्रव्यापारे जीवद्व्यदाद्वहोऽत्र ।
> धुतपांसावलम्बदसिः स्फुरन्नग्निशिखेव वचसा वलमदसि ॥ ९ ॥

धूलिरहित सेनारूपी सभामें राजाओं का युद्धरूपी अग्निहोत्र प्रारम्भ हुआ, वहां जोवरूपी आहुति के जलानेवाली तलवार तेज से अग्निशिखाके समान शोभने लगी ।

> भजनि तु भूरिभराजौ चलितायां नर्क्षगेन भूरिभराजौ ।
> लघुतां रथवाहास्त्रव्योमस्थितपांसुपङ्क्तिरथवाहास ॥१०॥

रणके लिए हाथियों के चलने पर पृथिवी भारवती होगयी और रथ और घोड़ों के द्वारा आकाश में फैलायी गयी धूलि ने अपनी लघुता छोड़ दी अर्थात् आकाश में धूलि सघन जम गयी ।

> तत्र विवेद न तावद्योद्धा पतितं भुजं विवेद नगावर ।
> अविनिहितमहारम्भं प्रहृतं मन्दैप्सदधिकमहारम्भम् ॥११॥

शत्रु के तीक्ष्ण तलवार से कटी हुई अपनी भुजा योधा को तब तक मालूम न हुई, अब तक उसे पीड़ा मालूम न हुई और भुजा के कट जाने पर भी उसने शत्रु पर प्रहार करते

की इच्छा की जिससे उसकी बड़ी हंसी हुई, क्योंकि उसकी भुजा तो कट गयी थी।

> क्षिप्तेऽधोपरि करिणा रथेन गगनादपातितो परिकरिणा ।
> वायुषु महत्सु गलता खुशी तत्राप्य स्तरम्भे खेऽगलता ॥१२॥

हाथी ने रथ ऊपर फेंक दिया, पर वह नीचे न गिर सका, क्योंकि आकाश में वायु था जिसपर वह रुका रहा, कम्बुकण्ठी देवाङ्गनाएं उस रथ को पाकर बहुत प्रसन्न हुईं।

> तत्र घनप्रासासिक्षुरिके रक्षोगणेन न प्रासारि ।
> गतशङ्कायस्त्रेन स्थितमप्रभक्षणेन काकवर्णेन ॥१३॥

उस युद्ध में भाले चक्र और छूरी आदि अस्त्र शस्त्र चल रहे थे, जिनके डर से राक्षस वहां न आये, पर दण्डों का समूह वहां निर्भय होकर स्थित रहा।

> न मृतं नामानेन प्राक् निहतं येन सुकृतिना मानेन ।
> खड्गवती क्षामासेरागमिरसिपाणिना प्रतीक्षामासे ॥१४॥

जो पुण्यात्मा सम्मान पूर्वक युद्ध में पहले मारा गया, अवश्य ही उसका मरना मरना नहीं है। एक योद्धा की तलवार टूट गयी, उसके प्रतिद्वन्द्वी ने तबतक उसकी प्रतीक्षा की जबतक वह नयी तलवार लेकर न आया।

> गुरुमत्सरसादरुषः पतिताः क्षरितासृग्रस्र सरमादरुषः ।
> दुधुवुः पादानश्वा रुवन्ति भषति स्म हृतवसादानः श्वा ॥१५॥

घोड़े भारी मत्सर कष्ट और क्रोधसे भरे हैं, रुधिर बह रहा है, कच्चे घाव के कारन वे गिर गये और पैर कँपने लगे और कुत्ता चर्बी पाने के हर्ष से भूंक रहा है।

विकटनितम्बा ।

ये संस्कृत की कवि हैं इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं इसका पता नहीं। सुभाषित ग्रन्थों में इनकी कवितायें पायी जाती हैं। जिनसे इनकी कविता की सरसता प्रतीत होती है। महाकवि राजशेखर ने विकटनितम्बा के विषय में लिखा है।

> के वैकटनितम्बेन गिरां गुम्फेन रञ्जिताः
> निन्दन्ति निजकान्तानां न मौग्ध्यमधुरं वचः ।

विकटनितम्बा की वाणी से प्रसन्न होकर कौन मनुष्य अपनी स्त्री की वाणी की निन्दा नहीं करता, वह वाणी भले ही भोली हो, मधुर हो।

ये गोविन्द स्वामी के साथ कविता करती थीं। इनके समय के विषय में तथा इनके और परिचय के विषय में कुछ मालूम नहीं।

> अन्यासु तावदुपमर्दसहासु भृङ्ग
> लोलं विनोदय मनः सुमनोलतासु ।
> मुग्धामजातरजसं कलिकामकाले
> व्यर्थं कदर्थयसि किं नवमालिकायाः ॥ १ ॥

भ्रमर, मधुमय तुम किसी दूसरी ओर सहने योग्य लता पर अपना मनोविनोद करो, इस नवमल्लिका की छोटी कली को जिसमें अभी पराग या उपराग नहीं हुआ है क्यों दुःखी करते हो (इस श्लोक के द्वारा भ्रमर के व्याज से किसी बालिका पर आसक्त कामुक को उपदेश दिया गया है)

बाला तन्वी मृदुरियमिति त्यजतामत्र शङ्का
दृष्टा काचिद्भ्रमरभरतो मञ्जरी भग्नपुष्पा,
तस्मादेषा रहसि भवता निर्दयं पीडनीया,
मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः कदाचित् ॥ २ ॥

यह बाला है दुबली है, कोमल है इस प्रकार की शङ्काएँ छोड़ दो, क्या ऐसी कोई मञ्जरी देखी गयी है जिसका पुष्प भ्रमरों के भार से टूट गया हो । इस कारण एकान्त में तुम इसको निर्दय होकर दबाना, क्योंकि बिना ज़ोर से दबाये ईख से रस नहीं निकलता ।

अयथि साहसकारिणि किं तव चङ्क्रमणेन ।
टसदिति भङ्गमवाप्स्यसि कुचयुगभारभरेण ॥ ३ ॥

अरे साहस करनेवाली, तुम क्यों चक्कर लगा रही हो, सम्भल जा, नहीं तो स्तनों के भार से टस से टूट जाओगी ।

किं द्वारि दैवहतिके सहकारकेण संवर्धितेन विषवृक्षक एष पापः ।
यस्मिन्मनागपि विकासविकारभाजि घोरा भवन्ति मदनज्वरसन्निपाताः ॥४॥

द्वार पर इस अभागे आम के वृक्ष को बढ़ा रखने से क्या लाभ, यह पापी निश्चय विष वृक्ष है, जिसके थोड़ा भी विकसित रहने के समय काम का सन्निपात ज्वर भयानक होजाता है ।

दिग्वधूवदनचुम्बि वीक्ष्य या योऽपि राजनि दिवा भवद्यशः ।
रविभिः पृथुपयोधरोद्गमरसेन याति परिरभ्यते दिशा ॥५॥

किसी राजा की स्तुति है - दिन में भी आपका यश दिशारूपी स्त्री का मुख चूमता है, इस बात से उसने भी ईर्ष्यापूर्वक अपने बड़े स्तन दिखला दिये (अर्थात् सूर्योदय

मी) पर आपके यश ने उस समूची का आलिङ्गन
दया ।

अभिहितापि अभियोगपरा मुग्धी प्रकटमङ्गविलासमकुर्वती ।
रणि मे पुरुषार्थमुपश्रना नववधूरिव शत्रु पताकिनी ॥६॥

कहने पर भी जो आक्रमण करना नहीं चाहती जो प्रकार
से अपने अङ्गों का विलास नहीं दिखाती, नई स्त्री के
मान तुम्हारे शत्रुओं की सेना तुमपर पुरुषार्थ नहीं
ता ।

विज्जका

ये संस्कृत की कवि हैं, संस्कृत साहित्य में इनकी बड़ी
ष्ठा है । ये सरस्वती का अवतार समझी जाती हैं । इनका
रा नाम विज्ञा भी है, इनकी कवितायें बड़ी मनोहर और
पूर्ण होती हैं ।

कवेरभिप्रायमशब्दगोचरं स्फुरन्तमार्द्रेषु पदेषु केवलम् ।
वदद्भिरङ्गैः कृतरोमविक्रियैर्जनस्य तूष्णीम्भवतोऽयमञ्जलिः ॥ १ ॥

शब्दों के द्वारा प्रकाशित न किया जा सकनेवाला केवल
ल शब्दों में दिखायी पड़ने वाला कवि के भाव को जो
रोमाञ्चित अङ्गों के द्वारा कहता है स्वयं चुप रहता है
पुरुष को यह अञ्जलि है अर्थात् उसको नमस्कार है ।

गते प्रेमाबन्धे हृदयबहुमानेपि गलिते
निवृत्ते सद्भावे जन इव जने गच्छति पुरः ।
तथा चैवोत्प्रेक्ष्य प्रियसखि गतांस्तांश्च दिवसान्
जाने को हेतुर्दलति शतधा यन्न हृदयम् ॥ २ ॥

उद्यमस्य मधकमद्रमार्थ चुम्बति प्रियतमे हठाद्धृत्या
हुं ममेति मदनाग्रलीनं जनितं जयति मानवतीनाम् ॥९॥

बालों को पकड़ कर मुंह ऊपर की ओर उठाकर ज पति चुम्बन करता है, उस समय मुंह में ही घूमता हुआ " नहीं" यह माननियों के वचन बड़े ही अच्छे मालूम होते हैं

विपत्सरित् विपद्दण्डप्रान्तप्रपातपरंपरा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिःखलः ।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्वा प्रगल्भकुलालवद्
भ्रमयति मनो नो जानीमः किमत्र विधास्यति ॥६॥

जो चिन्ताचक्र विपत्ति के दण्ड के कोर के अनवरत परिचित है, अर्थात् जो चिन्ताचक्र विपत्ति के दण्ड से चलाया जाता है, उस चक्र पर मिट्टी के समान पिण्डा बना कर यह दुष्ट भाग्य मेरे मन को रखता है और चतुर कुम्हार के समान उस चक्र को घुमाता है, मालूम नहीं मेरे मन को यह क्या बनाना चाहता है ।

विरम विफलायासादस्माद्दुरध्यवसायतो
विपदि महतां धैर्यध्वंसं यदीक्षितुमीहसे ।
अयि जडविधे कल्पापायव्यपेतनिजक्रमाः
कुलशिखरिणः क्षुद्रा नैते नवा जलराशयः ॥७॥

हे मूर्ख भाग्य, तुम विपत्ति के समय महान मनुष्यों की ता का नाश देखना चाहते हो, इस बुरी बात को मत ; इस बुरे काम को छोड़ दो, क्योंकि इसका कोई फल , क्या प्रलय के समय जिन्होंने अपना क्रम बदल दिया वे कुलपर्वत छोटे नहीं हैं और न समुद्रही छोटे हैं ।

नीलोत्पलदलश्यामां विज्जकां मामजानता ।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ॥८॥

मैं विज्जका नीलकमल के समान श्यामा हूं इस बात को न जान कर दण्डी ने यों ही सरस्वती को सर्वशुक्ला कह दिया है, अर्थात् मैं भी तो एक सरस्वती हूं।

किंशुककलिकान्तर्गतमिन्दुकलास्पर्धि केसरं भाति ।
रक्तनिचोलकनिहितं धनुरिव जतुमुद्रितमनङ्गस्य ॥९॥

पलाश की कलि के भीतर चन्द्रकला के समान वक्र केसर लाल, खोली में रखे हुए और लाख से बन्द किये हुए काम के धनुष के समान शोभता है।

केनात्र चम्पकतरो बत रोपितोऽसि
कुग्रामपामरजनान्तिकवाटिकायाम् ।
यत्र प्ररूढनवशाकविवृद्धिलोभा-
द्गोभङ्गवाटघटनोचितपल्लवोऽसि ॥१०॥

हे चम्पक वृक्ष, तुमको किसने यहां बुरे गांव के मूर्ख मनुष्य की वाटिका के पास रोपा है ? यह अच्छा नहीं हुआ ! इस बाग में जब नये शाक उगेंगे तब उनके बढ़ने के लिए, उनकी रक्षा के लिए, बाड़ (घेरा) लगायी जायगी, उस बाड़ को जब कोई गौ आदि तोड़ देगा, तब तुम्हारे पत्ते तोड़ कर वह बाड़ दुरुस्त की जायगी। यह अन्योक्ति है। कोई कवि किसी अरसिक स्वामी के यहां था। उसीको चम्पक वृक्ष बनाकर शिक्षा में उपदेश दिये हैं। हे कवे ! आप यहां क्यों आये, आपका यहां आना अच्छा नहीं हुआ ! जिसके यहां आप हैं वह मूर्ख है, वह आप की क़दर क्या जानेगा !

माद्यद्दिग्गजदानलिप्तकरटप्रक्षालनक्षोभिता
व्योम्नः सीम्नि विचेरुरप्रतिहता यस्योर्मयो निर्मलाः ।
कष्टं भाग्यविपर्ययेण सरसः कल्पान्तरस्थायिन-
स्तस्याप्येकबकप्रचारकलुषं कालेन जातं जलम् ॥११॥

मतवाले दिग्गजों के मदलिप्त कपोलस्थल के धोने से क्षुभित जिस नदी की निर्मल तरङ्गें निर्बाध होकर आकाश में विचरती थीं, दुःख है! आज भाग्य के दोष से उसी कल्पान्त तक स्थिर रहने वाली नदी का जल एक बगुले के चलने से गंदला हो जाता है। यह भी अन्योक्ति है। इसमें किसी धनपात्र मनुष्य को धनिक और दरिद्र दोनों अवस्था का वर्णन है।

विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोःकन्दली-
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुंकृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलमकण्डनीगीतयः ॥१२॥

धान कूटनेवालियों का गान बड़ा ही मनोहर मालूम होता है! बड़ी अदा के साथ मूसल हाथ में लिये हुए हैं, मूसल के उठाने तथा गिराने के कारण चूड़ियां बज रही हैं, उन चूड़ियों के शब्द से यह गान और भी मनोहर हो गया है। जब वे मूसल गिराती हैं उस समय उनके मुंह से हुङ्कार निकलता है और हृदय कम्पित हो जाता है, यही गान का गमक बन रहा है।

विद्यारण्य।

इनका दूसरा नाम माधवाचार्य भी है, ये अपने समय के बड़े विख्यात पण्डित थे। इन्होंने अनेक ग्रन्थ बनाये हैं।

१ वैदिक ग्रन्थों का भाष्य,
२ पराशर धर्मशास्त्र की टीका,
३ जैमिनीय न्यायरत्नाधिकरण माला,
४ वेदान्ताधिकरण रत्नमाला,
५ शङ्कर विजय,
६ काल माधव,
७ आचार माधव,
८ व्यवहार माधव,
९ माधवीय धातुवृत्ति,
१० सर्वदर्शन संग्रह,
११ पंचदशी,
१२ ब्रह्मगीता,
१३ [illegible],
१४ सूत संहिता की टीका,

विजयनगर के राज्य स्थापन में इन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था, ये तेरहवीं सदी में माने जाते हैं। इनकी माता का नाम श्रीमती, पिता का नाम मायन और भाइयों के नाम सायन तथा भोगनाथ था। ये शङ्कराचार्य के अनुयायी सन्यासी थे।

शङ्करदिग्विजय से

[illegible]
[illegible] ॥१॥

तदन्तर भगवान् उस मण्डन पण्डित को जीतने के लि प्रयाग से शीघ्र प्रस्थित हुए, आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हों दूर ही से माहिष्मती नगरी देखी, जिसमें मण्डन मि रहते थे ।

अथातटद्रविचित्रवप्रां विलोक्य तां विस्मितमानसोऽसौ ।
पुराणवत्पुष्करवर्त्मनीतः पुरोपकण्ठोपवने मनोज्ञे ॥२॥

जहां की अटारियों में अनेक प्रकार के रत्न जड़े हुए थे उस नगरी को देखकर वे विस्मित हुए, और नगर के पास के एक सुन्दर उद्यान में आकाश मार्ग से उतरे ।

प्रफुल्लराजीववने विहारी तरङ्गरिङ्गत्कणशीकरार्द्रः ।
रेवामरुत्कम्पितसालमालः श्रमापहृत्तं पुरुषमसिषेवे ॥३॥

विकसित कमलवन में विहार करनेवाला, तरङ्ग के छोटे छोटे जलकण से जो आर्द्र है और जिसने सालवन को कँपाया है, वह नर्मदा का वायु थकावट दूर करनेवाला भाष्यकार की सेवा करने लगा ।

तस्मिन्स विश्रम्य कृताह्निकः सन्सत्यवतिकारोहणशालिनीने ।
गच्छन्नसौ मण्डनपण्डितौको दासीस्तदीयाः स ददर्श मार्गे ॥४॥.

उस उद्यान में रहकर उन्होंने दिन का कृत्य समाप्त किया और मध्याह्न के समय मण्डन पण्डित के घर की ओर जाते हुए रास्ते में मण्डन पण्डित की दासियों को देखा ।

कुत्राऽऽलयो मण्डनपण्डितस्येत्येताः स पप्रच्छ जलाय गन्त्रीः ।
ताश्चापि दृष्ट्वाऽद्भुतशंकरं तं संतोषवत्यो प्रददुरस्म ॥५॥

जल के लिए जानेवालियों से उन्होंने पूछा कि मण्डन पण्डित का घर कहां है, वे भी उनको अद्भुत और सुन्दर जानकर सन्तोष पूर्वक उत्तर देने लगीं ।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥६॥

वेद स्वतः प्रमाण हैं या परतः प्रमाण हैं, यह बात जहां द्वार पर पिंजड़े में बैठी हुई शुकाङ्गना कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है।

फलप्रदं कर्म फलप्रदोऽजः कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥७॥

कर्म स्वयं फल देनेवाले हैं या परमात्मा कर्म फल देता है, जहां द्वार पर पिंजड़े में बैठी हुई शुकाङ्गना यह बात कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है।

जगद्ध्रुवं स्याज्जगदध्रुवं स्यात् कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडान्तरसंनिरुद्धा जानीहि तन्मण्डनपण्डितौकः ॥८॥

जगत् नित्य है या अनित्य जहां द्वार के पिंजड़े में बैठी हुई शुकाङ्गना यह बात कहती है वही मण्डन पण्डित का घर है।

पीत्वा वचस्तिरथ मस्य गेहाद् गत्वा बहिः सद्म कवाटगुप्तम् ।
दुर्गं शमालोक्य स योगशक्त्या व्योमाध्वनाऽऽयातरदङ्गणान्तः ॥९॥

उनकी बातें सुनकर वे मण्डन मिश्र के घर के बाहर पहुंचे, वहां उन्होंने किवाड़ बन्द देखे, घर में प्रवेश करना कठिन देखकर उन्होंने योगशक्ति के द्वारा आकाश मार्ग से घर के भीतर प्रवेश किया।

तदा स लेखेन्द्रनिकेतनाभं स्फुरन्मरस्थम्भकेतनाभम् ।
समग्रमालोकत मण्डनस्य निवेशनं भूतलमण्डनस्य ॥१०॥

भीतर जाकर भगवान ने भूलोक के अलङ्कार मिश्र का समस्त घर देखा, यह घर इन्द्र के घर के सा और वायु उस घर की पताका कंपा रहा था।

सौधाग्रसंलग्नघनोपकाशं प्रविश्य तत्प्राप्य कवेः सकाशम्।
विद्याविशेषाप्तयशःप्रकाशं ददर्श तं पद्मजनिप्रकाशम् ॥११

आकाश से बातें करनेवाले घर में भगवान ने मण्डन मिश्र को देखा, जिसने अपनी विद्या की अधिक यश का प्रकाश पाया है और जो ब्रह्मा के समान हैं।

तपोमहिम्नैव तपोनिधानं सजैमिनिं सत्यवतीतनूजम्।
यथाविधि श्राद्धविधौ निमन्त्र्य तत्पादं पद्मावनेजपरम् ॥१

उस समय मण्डन मिश्र श्राद्ध कराने के लिए और जैमिनि को निमन्त्रित करके उनके चरण कमल रहे थे।

तत्रान्तरिक्षादवतीर्य योगिवर्यः समागत्य यथार्हमेतः।
दृष्ट्वा परं जैमिनिमप्युभाभ्यां [illegible] ॥११॥

यहां वे योगिराज आकाशमार्ग से आये और व्या और जैमिनि ने इनका हर्षपूर्वक स्वागत किया।

अथ च मार्गादवतीर्णमग्रिके, मुनयोः शिवं ज्ञानशिखोपवीतिनम्।
[illegible] ॥११

आकाशमार्ग से आये हुए और उन दो मुनियों समीपस्थित इनको सन्यासी चिन्ह से देख कर यह श्रु शास्त्रों का अनुयायी होने पर भी क्रुद्ध हुआ।

[illegible]
[illegible] ॥११

गृहस्थ मण्डन मिश्र रुष्ट होगये थे और यतीश्वर को भी कौतूहल था इस कारण उन दोनों पंडितश्रेष्ठों में नीचे लिखे अनुसार प्रश्नोत्तर हुए।

कुतोमुण्ड्यागलान्मुण्डी पन्थास्ते पृच्छयते मया ।
किमाह पन्थास्त्वन्माता मुण्डेत्याह तथैव हि ॥१६॥

मण्डन—मुण्डी कहां से ?
शङ्कर—गले के ऊपर से ।
मंडन—मैं तुम्हारा रास्ता पूछता हूँ ।
शङ्कर—रास्ते ने तुमसे क्या कहा ?
मण्डन—तुम्हारी माता मुण्डा है,
शङ्कर—ठीक है ।

पन्थानं त्वमपृच्छस्त्वां पन्थाः प्रत्याह मंडन ।
त्वन्मातेत्यत्र शब्दोऽयं न मां ब्रूयादपृच्छकम् ॥१७॥

शङ्कर रास्ते से तुमने पूछा, रास्ते ने तुम्हें उत्तर दिया। ऐसी दशा में नहीं पूछनेवाले "तुम्हारी माता" के तुम्हारी से मेरा बोध नहीं हो सकता, क्योंकि मैं पूछनेवाला नहीं हूँ ।

अहो पीता किमु सुरा नैव श्वेता यतः स्मर ।
किं त्वं जानासि तद्वर्णमहं वर्णं भवान्रसम् ॥१८॥

मण्डन—क्या तुमने सुरा (मद्य) पीता (पी है) ?
शङ्कर—नहीं यह पीता (पीली) नहीं, श्वेत है ।
मण्डन—क्या तुम उसका रङ्ग जानते हो ?
शङ्कर—मैं रङ्ग जानता हूँ और तुम रस ।

मत्तो जातः कलञ्जाशी विपरीतानि भाषते ।
सत्यं ब्रवीति पितृवत्त्वतो जातः कलञ्जभुक् ॥१९॥

मण्डन—यह विषदिग्धमांस खानेवाला मत्त हो गया है, क्योंकि अनर्थक बोल रहा है ।

शङ्कर—ठीक है। पिता के समान बोल रहे हो, जैसे तुम निषिद्ध मांस खानेवाले हो उसी तरह तुमसे निषिद्ध मांस खाने वाला उत्पन्न हुआ है।

> कन्थां वहसि दुर्बुद्धे गर्दभेनापि दुर्वहाम्।
> शिखायज्ञोपवीताभ्यां कस्ते भारो भविष्यति ॥२०॥

मण्डन—मूर्ख कथड़ी ढो रहा है, जो गधा भी कठिनता से ढो सकता है। पर शिखा और यज्ञोपवीत भार था, जिससे उसका त्याग किया।

> कन्थां वहामि दुर्बुद्धे तव पित्राऽपि दुर्भराम्।
> शिखायज्ञोपवीताभ्यां श्रुतेर्भारो भविष्यति ॥२१॥

शङ्कर - मूर्ख, कन्था ढो रहा हूँ, जिसे तुम्हारा पिता भी नहीं ढो सकता। शिखा और यज्ञोपवीत से श्रुति का भार होता।

> त्यक्त्वा पाणिगृहीतीं स्वामशक्त्या परिरक्षणे।
> शिष्य पुस्तकभारेच्छो व्याख्याता ब्रह्मनिष्ठता ॥२२॥

मण्डन—रक्षा न कर सकने के कारण अपनी स्त्री को छोड़ दिया, अब शिष्य और पुस्तक का भार लिये फिरते हो, इसीसे तुम्हारी ब्रह्मनिष्ठता मालूम पड़ती है।

> गुरुशुश्रूषणालस्यात्समावर्त्य गुरोः कुलात्।
> स्त्रियः शुश्रूषमाणस्य व्याख्याता कर्मनिष्ठता ॥२३॥

शङ्कर- गुरु की सेवा में आलस्य के कारण गुरुकुल से समावर्तन कराकर स्त्रियों की सेवा करनेवाले को कर्मनिष्ठता मालूम पड़ती है।

स्त्रितोऽसि योषितां गर्भे ताभिरेव विवर्धितः ।
अहो कृतघ्नता मूर्ख कथं ता एव निन्दसि ॥२४॥

मण्डन—स्त्रियों के गर्भ में रहे हो, स्त्रियों ने ही तुम्हें बढ़ाया है, मूर्ख यह कितनी कृतघ्नता है कि तुम उन्हींकी निन्दा करते हो।

यासां स्तन्यं त्वया पीतं यासां जातोऽसि योनितः।
तासु मूर्खतम स्त्रीषु पशुवद्रमसे कथम् ॥२५॥

शङ्कर—जिनका दूध तुमने पीया, जिनसे तुम उत्पन्न हुए। मूर्ख, उन्हीं स्त्रियों में पशु के समान तुम रमण क्यों करते हो?

वीरहत्यामवाप्तोऽसि वह्नीनुद्वास्य यत्नतः ।
आत्महत्यामवाप्तस्त्वमविदित्वा परं पदम् ॥२६॥

मंडन--जानबूझ कर अग्नि का त्याग करने के कारण तुमको वीर हत्या लगी है।

शङ्कर--तुम्हें तो आत्महत्या का दोष लगा है, क्योंकि तुमने परमपद का ज्ञान नहीं पाया।

दौवारिकान्वञ्चयित्वा कथं स्तेनवदागतः ।
भिक्षुभ्योऽन्नमदत्त्वा त्वं स्तेनवद्भोक्ष्यसे कथम् ॥२७॥

मंडन—द्वार-रक्षकों को तुम ठगकर चोर के समान कैसे चले आये?

शङ्कर—भिक्षुकों को अन्न बिना दिये तुम चोर के समान खा कैसे रहे हो?

कर्मकाले न संभाष्य अहं मूर्खेण संप्रति ।
अहो प्रकटितं ज्ञानं यतिभङ्गेन भाषिणा ॥२८॥

तं मण्डनं सस्मितजैमिनीक्षितं, व्यासोऽब्रवीज्जल्पसि वत्स दुर्वचः ।
आचारणा नेयमनिन्दितात्मनां, ज्ञातात्मतत्त्वं यमिनं धुतैषणम् ॥३३॥

मण्डन को जैमिनी स्मित पूर्वक देख रहे थे । उस समय व्यास ने कहा कि तुम बुरे वचन कह रहे हो । सज्जनों की यह रीति नहीं है कि वह आत्मतत्त्वज्ञ वासना-रहित योगी के प्रति ऐसे दुर्वचनों का प्रयोग करे ।

अभ्यागतोऽसौ स्वयमेव विष्णुरित्येव मत्वाऽऽशु निमन्त्रय त्वम् ।
इत्याश्रयं ज्ञाननिधिं प्रतीतं, सुव्यग्रणीः साध्वशिष्यन्मुनिस्तम् ॥३४॥

विद्वानों के अग्रणि मुनि ने अपनी बात माननेवाले तथा शास्त्रज्ञ अपने शिष्य से कहा—ये स्वयं विष्णु आये हैं, ऐसा समझो और यही समझकर इनको निमन्त्रित करो ।

अथोपसंस्पृश्य जलं स शान्तः ससंभ्रमं मण्डनपण्डितोऽपि ।
व्यासाज्ञया शास्त्रविदर्चयित्वा न्यमन्त्रयद्भैक्ष्यकृते महर्षिम् ॥३५॥

अनन्तर आचमन करके शान्त मण्डन पण्डित ने भी व्यास की आज्ञा से शङ्कराचार्य को भोजन के लिए निमन्त्रित किया ।

सचाप्रवीत्सौम्य विवादभिक्षामिच्छन्भवत्सन्निधिमागतोऽस्मि ।
साऽस्तोन्यशिष्यत्वपणा प्रदेया, मास्त्यादरः प्राकृतभक्तभैक्ष्ये ॥३६॥

शङ्कर ने कहा—सौम्य, विवादभिक्षा की इच्छा से मैं आपके पास आया हूँ । वही आप दें और उसकी शर्त यह रहे कि जो हार जाय वह जीतनेवाले का शिष्य बन जाय । इस साधारण भोजन में हमारा कुछ भी आदर नहीं है ।

मम न किंचिदपि प्रु[illegible]समीप्सितं, श्रुतिशिरःपथविस्तृतिमन्तरा ।
अयहितेन मयेत्यवधीरितः सभवता भवताद्दिमपृतिः ॥३७॥

भवतु संप्रति वादकथाऽऽवयोः, फलतु पुष्कलशास्त्र परिश्रमः।
उपनता स्वयमेव न गृह्यते, नवसुधा वसुधावसथेन किम् ॥४२॥

अब हम दोनों का शास्त्रार्थ हो, अनेक शास्त्रों का परिश्रम सफल हो। यदि स्वयं नवीन अमृत आवे तो क्या पृथिवी वासी उसे ग्रहण नहीं करता।

व्यासदेव।

ये कृष्णद्वैपायन व्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम पराशर था। इन्होंने ही वेदों का सम्पादन और विषय विभाग के अनुसार क्रमबद्ध किया है। महाभारत तथा हरिवंश आदि ग्रन्थों में इन्होंने पाण्डवों का इतिहास लिखा है। इनके अतिरिक्त इन्होंने अन्य १८ पुराणों का भी निर्माण किया है। वेदान्तसूत्र जो व्याससूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी इन्हींके बनाये हुए हैं। पाणिनि के एक सूत्र में ये सूत्र भिक्षु-सूत्र के नाम से भी कहे गये हैं। पाणिनि का वह सूत्र है "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः"। इनको बादरायण भी कहते हैं। इनका समय ई० सदी से १२६३ वर्ष पूर्व बतलाया जाता है। सब कवियों के ये उपजीव्य कहे जाते हैं अर्थात् अन्य कवियों ने इन्हींको अपना आदर्श बनाया है। इन्हींकी कविता की सहायता से वे अपने काम में सफल हुए हैं।

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते।
स्वल्पमप्यनु गन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥१॥

भवतु संप्रति वादकथाऽऽवयोः, फलतु पुष्कलशास्त्र परिश्रमः ।
उपनता स्वयमेव न गृह्यते, नवसुधा वसुधाधिपेन किम् ॥४२॥

अब हम दोनों का शास्त्रार्थ हो, अनेक शास्त्रों का परिश्रम सफल हो । यदि स्वयं नवीन अमृत आवे तो क्या पृथिवी पाती उसे ग्रहण नहीं करता ।

व्यासदेव ।

ये कृष्णद्वैपायन व्यास के नाम से प्रसिद्ध हैं । इनके पिता का नाम पराशर था । इन्होंने ही वेदों का सम्पादन और विषय विभाग के अनुसार क्रमबद्ध किया है । महाभारत तथा हरिवंश आदि ग्रन्थों में इन्होंने पाण्डवों का इतिहास लिखा है । इनके अतिरिक्त इन्होंने अन्य १८ पुराणों का भी निर्माण किया है । वेदान्तसूत्र जो व्याससूत्र के नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी इन्हीं के बनाये हुए हैं । पाणिनि के एक सूत्र में ये सूत्र भिक्षु-सूत्र के नाम से भी कहे गये हैं । पाणिनि का वह सूत्र है "पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनट सूत्रयोः" । इनको बादरायण भी कहते हैं । इनका समय ई० सदी से १२६३ वर्ष पूर्व बतलाया जाता है । सब कवियों के ये उपजीव्य कहे जाते हैं अर्थात् अन्य कवियों ने इन्हींको अपना आदर्श बनाया है । इन्हींकी कविता की सहायता से वे अपने काम में सफल हुए हैं ।

अनुगन्तुं सतां वर्त्म कृत्स्नं यदि न शक्यते ।
स्वल्पमप्यनुगन्तव्यं मार्गस्थो नावसीदति ॥१॥

सज्जनों की राह पर यदि तुम पूरी तरह नहीं चल सको तो थोड़ा भी उस राह पर चलने का प्रयत्न करो। क्योंकि रास्ते का मनुष्य एक न एक दिन ठीक स्थान पर पहुँच ही जाता है।

उपकारः परो धर्मः परोऽर्थः कर्मनैपुणम् ।
पात्रे दानं परः कामः परो मोक्षो वितृष्णता ॥२॥

उपकार प्रधान धर्म है; कर्म—कुशलता प्रधान धन है; सुपात्र को दान देना प्रधान काम है और तृष्णाहीन होना प्रधान मोक्ष है। यही श्रेष्ठ चतुवर्ग है।

स धर्मो यो निरुपधः सोऽर्थो यो न विरुध्यते ।
स कामः सङ्गहीनो यः स मोक्षो यो पुनर्भवः ॥३॥

धर्म वह है जिसमें छल न हो, धन वह है जिसमें प्रतियोगिता न हो, काम वह है जो आसक्तिरहित हो और मोक्ष वह है जिसमें पुनर्जन्म न हो।

अविद्यानाशिनी विद्या भावना भवनाशिनी ।
दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम् ॥४॥

अज्ञान को नष्ट करनेवाली विद्या है, संसार के दुःखों को नाश करनेवाली भावना है। दान दरिद्रता को नष्ट करनेवाला है और दुःखों को दूर करनेवाला शील है।

गतेऽपि वयसि ग्राह्या विद्या सर्वात्मना बुधैः ।
इह चेत्स्यान्न फलदा फलदा साऽन्य जन्मनि ॥५॥

अधिक उम्र के बीत जाने पर भी बुद्धिमानों को विद्या ग्रहण करना चाहिए। यदि इस जन्म में उससे फल न हो सकेगा, तो आगे के जन्म में अवश्य वह फलदायिनी होगी।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥६॥

जो अत्यन्त सज्जन है, जो अत्यन्त दानी है, जो अधिक व्रत करने वाला है, जिसे अपनी बुद्धि का अभिमान है, लक्ष्मी इन लोगों के पास जाने से डरती है।

नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न क्लीबा न च मानिनः ।
न च लोकरवाद्भीता न च शश्वत्प्रतीक्षिणः ॥७॥

आलसी धन नहीं पाते हैं, नपुंसक और अभिमानियों को भी धन नहीं मिलता है। लोकापवाद से डरनेवाले और धन की सदा प्रतीक्षा करनेवालों को भी धन नहीं मिलता।

यःसमुत्पतितं क्रोधं क्षमं चापि नियच्छति ।
स श्रियो भाजनं पुंसां यथापत्सु न मुह्यति ॥८॥

जो उत्पन्न हुए क्रोध को रोक लेते हैं और विपत्तियों के समय में भी नहीं घबराते हैं, वेही लक्ष्मी के पात्र होते हैं।

वशेन्द्रियं जितात्मानं धृतदंडं विकारिषु ।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥९॥

जिसने अपनी इन्द्रियों को वश में कर रक्खा है, जिसने अपनी आत्मा जीत ली है, जो अपने विरोधियों को दंड देना जानता है, जो समझ बूझ कर काम करता है और जो धीर है लक्ष्मी उसकी सेवा करती है।

अनागतविधातारमप्रमत्तमकोपनम् ।
वित्ताभ्यसहीनं च नरं श्रीरुपतिष्ठति ॥१०॥

विपत्तियों के आने के पहिले ही उनके दूर करने के उपाय सोच रखनेवाले, सदा सावधान रहनेवाले, क्रोध न करने

करने, जल्दी किसी काम को न प्रारम्भ करनेवाले, अपनी दीनता न दिखानेवाले मनुष्य की लक्ष्मी सेवा करती है।

श्रोत्रमुखानि दुर्जयानि देहे रिपवश्चाप्युदाहृताः ।
जितेषु तेषु लोकोयं ननु कृत्स्नस्त्वया जितः ॥११॥

आँख आदि इन्द्रियाँ शरीर में वर्तमान हैं, ये दुर्जय हैं, उनको जीतो। उनके जीतने से तुम समस्त संसार जीत सकोगे।

यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवाद शस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ॥१२॥

यदि तुम एक ही काम से समस्त संसार को अपने वश में करना चाहते हो तो दूसरों की निन्दा में लगी हुई अपनी वाणी को रोको। अर्थात् यदि तुम दूसरों की निन्दा करना छोड़ दो तो समस्त संसार तुम्हारे वश हो जाय।

सुहृदप्यरयस्तस्य यस्यात्मा दुरधिष्ठितः ।
अजीर्णे पथ्यमप्यन्नं व्याधये मरणाय वा ॥१३॥

उस मनुष्य के मित्र भी शत्रु ही हैं, जिसकी आत्मा अव्यवस्थित है। अजीर्ण में पथ्यान्न भी रोग उत्पन्न करता है, या मार डालता है।

भीरुः पलायमानोपि नान्वेष्टव्यो बलीयसा ।
कदाचिच्छूरतामेति मरणे कृतनिश्चयः ॥१४॥

डरपोक मनुष्य भी यदि सामने से भाग जाय तो बलवान् को चाहिए कि उसका पीछा न करे क्योंकि सम्भव है, वह अपनी मृत्यु निश्चित जान कर वैरी बन जाय।

तेजस्विनि क्षमोपेते नातिकार्कश्यमाचरेत् ।
[illegible] जायते ॥१५॥

तेजस्वी मनुष्य यदि अपने ऊपर किये गये अपराधों को क्षमा करता जाय तो उसको अधिक सताना नहीं अच्छा, क्योंकि अधिक रगड़ से शीतल चन्दन में भी आग की लपटें निकलने लगती हैं।

असहायःसमर्थोऽपि तेजस्वी किं करिष्यति ।
निवाते ज्वलितोऽप्यग्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥१६॥

शक्तिमान् तेजस्वी मनुष्य भी यदि सहायहीन हो, तो वह क्या कर सकता है ? धधकती हुई भी आग यदि बिना हवा की जगह में रक्खी जाय तो वह आप ही आप बुझ जाती है।

कृत्वा बलवता वैरमात्मानं यो न रक्षति ।
अपथ्यमिवतद्भुक्तं तस्यानर्थाय केवलम् ॥१७॥

जो मनुष्य बलवान से शत्रुता करके अपनी रक्षा का प्रयत्न नहीं करता, अपथ्य भोजन के समान उसके लिये वह बड़ा अनर्थ करता है।

कारणान्प्रियतामेति द्वेष्यो भवति कारणात् ।
अर्थार्थी जीवलोकोयं न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥१८॥

कारण से मनुष्य प्रिय होता है और कारण ही से शत्रु भी होता है। यह स्वार्थ का संसार है, यहाँ कोई किसी का प्रिय नहीं।

नास्ति जात्या रिपुर्नाम मित्रं चापि न विद्यते ।
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥१९॥

स्वभाव से कोई किसीका शत्रु नहीं और न कोई किसीका मित्र ही है। समय के अनुसार मित्र और शत्रु हुआ करते हैं।

अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलु नम्रताम् ।
अनुत्सृज्य सतां मार्गं यत्स्वल्पमपि तद्बहु ॥२०॥

दूसरे को न सता कर, दूसरों के सामने दीन न बनकर सज्जनों के मार्ग न छोड़कर यदि थोड़ा भी मिले तो उ बहुत समझना चाहिये।

अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनम्।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते ॥२१॥

जिस प्रकार बिना चाहे भी मनुष्यों के पास दुःख आया करते हैं, उसी प्रकार सुख भी आवेगा ऐसा मैं समझता हूँ। फिर दुःख से घबड़ाना और सुख के लिए व्याकुल होना केवल अपनी दीनता दिखाता है।

यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ता विषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते ॥२२॥

जो नहीं होने वाला है वह न होगा, इस कारण क्या औषधि नहीं पी जाती !

आगमिष्यन्ति ते भावा ये भावा मयि भाविनः।
अहं तैरनुगन्तव्यो न तेषामन्यतो गतिः ॥२३॥

जो घटनायें मेरे जीवन में होनेवाली हैं वे अवश्य ? वे मेरा अनुसरण करेंगी, क्योंकि उनके लिए दूसरी कोई नहीं है।

धनमस्तीति वाणिज्यं किंचिदस्तीति कर्षणम्।
सेवा न किंचिदस्तीति नाहमस्मीति साहसम् ॥२४॥

धन हो तो वाणिज्य करना चाहिए, कुछ थोड़ा सा हो तो खेती, कुछ भी न हो तो नौकरी, और अपनी सत्ता समझ कर साहस (चोरी आदि)।

नोदन्वानर्थितामेति नचाम्भोभिर्न पूर्यते।
आत्मा तु पात्रतां नेयः पात्रमायान्ति संपदः ॥२५॥

समुद्र किसी के यहाँ माँगने नहीं जाता, पर वह जल से पूर्ण रहता है। मनुष्य को स्वयम् योग्य बनना चाहिए, क्योंकि योग्य को ही सम्पत्ति मिलती है।

प्रज्ञया मानसं दुःखं हन्याच्छारीरमौषधैः।
एतद्विज्ञानसामर्थ्यं न बालैः समतामियात् ॥२६॥

बुद्धि से मन के और दवा से शरीर के दुःखों को दूर करे, इस प्रकार मानसिक और शारीरिक दुःखों को दूर करने की अपनी शक्ति समझे; बालकों की तरह घबड़ा न जाय।

पुत्रैर्मित्रैर्गृहैर्वापि वियुक्तस्य धनेन वा।
मग्नस्य व्यसने कृच्छ्रे पुंसः श्रेयस्करी धृतिः ॥२७॥

पुत्रों से, मित्रों से, घर से, अथवा धन से यदि मनुष्य का वियोग हो या वह किसी बड़ी विपत्ति में फंसे तो उस समय एक धैर्य ही उसका कल्याणकारी होता है।

दुःखी दुःखाधिकान्पश्येत्सुखी पश्येत्सुखाधिकान्।
आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत् ॥२८॥

दुखी मनुष्य अपने से अधिक दुखी को देखे और सुखी अपने से अधिक सुखी को दुख सुख से शोक व हर्ष करने की ज़रूरत नहीं। यह दोनों शत्रु हैं, इनके हाथों आत्म-समर्पण करना बुरा है।

सुखसम्पदपि धैर्यवृद्धिर्मोहयते नरम्।
वर्त्तमानः सुखे सर्वो नावैतीति मतिर्मम ॥२९॥

बुद्धिमान और धीर मनुष्य को भी सम्पत्ति मोहित करती है। सुखी भी मनुष्य अपने को सुखी नहीं समझता, ऐसी मेरी समझ है।

येर्थाः क्लेशेन देहस्य धर्मस्यातिक्रमेण च ।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥३०॥

जो धन शरीर के कष्ट से मिले, धर्म के अतिक्रमण से मिले, अथवा शत्रु के पैरों पड़ने पर मिले तो उस धन की इच्छा मत करो।

गुणेषु यत्नः क्रियतां किमाटोपैः प्रयोजनम् ।
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जिताः ॥३१॥

गुणों के प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करो, आडम्बरों से लाभ ही क्या ! बिना दूध की गाय घण्टा बाँधने से नहीं बिकती।

गुणाःखलु गुणा एव न गुणा धनहेतवः ।
अर्थसंचयकर्तॄणि भाग्यानि पृथगेव हि ॥३२॥

गुण गुण ही है, गुणों से धन नहीं मिलता। धन संचय करनेवाला भाग्य अलग ही है।

गुणाःखलु गुणा एव न गुणा फलहेतवः ।
सगुणो निष्फलश्चापो निर्गुणः सफलः शरः ॥३३॥

गुण गुण ही हैं, उनसे फल का कोई सम्बन्ध नहीं। सगुण (धनुष की डोरी) धनुष निष्फल होता है, और निर्गुण (डोरी रहित) बाण सफल (बाण का अग्रभाग) होता है।

आत्मायत्ते गुणादाने नैर्गुण्यं वचनीयता ।
दैवायत्तेषु वित्तेषु पुंसः का नाम वाच्यता ॥३४॥

गुणों का अर्जन करना अपने अधीन है, इसलिए गुणों का अर्जन न करना निन्दा की बात है। धनी होना भाग्य के अधीन है, इसलिए धनहीन पुरुष निन्दा का पात्र नहीं है।

अङ्गनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य संचयम्।
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययनकर्मभिः ॥३५॥

अञ्जन का क्षय देखकर और वाल्मीक का संचय देखकर मनुष्य को चाहिए कि दान अध्ययन आदि सब कर्म को प्रतिदिन किया करे, क्योंकि प्रतिदिन का थोड़ा थोड़ा भी सत्कर्म बहुत होता है।

यो यमर्थं प्रार्थयते यमर्थं घटते च यः ।
सोऽवश्यं तमवाप्नोति न चेच्छ्रान्तो निवर्तते ॥३६॥

जो जिस बात की प्रार्थना करता है, और जिस बात के लिए प्रयत्न करता है, यह उसे अवश्य प्राप्त होती है। यदि प्राप्त न हुई तो वह मनुष्य थकित होकर अपने प्रयत्न से निवृत हो जाता है।

गच्छन्पिपीलको याति योजनानां शतान्यपि ।
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ॥३७॥

चलता हुआ चींटा भी सैकड़ों योजन चला जाता है, और बैठा हुआ गरुड़ भी एक पैर नहीं जाता।

चिन्तनीया हि विपदामादावेवप्रतिक्रिया ।
न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ॥३८॥

विपत्ति के आने के पहिले ही उसके प्रतीकार का उपाय निश्चित करना चाहिए। घर में आग लगने पर कुआं खादने की तय्यारी अच्छी नहीं।

मित्रस्वजनबन्धूनां बुद्धेर्धैर्यस्य चात्मनः ।
विपन्निकषपाषाणे नरो जानाति सारताम् ॥३९॥

मित्र, स्वजन, बन्धु, बुद्धि और अपनी धीरता की परीक्षा मनुष्य अपनी विपत्ति की कसौटी पर करता है

अर्थात् विपत्ति के समय इनका खरापन मनुष्य को मा[illegible] होता है ।

> सर्वः पदस्थस्य सुहृद्बन्धुरापदि दुर्लभः ।
> ये यान्त्यापदि बन्धुत्वं सुहृदो बन्धवश्च ते ॥४०॥

घने के सब साथी हैं, बिगड़े का कोई नहीं। जो बिग[illegible] का साथी है, वही मित्र बन्धु आदि हैं।

> स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपपद्यते ।
> न तु दुश्चरितातीतकर्मोपालम्भपण्डितः ॥४१॥

वही मित्र है जो विपत्ति से दुःखित मनुष्य का साथ दे वह नहीं, जो बीती हुई बातों के उलहना देने में अप[illegible] विद्वत्ता दिखावे ।

> शिरसा विधृता नित्यं स्नेहेन परिपालिताः ।
> केशा अपि विरज्यन्ते कोन्ये नायाति विक्रियाम् ॥४२॥

सदा सिर पर रक्खे हुए, और बड़े स्नेह से पालित बाल भी रङ्ग बदल ही देते हैं, एक रङ्ग कोई नहीं रहता। अन्त में सबही रँग पलट देते हैं

> मृदोः परिभवो नित्यं वैरं तीक्ष्णस्य नित्यशः
> उत्सृज्यैतद्वयं तस्मान्मध्यां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥४३॥

कोमल मनुष्य सताये जाते हैं, और कठोरों के शत्रु बढ़ते हैं। इसलिए कोमलता और कठोरता छोड़कर बीच की वृत्ति का ग्रहण करना ही उचित है।

> मृदुनापि हि साध्यन्ते कर्मणा स्वार्थसिद्धयः ।
> अमृकृपितितम्बङ्गी जलौका स्वात्मतृप्तये ॥४४॥

कोमल कर्मों के द्वारा भी अपने स्वार्थ की सिद्धि की जा सकती है। (कोमल) जोंक अपनी तृप्ति के लिए रुधिर पीती है।

> नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते।
> दानं मैत्री च भूतेषु दया च मधुरा च वाक् ॥४५॥

तीनों लोक में इससे बढ़कर मनुष्य को प्रसन्न करनेवाली और दूसरी बात नहीं है—दान, मित्रता, प्राणियों पर दया और मीठी बोली।

> आत्मवैरस्तु बलिना दुःखं स्वपिति सर्वदा।
> अनिवृत्तो न मनसा ससर्पमिव वेश्मनि ॥४६॥

बलवान के साथ विरोध हो जाने पर मनुष्य सुखपूर्वक सो नहीं सकता। उसे बड़े दुःख से अपना समय व्यतीत करना होता है। वह हमेशा शंकित बना रहता है, जैसे सर्प वाले घर में रहने वाला मनुष्य।

> कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा च चतुर्विधम्।
> प्रसादयति यो लोकं तं लोको न प्रसीदति ॥४७॥

कर्म, मन, वचन और चक्षु के द्वारा जो लोगों को प्रसन्न करना चाहता है, उससे लोग प्रसन्न नहीं होते।

> संभोजनं संकथनं संप्रश्नोऽथ समागमः।
> ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥४८॥

अपने ज्ञाति भाइयों के साथ भोजन करना, प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके कुशल-प्रश्न पूछना चाहिए। उनके साथ कभी विरोध करना उचित नहीं।

अपने स्वजनों द्वारा सत्कृत मनुष्य का आदर दूसरे भी करते हैं, और स्वजनों के द्वारा तिरस्कृत मनुष्य का निरादर दूसरे भी करते हैं।

> ज्ञातीनां बन्धुकामानां कटूनि परुषाणि च ।
> सकोपं हृदयं वाचा श्लक्ष्णया शमयेद्बुधः ॥५५॥

जो अपने भाई बन्धुओं को कठोर और परुष बोलना चाहें तो बुद्धिमान मनुष्य उनके कुपित हृदय को कोमल वचनों से शान्त करे।

> परोऽपि हितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
> अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥५६॥

हित करनेवाला शत्रु भी मित्र है, और अहित करनेवाला मित्र भी शत्रु है। शरीर से उत्पन्न व्याधि शत्रु होता है, और जङ्गल में उत्पन्न होनेवाली दवा मित्र।

> मूषको गृहजातापि हन्तव्या ह्यपकारिणी ।
> उपप्रदानैर्मार्जारो हितकृत्प्रार्थ्यतेऽन्यतः ॥५७॥

घर में उत्पन्न हुई चूही मार डाली जाती है, क्योंकि वह नुकसान पहुँचाती है और हित करनेवाली बिल्ली घी देकर पाली जाती है।

> सौहृदेन परित्यक्तं निःस्नेहं सहजमप्येव ।
> सोदर्यं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम् ॥५८॥

मैत्रीशून्य (स्नेह रहित) खल का त्याग करना उचित है। ऐसा सहोदर भाई भी हो तो भी उसे त्याग करना उचित है, दूसरों की बात क्या।

पूर्वोपकारी यस्तु स्यादपकारे गरीयसि।
उपकारेण तत्तस्य क्षन्तव्यमपराधिनः ॥५९॥

पहिले के उपकारी व्यक्ति द्वारा यदि अपकार होजाय तो उपकार के बदले उसका अपराध क्षमा करना चाहिए।

अथ चेद्बुद्धिजं कृत्वा न ब्रूयात्तदबुद्धिजम्।
पापान्स्वल्पेति तान्हन्यादपराधे तथानृजून् ॥६०॥

जो मनुष्य जान बूझ कर पाप करे और कहे कि गलती से होगया है, तो उसको मार डालना चाहिए और जो अपराध भी करे और अपनी शेखी हांके उसे भी मार डालना चाहिए।

अजातमृतमूर्खेभ्यो मृताजातौ वरं सुतौ।
तौ किंचिच्छोकदौ पित्रोर्मूर्खस्त्वत्यन्त शोकदः ॥६१॥

अजात, मृत और मूर्ख इन तीन प्रकार के पुत्रों में से पहिले के दो अच्छे हैं, अन्तिम नहीं। पुत्र के न उत्पन्न होने से या उत्पन्न होकर मर जाने से एक ही बार दुःख होता है और मूर्ख पुत्र तो जीवन भर तक सताता रहता है।

अपुत्रत्वं भवेच्छ्रेयो नतुस्याद द्विगुणः सुतः।
जीवन्नप्यविनीतोसौ मृत एव नासंशयः ॥६२॥

बिना पुत्र का रहना ठीक है, पर निर्गुण पुत्र नहीं अच्छा। वह अशिक्षित पुत्र जीवन मृत के समान है।

एकोपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम्।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति नच तारा सहस्रशः ॥६३॥

गुणी एक भी लड़का बहुत अच्छा है, और निर्गुण सौ भी अच्छे नहीं, एक चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है, हजारों तारे नहीं।

दाने तपसि शौर्ये वा यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥६४॥

दान, तपस्या और शूरता में जिसकी प्रसिद्धि न हुई, वह अपनी माता का पुत्र केवल कहने के लिए है।

पानीयं वा निरायासं स्वाद्वन्नं वा भयोत्तरम् ।
विचार्यं खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ॥ ६५ ॥

बिना प्रयत्न के मिला हुआ जल और भयजनक स्वादु भोजन इन दोनों के विषय में जब मैं विचार कर देखता हूँ तब मालूम होता है कि जहाँ तृप्ति है वहीं सुख है।

दुःखेन श्लिष्यते भिन्नं श्लिष्टं दुःखेन भिद्यते ।
भिन्नश्लिष्टा तु या प्रीतिर्न सा स्नेहेन युज्यते ॥६६॥

दुःख से भिन्न (फटा हुआ) जुड़ जाता है, और दुःख से जुड़ा हुआ फट भी जाता है, पर भेद पाकर जुड़ी हुई प्रीति में स्नेह नहीं होता।

दैवयोगादुपनताः प्रतिज्ञाहीनसम्पदः ।
अकस्मादेव नश्यन्ति खलानामिव सङ्गतम् ॥६७॥

भाग्य से मिली हुई सम्पत्ति अचानक ही नष्ट हो जाती है, जैसे दुर्जनों की मैत्री।

न दैवमिति संचिन्त्य त्यजेदुद्योगमात्मवान् ।
अनुद्योगेन कस्तैलं तिलेभ्यः प्राप्तुमर्हति ॥६८॥

हमारे प्रयत्नों का फल भाग्याधीन है, इसलिये उद्योग को छोड़ देना नहीं अच्छा। बिना उद्योग से कोई भी मनुष्य तिल से तैल नहीं पा सकता।

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डितमानिनः।
सर्वे महत्त्वमिच्छन्ति तद्वृन्दमवसीदति ॥६९॥

जिस दल में बहुत नेता हों, सभी अपने को पण्डित समझनेवाले हों, और सभी बड़ा बनना चाहते हों तो शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

ज्येष्ठो भ्राता पितृसमो मृते पितरि भारत।
स ह्येषां वृत्तिदाता स्यात्स वै तान्परि पालयेत् ॥७०॥

पिता के मरने पर बड़ा भाई पिता के समान है, वही अपने छोटे भाइयों की देख रेख रखता है और करता है।

कनिष्ठास्तं नमस्येरन्सर्वे छन्दानुवर्तिनः।
तमेव चोपजीवेयुर्यथैव पितरं तथा ॥७१॥

छोटे भाई बड़े भाई का आदर करें, उनके कहने के सार चलें और उन्हीं के अधीन रहें, बड़े भाई के साथ पिता के समान बरताव करें।

तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ॥७२॥

उस गाय को लेकर क्या होगा जो न दूध देती है, और न बच्चे? उस लड़के से क्या लाभ जो न धार्मिक हो और न विद्वान्?

किंनु मेस्यादिदं कृत्वा किंनु मे स्यादकुर्वतः।
इति संचिन्त्य मनसा प्राज्ञः कुर्वीत वा न वा ॥७३॥

इस कार्य के करने से क्या होगा और न करने से क्या ी जा? इस बात का विचार कर लेने पर मनुष्य को चाहिए ऐ काम करे या न करे।

कार्यमालोचितारम्भं मतिमद्भिर्विवेचितम् ।
न केवलं हि सम्पत्तौ विपत्तावपि शोभते ॥७४॥

जिस कार्य की बुराइयां मालूम हो चुकी हैं और जिस कार्य के विषय में बुद्धिमानों ने अपनी सम्मति प्रकाशित कर दी है वह कार्य अच्छे समयों में ही नहीं, किन्तु विपत्ति के समय में भी लाभदायक होता है ।

षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुष्कर्णस्तु जायते ।
द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्यन्तं न गच्छति ॥७५॥

कोई गुप्त बात छः कानों में पहुँचने पर फैल जाती है, चार कानों में पहुँचने पर कभी कभी फैलती है, पर जो सलाह दो कानों में ही रहती है उसका पता ब्रह्मा को भी नहीं मिलता ।

सुमन्त्रिते सुविक्रान्ते सुकृते सुविचारिते ।
प्रारम्भे कृतबुद्धीनां सिद्धिरव्यभिचारिणी ॥७६॥

उस काम में बुद्धिमानों को अवश्य ही सिद्धि मिलती है जिसी प्रारम्भ करने के पहिले खूब सोच विचार लिया जाता है, जिसके साधन में तत्परता दिखलाई जाती है जो अच्छी तरह किया जाता है ।

अफलानि दुरन्तानि समव्ययफलानि च ।
अशक्यानि च वस्तूनि नारभेत विचक्षणः ॥७७॥

बुद्धिमान उन कामों का प्रारम्भ न करें जिनका कुछ फल न हो, जिनका परिणाम दुखदाई हो जिनमें हानि लाभ बराबर हो और जो अपने लिये अशक्य हों ।

सत्कार्यं पुरुषेणेह व्यवसायपरा सदा ।
तत्कार्यैर्निर्विरोधेन सिद्धिरेव मतिर्हिता ॥७८॥

उद्योगी सज्जन पुरुष का जो कर्तव्य है, उसका पाल निर्भय होकर करना चाहिए सिद्धि भाग्याधीन है।

आणुपूर्व वृहत्यश्चाद्वन्यायेषु संगतम्।
विपरीतमनार्येषु यथेच्छसि तथा कुरु ॥७९॥

सज्जनों की मैत्री पहिले छोटी पीछे बड़ी होती है दुर्जनों की मैत्री इससे विपरीत होती है।

सद्भिरेव सदासीत सद्भिः कुर्वीत संगतम्।
सद्भिर्विवादं मैत्रीं च नासद्भिः किंचिदाचरेत् ॥८०॥

सज्जनों के साथ बैठना चाहिए और उन्हीं का करना चाहिए, यदि विवाद हो तो सज्जनों के साथ मैत्री हो तो भी उन्हीं के साथ। दुर्जनों से कुछ भी सम्ब न रखना चाहिए।

विरुद्धैरपि वस्तव्यं साधुभिर्धर्मदर्शिभिः।
दोषा अपिहि साधूनामसतां च गुणैः समाः ॥८१॥

अपने से मतभेद रखनेवाले धर्मात्मा सज्जनों के सा रहना उचित है, क्योंकि धर्मात्मा के दुर्गुण भी दुर्जनों गुणों से बढ़कर होते हैं।

प्रेक्षणीयः प्रयत्नेन स्वभावो नेतरे गुणाः।
अतीत्यहि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि तिष्ठति ॥८२॥

बड़ी तत्परता के साथ अपने स्वभाव की देखरेख रखना चाहिये, दूसरे गुणों की नहीं। क्योंकि स्वभाव सब गुणों पर अपना प्रभाव जमा लेता है।

प्रियं प्रयादकृपणः शूरः स्यादविकत्थनः।
दाता नापात्रवर्षी स्यात्प्रगल्भः स्यादनिष्ठुरः ॥८३॥

उदारता के साथ प्रिय बोलना चाहिए, शूर होना चाहिए, पर आत्मश्लाघी नहीं। दाता होना चाहिए पर अपात्र को दान देना ठीक नहीं। प्रगल्भ होना अच्छा है, पर क्रूर नहीं।

> न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
> विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ॥ ८५ ॥

अविश्वासी पर विश्वास न करे और विश्वासी पर भी अधिक विश्वास न करे। क्योंकि विश्वासी से जो भय उत्पन्न होता है, वह जड़-मूल से नाश कर देता है।

> प्रज्ञाशौर्यविवृद्धेषु भृत्येषु शठवृत्तिषु।
> स्वामी विश्वासनिद्रालुः प्रतार्यति तप्यते ॥ ८६ ॥

बुद्धि और बल से बढ़े हुए शठ भृत्य पर जो स्वामी विश्वास करता है वह ठगा जाता है, और दुख उठाता है।

> यस्य कार्यमकार्यं वा सममेव भवत्युत।
> कस्तस्य विश्वसेत्प्राज्ञो दुर्मतेरकृतात्मनः ॥ ८७ ॥

जिसके लिए अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कार्य बराबर हैं, उस मूर्ख और कृतघ्नी का विश्वास कौन बुद्धिमान् कर सकता है?

> अपराधो न मेऽस्तीति नैतद्विश्वासकारणम्।
> विद्यते हि नृशंसेभ्यो भयं गुणवतामपि ॥ ८८ ॥

मेरा अपराध नहीं है, इसी विश्वास से निर्भय नहीं हो जाना चाहिए। क्योंकि क्रूर मनुष्यों द्वारा गुणवान् भी सताये जाते हैं।

> केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद् व्याघ्रमुखा मृगाः।
> तत्स्वरूपविपर्यासाद्विश्वासो ह्यापदां पदम् ॥ ८९ ॥

कोई मनुष्य मृगमुख व्याघ्र होते हैं कोई व्याघ्रमुख मृ
होते हैं। अर्थात् कोई तो ऊपर से अच्छे दीखते हैं परन्
भीतर के क्रूर होते हैं, और कोई ऊपर से क्रूर दीखते हैं, औ
भीतर से अच्छे होते हैं। इस स्वरूप भेद के धोखे में आक
जो अपना विश्वास स्थापित करते हैं, वे विपत्ति में फँसते हैं।

परनिन्दासु पाण्डित्यं स्वेषु कार्येष्वनुद्यमः।
प्रद्वेषश्च गुणज्ञेषु पन्थानो ह्यापदां त्रयः ॥ ९० ॥

दूसरों की निन्दा में अपनी निपुणता दिखाना, अ
कार्यों में उदासीन रहना और गुण के आदर करने वाले
द्वेष रखना, ये तीन आपत्ति के मार्ग हैं।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रस्तं च परिणामि यत्।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥ ९१ ॥

जो ग्रास निगला जा सके, पच सके और जिससे परिणाम में लाभ हो, अपना कल्याण चाहने वाले को उसी वस्तु का सेवन करना चाहिए।

तिष्ठत्येकेन पादेन चलत्येकेन पण्डितः।
नापरीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ ९२ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य एक पैर से चलता है और एक पैर से खड़ा रहता है। दूसरा नया स्थान बिना देखे पहिला स्थान नहीं छोड़ना चाहिये।

बहूनामप्यसाराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरावेष्ट्यते रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ॥९३॥

बहुत सी दुर्बल वस्तुओं का समूह दुर्जय होता है, तृणों से रस्सी बटी जाती है, जिससे हाथी भी बँध सकता है।

बहुनामप्यमित्राणां य इच्छेत्कर्तुमप्रियम्।
आत्मानं तेन गुणैर्योज्यस्ततोऽवां महदप्रियम्॥ ९४॥

जो अपने शत्रु मंडल को दुख पहुँचाना चाहता हो, तो उसे चाहिए कि अपनी आत्मा को गुणवान बनावे। क्योंकि उसके शत्रुओं के लिए इससे बढ़कर अन्य दुखदाई कार्य नहीं है।

प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यन्ति संहताः।
गृहीतच्छत्रहस्तस्य वारिधारा इवारयः॥ ९५॥

बुद्धि के द्वारा जिसने अपने शरीर को सुरक्षित कर रखा है, उसकी सम्मिलित शत्रुओं के दल द्वारा कोई हानि नहीं हो सकती। जिसने छाता लिया, उसका वृष्टि क्या कर सक्ती है?

यदशक्यं न तच्छक्यं सुशीघ्रमपि धावता।
मन्दबुद्धिस्तु जानीते मुहूर्तं नास्मि वंचितः॥ ९६॥

जो काम अशक्य है, वह अशक्य ही है, चाहे उसके लिए कितना ही क्यों न प्रयत्न किया जाय। पर मूर्ख मनुष्य समझता है, कि मेरी थोड़ी ग़लती से यह कार्य्य नहीं हुआ।

अक्षिपक्ष्म कदा लुप्तं छिद्यन्ते हि शिरोरुहाः।
वर्धमानात्मनामेव भवन्ति हि विपत्तयः॥९७॥

आँख के बार कभो नहीं काटे जाते, पर माथे के बार हमेशा काटे जाते हैं। बात यह है कि विपत्तियों का सामना उन्हींको करना पड़ता है जिनकी वृद्धि होती है।

मा तात साहसं कार्षीर्विभवैर्विप्रलम्भितः।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपत्तये॥ ९८॥

भाई, धन मद से भूल कर बहुत साहस मत क
क्योंकि धरने वद्ध भी भार होजाते हैं और ये विपत्ति
समान मालूम होते हैं।

मा तात प्रभवामीति बाधिष्ठाः कृपणं जनम्। —
मा त्वां कृपणचक्षूंषि धाक्षुरग्निरिवेन्धनम् ॥ ९९ ॥

भाई ! तुम प्रभावशाली हो, इसलिए दुर्बलों को दु
मत दो । नहीं तो तुम दुर्बलों को आंखों से जल जाओगे
जैसा अग्नि लकड़ी को जलाती है।

मा तात सम्पद्याममयमारूढोऽस्मीति विश्वसीः ।
दुरारोहपरिभ्रंशविनिपातो हि दारुणः ॥१००॥

भाई ! तुम सम्पत्तियों के शिखर पर चढ़े हो, इस बात
का विश्वास मत करो । क्योंकि अधिक ऊँचे चढ़ने वालों का
पतन बड़ा भयानक होता है ।

यं प्रशसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥१०१॥

धूर्त लोग जिसकी प्रशंसा करें, खुशामदी चारण जिसकी
प्रशंसा करें और रंडियाँ जिसकी प्रशंसा करें, वह मनुष्य
अधिक काल तक नहीं जीता ।

वैरमादौ समुत्पाद्य यः कश्चित्संधिमिच्छति ।
मृण्मयस्येवभग्नस्य संधिस्तस्य न विद्यते ॥१०२॥

जो मनुष्य पहिले शत्रुता करके पुनः संधि करना चाहता
मिट्टी के घड़े के समान उसकी संधि नहीं होती ।

कौर्मसंकोचमादाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
काले काले तु मतिमानात्तिष्ठेत्कृष्णसर्पवत् ॥१०३॥

कछुए के समान नम्रता धारण कर मारों को भी सह लेना चाहिए। पर समय आने पर बुद्धिमान को चाहिए कि वह सर्प के समान उठ खड़ा हो।

वहेदमित्रं स्कन्धेन यावत्कालस्य पर्ययः।
अथैनमागते काले भिन्द्याद्घटमिवाश्मनि ॥१०५॥

शत्रु को तब तक कन्धे पर रखना चाहिए जब तक अपना अवसर न आवे। समय आने पर इसको पटक कर तोड़ डाले, जैसे पत्थर पर पटक कर घड़ा फोड़ दिया जाता है।

तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥१०६॥

भय से तभी तक डरना चाहिये जब तक वह सामने न आवे। भय के समीप आने पर निर्भय होकर उसका सामना करना चाहिए।

योऽरिणा सह संधाय सुखं स्वपिति विश्वसन्।
स वृक्षाग्रे सुप्तइव पतितः प्रतिबुध्यते ॥१०७॥

जो शत्रुओं से संधि करके विश्वासपूर्वक सुख से सोता है, वह पेड़ के अग्रभाग में सोये हुए के समान, अरर धड़ाम हो के जगता है।

सकृद्दुष्टस्तु यः कश्चिन्मित्रः संधानमिच्छति।
स मृत्युमुपगृह्णाति गर्भमश्वतरी यथा ॥१०८॥

एक बार जिससे विरोध हो गया है, जो मनुष्य पुनः उससे संधि करने की इच्छा करता है, वह अपनी मृत्यु को बुलाता है। जिस प्रकार खच्चरी गर्भ धारण करती है।

नात्यन्तसरलैर्भाव्यं गत्वा पश्य वने तरून्।
छिद्यन्तेसरलास्तत्र कुब्जाः सन्ति पदे पदे ॥१०९॥

अत्यन्त सरल नहीं होना चाहिए, यदि अत्यन्त सरलता के दोषों को देखना चाहते हो तो वन में आकर वृक्षों को देखो। वहाँ सरल वृक्ष काटे जाते हैं और टेढ़े-मेढ़े फैले हुए हैं।

यस्य चाप्रियमान्विच्छेद्तस्य ब्रूयात्सदा प्रियम्।
व्याधा मृगवधं कर्तुं मदा गायन्ति सुस्वरम् ॥११०॥

यदि तुम किसी को अप्रिय करने की इच्छा रखते हो, तो सदा उससे मीठी बातें बोला करो। क्योंकि हिरनों के मारने के लिए व्याध वंशी बजाया करते हैं।

ऋणशेषोऽग्निशेषश्च शत्रुशेषस्तथैव च।
पुनः पुनः प्रवर्त्तन्ते तस्मान्निःशेषमाचरेत् ॥१११॥

ऋण का शेष, अग्नि का शेष और शत्रु का शेष यह पुनः पुनः बढ़ा करते हैं। अतएव इनका शेष न छोड़े।

नहि कश्चित् कृतेकार्ये कर्त्तारं समवेक्षते।
तस्मात्सर्वाणि कार्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥११२॥

काम के हो जाने पर कोई भी कर्ता की ओर नहीं देखता। अतएव कार्यों को समाप्त न करना चाहिए, कुछ थोड़ा शेष भी रखना चाहिए।

नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया।
वह्निरल्पोऽपि संवृद्धः कुरुते भस्मसाद्वनम् ॥११३॥

तिरस्कार की दृष्टि से छोटे शत्रु की भी उपेक्षा विद्वानों को नहीं करनी चाहिए। आग की एक चिनगारी भी बढ़कर समूचे जंगल को जला देती है।

आदरात्संगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनेव कण्टकम् ॥११४॥

आदर पूर्वक अपने शत्रु को वश में करके उसके द्वारा दूसरे शत्रु का नाश करना चाहिए। जिस प्रकार पैर में गड़े काँटे को, निकालने के लिये दूसरा काँटा हाथ में लिया जाता है।

केचिदज्ञानतो नष्टाः केचिन्नष्टाः प्रमादतः ।
केचिज्ज्ञानावलेपेन केचिन्नष्टैस्तु नाशिताः ॥११५॥

कुछ लोग अज्ञान से नष्ट हुए और कुछ लोग प्रमाद से, और कुछ लोगों को नष्टों ने नष्ट किया।

पण्डिते न विरुद्धः सन्दूरेस्मीति न विश्वसेत् ।
दीर्घौ बुद्धिमतोबाहू याभ्यां दूरे हिनस्ति सः ॥११६॥

पंडितों से विरोध करके इस बात के विश्वास से नहीं भूलना चाहिए कि मैं अपने विरोधी से दूर रहता हूँ, क्योंकि बुद्धिमानों की बाँह लम्बी होती है जिनसे वे दूर से भी मार गिराते हैं।

चतुरः सृजतारात्रन्नुपायांस्तेन वेधसा ।
न सृष्टःपंचमः कोपि गृह्यन्ते येनयोषितः ॥११७॥

महाराज ब्रह्मा ने केवल चारही उपाय बनाये हैं। उसने पाचवाँ कोई उपाय नहीं बताया जिससे स्त्रियां वश में की जांय।

अपि कुंजरकर्णाग्रादपि पिप्पलपल्लवात् ।
अपि विद्युद्विलसिताद्विलोलं ललनामनः ॥११८॥

हाथी के कानों से, पीपल के पत्तों से और बिजली की चमक से भी बढ़ कर स्त्रियों का मन चञ्चल होता है।

सा भार्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यत्र निर्वृतिः ।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीवति ॥११९॥

भार्या वह है जो प्रिय बोलती है, पुत्र वह है जि
कार्यों से पिता को सन्तोष हो, मित्र वह है जिस
विश्वास हो और देश वही है जहाँ जीविका हो।

नित्यं प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्ये च दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया नित्यं चामुक्तहस्तया ॥१२०॥

स्त्रियों को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, अपने गृहका
सावधान रहना चाहिए, अपने घर की वस्तुओं को स्व
रखना चाहिए और समझबूझ कर खर्च करना चाहिए।

स्त्रियः सेवेत नात्यन्तं मिष्टं भुञ्जीत नाहितम् ।
अस्तब्धः पूजयेन्मान्यान्सेवेतामायया गुरून् ॥१२१॥

स्त्रियों का अधिक सङ्ग नहीं करना चाहिए, अधि
मिठाई खाना भी हितकारी नहीं, तत्पर होकर माननीयों
सेवा करे और छल रहित होकर गुरुओं की सेवा करे।

नचेर्ष्या स्त्रीषु कर्तव्या दाराश्चरक्ष्याः प्रयत्नतः ।
अनायुष्या भवेदीर्ष्या तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥१२२॥

स्त्रियों से ईर्ष्या न रखे, बड़े प्रयत्न से उनकी रक्षा करे
ईर्ष्या से आयु क्षय होता है, इसलिए ईर्ष्या छोड़ देनी चाहिए

सूक्ष्मेभ्योपि प्रसङ्गेभ्यः स्त्रियो रक्ष्याः सर्वदा ।
द्वयोर्हि कुलयोर्दोषमावहेयुररक्षिताः ॥१२३॥

थोड़ी थोड़ी बातों की ओर से भी स्त्रियों की रक्षा करनी
चाहिए, क्योंकि बिना रक्षा किये वे दोनों कुलों को कलङ्कि
कर देती हैं।

यदैव भर्त्ता जानीयान्मन्त्रमूलपरां स्त्रियम् ।
उद्विजेत तदैवास्याः सर्पाद्वेश्मगतादिव ॥१३३॥

पति को जिस समय यह मालूम होता है कि मेरी स्त्री मेरे वश करने के लिए मन्त्र और औषधियों का प्रयोग करती है, उसी समय वह घबड़ा जाता है, जैसे घर में के साँप से गृहवासी घबड़ा जाते हैं।

नास्ति यज्ञः स्त्रियः कश्चिन्न व्रतं नोपवासकः ।
पतिं शुश्रूषते यत्ता तेन स्वर्गे महीयते ॥१३४॥

स्त्रियों के लिए कोई यज्ञ नहीं, कोई व्रत नहीं और न कोई उपवास ही है। स्त्रियाँ अपने पति की सेवा करती हैं इसलिए उन्हें स्वर्ग मिलता है।

पानमक्षास्तथा नार्यो मृगयागीतवादिते ।
एतानि युक्तया सेवेत प्रसङ्गो ह्यत्र दोषवान् ॥१३५॥

शराब, जूआ, स्त्रियाँ, शिकार, गाना, बजाना, बुद्धिपूर्वक इनका उपयोग करे, क्योंकि इनमें अधिक आसक्ति से हानि होती है।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः ।
न ते भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ॥१३६॥

जिसकी प्रसन्नता का कोई फल न हो और जिसका क्रोध भी निरर्थक हो; उसको कोई भी अपना प्रभु नहीं बना सकता। जिस प्रकार स्त्रियां नपुंसक को पति बनाना नहीं चाहतीं।

व्रजत्यधोधो यात्युच्चैर्नरः स्वैरेव कर्मभिः ।
खनितेव हि कूपस्य प्रासादस्येव कारकः ॥१३७॥

मनुष्य अपने कर्मों से ऊँचे चढ़ता है और नीचे जाता है, कुआँ खोदने वाला नीचे और अटारी बनाने व ऊपर जाता है

अनवसरमुक्तं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमपमानं च केवलम् ॥१३८॥

बिना अवसर की बात यदि बृहस्पति भी कहे तो लोग उ को मूर्ख समझते हैं और उनका तिरस्कार करते हैं।

किं करिष्यत्यपात्राणामुपदेष्टा सुवागपि।
तस्यतीक्ष्णः कुठारोऽपि दुर्दारुणि विहन्यते ॥१३९॥

सुन्दर वचन बोलनेवाला भी उपदेशक, अनधिकारियों के सामने क्या कर सकता है? बहुत तेजभी कुठार लकड़ियों को नहीं काट सकता।

यदन्धसार्थधर्मा वै प्रमाद्यति न तच्छलम्।
धर्मं दृष्टापमन्धानां यत्स्खलन्ति स्खलेष्वपि ॥१४०॥

धर्म तत्व न जाननेवाला आदमी यदि गलती क यह उसका छल नहीं, क्योंकि न देखना ही अंधों का धर्म

६

शिवस्वामी।

ये कवि काश्मीरस्वामी थे। काश्मीर के राजा अव वर्मा के राज्य-समय में ये थे।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥

राजा अवन्ति वर्मा के समय में मुक्ताकण, शिवस्वामी, आनन्दवर्धन और रत्नाकर ये कवि वर्तमान थे। राजा अवन्ति वर्मा ने ८५५ ई० से ८८४ ई० तक काश्मीर का राज्य किया था। राज-तरङ्गिणी से इसका पता मिलता है। शिवस्वामी का भी यह समय मिलता है।

शिवस्वामी के किसी ग्रन्थ का पता नहीं मिलता, पर इनका कोई ग्रन्थ होगा अवश्य। इनकी कविता बड़ी अच्छी है, उसमें काव्य के गुण वर्तमान हैं। सुभाषित ग्रन्थों से उद्धृत कर शिवस्वामी के कुछ पद्य यहाँ लिखे जाते हैं।

रूक्षं विरौति परिकुप्यति निर्निमित्तं
स्पर्शेन दूषयति वारयति प्रवेशम् ।
छन्नाकरं दशति नैव च तृप्यतीति
कौलेयकस्य च खलस्य च को विशेषः ॥१॥

कुत्ता और खल इनमें क्या भेद है? दोनों की बोली कठोर है, दोनों ही बिना कारण क्रोध करते हैं, दोनों के स्पर्श करने से दोष होता है, दोनों ही रास्ता रोकते हैं, बुरी तरह काटते हैं और तृप्त नहीं होते।

स्वच्छाम्भांसि पयांसि भङ्गविलसद्दुग्धा बिसग्रन्थयः
स्फीतास्तामरसासवा विहरणक्रीडामहः सैकतम् ॥
सन्त्येव प्रतिदेशमत्र विषमे हे हंस पङ्काहिते
पल्वल्क इयके अरस्मिन्नपि मे कोऽपि निवासाग्रहः ॥२॥

हे हंस, प्रत्येक दिशा में मुक्ता के समान स्वच्छ जल है, तोड़ने पर दूध के समान कमल नाल हैं, उत्तम कमल का मधु है, विहारक्रीड़ा के लिए रेतीला मैदान है, फिर हंस,

सूर्य अस्त हो गया, अब तुम भी अपनी सहचरी के पास जाओ। भाई आनन्द पूर्वक सोओ, हे काम, तुमने सज्जन का न किया। जब मैं रो रही थी स्नेह से मेरी आँखें जब आयी थीं, उस समय जो निर्दय चला गया वह तुम्हारे लाप के समय कैसे आ सकता है।

दशापयन्त्या दयितस्य दूतीं बध्वा विभूषां च निवेशयन्त्याः ॥
प्रसन्नता कापि मुखस्य यत्ते वेषधिया नु प्रिय वार्तया नु ॥६॥

प्रिय की दूती से बातें भी करती थी और अपना शृङ्गार कर रही थी, उस समय उसके मुख पर प्रसन्नता दिखायी दी, वह प्रसन्नता शृङ्गार के कारण हुई या प्रिय की बातों के रण हुई, मालूम नहीं।

मोक्तुं भट्ट्या मुखे कुटिलबिसलताकोटिमिन्दोर्वितर्कात्
ताराकारांस्तुषार्तो न पिबति पयसः स्थूलबिन्दून्दलस्थान् ॥
छायां सध्वान्तसन्ध्येत्यलिकुलशबलां वेत्ति चाम्भोरुहाणां
कान्ता विश्लेषभीरुर्दिनमपि रजनीं मन्यते चक्रवाकः ॥७॥

टेढ़ी कमलडंडी को खाने के लिए तोड़ता है, पर न्द्रमा समझ कर उसे छोड़ देता है, यद्यपि प्यासा है तथापि मल पत्र पर पड़े हुए जल के बड़े बड़े बिन्दुओं को तारा मझकर नहीं पीता है, भ्रमर समूह युक्त कमल की छाया अन्धकारमयी सन्ध्या समझता है, इसी प्रकार कान्ता के योग से डरनेवाला चक्रवाक दिन को भी रात समझता है।

समजनि न तासेम स्पर्शं यदपदवीष्वया
स्मरसुलमर्थी मासादीप्यां विना कल्पेन वा,
मनसु कलहः मोऽप्यैर्यं यः प्रसादनवर्जितः
प्रमदनविधिर्नातो बाला न येन विलिज्जिरे ॥८॥

शीला भट्टारिका।

ये स्त्री कवि हैं। इन्होंने कोई ग्रन्थ बनाया है कि नहीं, इसका पता नहीं। पर इनकी प्रशंसा में राजशेखर ने जो श्लोक कहा है उससे ये कवि थीं, इनकी कविता उत्तम होती थी, यह बात मालूम होती है। राजशेखर ने लिखा है—

> शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरुच्यते।
> शिला भट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥

शब्द और अर्थ दोनों का बराबरी विन्यास करना पाञ्चाली रीति कही जाती है, वह यदि शिला भट्टारिका के वचन में या बाणभट्ट की उक्ति में हो। इस श्लोक से मालूम होता है कि महाकवि राजशेखर इनको किस दृष्टि से देखते थे।

शार्ङ्गधर पद्धति में एक श्लोक इनके और भोजराज के नाम से उद्धृत है, वह श्लोक इस प्रकार है—

> इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
> यदिह जरास्वपि मान्मथा विकारा,
> यदपि च न कृतं नितम्बिनीनां
> स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा।

इस श्लोक के पहले दो चरण शीलाभट्टारिका के हैं और दूसरे दो चरण भोजदेव के। इससे ये भोजराज के समय में थीं, यह निश्चित होता है।

इनका नाम केवल शीला है। किसी राजकुल में उत्पन्न होने के कारण या राजोचित सम्मान पाने के कारण भट्टारिका

१ स्थैर्यविचार प्रकरण, २ विनयप्रशस्ति, ३ खण्ड खण्ड खाद्य, ४ गौडोर्वीशकुल प्रशस्ति, ५ अर्णव, वर्णन ६ छन्द प्रशस्ति, ७ शिवशक्तिसिद्धि, ८ नवसाहसांकचरित चम्पू आदि।

डा० व्यूलरने श्रीहर्ष का समय ११६३ से, ११७४ तक बतलाया है। यह बात ठीक भी मालूम पड़ती है, क्योंकि इन्होंने गौड़राज विशेषकर विजयसेन की प्रशस्ति लिखी है, इनका भी यही समय है।

श्रीहर्ष के पिता का नाम श्रीहीर और माता का नाम मामल्लदेवी था। नैषधीयचरित के अन्त में इन्होंने अपने विषय में "ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्" लिखा है; अर्थात् जो कान्यकुब्जेश्वर से दो बीड़ा पान और आसन पाता था। यह इनकी प्रतिष्ठा की बात थी। राजशेखर कहते हैं कि श्रीहर्ष जयन्तचन्द्र के समकालीन थे।

ये बड़े ही बुद्धिमान् और विद्वान् कवि थे। भाषा पर इनका एकच्छत्र अधिकार था। इनका नैषधीयचरित एक मान्य काव्य समझा जाता है, इसका संस्कृतज्ञों में अच्छा आदर है।

द्विजपतिग्रसनाहितपातकप्रभवकुष्ठसितीकृतविग्रहः।
विरहिणीवदनेन्दुजिघत्सया स्फुरति राहुरयं न निशाकरः ॥१॥

विरहिणी का प्रलाप। दमयन्ती चन्द्रमा को देखकर कहती है, यह चन्द्रमा नहीं है, यह राहु है। चन्द्रमा का ग्रास करके जो पाप इसने अर्जन किया है, उसीसे इसके समस्त शरीर में कुष्ठ रोग उत्पन्न हो गया है, जिससे इसका शरीर

श्वेत हो गया है। अब यह वियोगिनी स्त्रियों के मुखचन्द्र को ग्रसना चाहता है।

वद विधुन्तुदमालि मदीरितैस्त्यजसि किं द्विजराजभिया रिपुम्।
किमु दिवं पुनरेति यदीदृशः पतित एष निषेव्य हि वारुणीम् ॥२॥

हे सखी, मेरी ओर से जाकर तुम राहु से कहो कि तुम शत्रु को द्विजराज समझ कर क्यों छोड़ते हो? क्या यह पुनः स्वर्ग में जा सकता है? क्योंकि यह वारुणी के सेवन से पतित हो रहा है। वारुणी शराब को कहते हैं और पच्छिम दिशा को। चन्द्रमा पच्छिम दिशा में अस्त होता है, इसी बात को कवि ने वारुणी के साथ से चन्द्रमा का पतित होना बतलाया है। पतित के मारने में डर क्या? दमयन्ती ने इन उक्तियों से चन्द्रमा को मारने के योग्य सिद्ध किया।

स्वरिपुतीक्ष्णसुदर्शनविभ्रमात्किमु विधुं ग्रसते स विधुंतुदः।
निपतितं वदने कथमन्यथा बलिकरम्भनिभं निजमुज्झति ॥३॥

मालूम होता है कि राहु विष्णु के सुदर्शन चक्र के धोखे में आकर चन्द्रमा को नहीं निगलता अतएव। यह अपने मुंह में आये हुए को भी छोड़ देता है।

कुरु करे गुरुमेकमयोघनं बहिरितो मुकरं च कुरुष्व मे।
विशति तत्र यदैव विधुस्तदा सखि सुखादहितं जहि तं द्रुतम् ॥४॥

हे सखि अपने हाथ में हथौड़ा लो और सामने एक शीशा रक्खो। जब उस शीशे में चन्द्रमा घुसे तब उसको खूब मारो, क्योंकि यह शत्रु है।

उदयमा न पृथुर्दव पुष्पवा विरहजैव पृथुर्यदि मेदूशाम्।
स्वयमाशु विशन्ति कर्थक्रियः नियमपापुमुरासितुमुदराः ॥५॥

ती आंखों को प्रसन्न करो, अर्थात् खञ्जन के समान सुन्दर
हारे नेत्रों को ऐसी ही अच्छी चीज़ देखनी चाहिए।

एतस्य सावनिभुजः कुलराजधानी
काशी भवोत्तरणधर्मतरिः स्मरारेः।
यामागता दुरितपूरितचेतसोऽपि
पापं निरस्य चिरजं विरजीभवन्ति ॥१७॥

इनकी कुल-राजधानी काशी है, जो महादेव की संसार-
ने के लिए धर्मनौका है, जहां पापपूरित मनुष्य आकर
पाप-रहित होकर रजोगुण-रहित हो जाता है।

आलोक्य भाविविधिकर्तृकलोकसृष्टि-
कष्टानि रोदिति पुरा कृपयैव रुद्रः।
नामेच्छयेति विषमागमधत्त यत्तां
संसारतारणतरीमसृजत्पुरीं सः ॥१८॥

पहले के समय महादेव ने ब्रह्मा की लोकसृष्टि में होनेवाले
ष्टों का विचार करके रोदन किया था—रुद्र नाम प्राप्ति की
च्छा से उन्होंने रोदन किया था, यह केवल बहाना है, क्योंकि
न्होंने संसार से तारण करने वाली नौकारूपी पुरी उन्होंने
नायी।

वाराणसी निविशते न वसुंधरायां
तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्तिः
स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदे तु कीदृक् ॥१९॥

काशी में रहनेवालों का निवास पृथिवी में नहीं, किन्तु
देवताओं के लोक में उनका वास है; अतएव वहां शरीर
छोड़नेवालों की मुक्ति होती है, यदि स्वर्ग से बढ़कर पद
मिलता है, तो इससे बढ़कर प्रसन्नता की बात क्या होगी।

सायुज्यमृच्छति भवस्य भवाब्धियाद-
स्त्रीं पत्युरेत्य नगरीं नगराजपुत्र्याः
भूताभिधानपटुमप्यतनीमवाप्य
भीमोद्भवे भवति भावमिवास्तिधातुः ॥२०॥

हे भैमि, संसार समुद्र का जन्तु पार्वती के पति महादेव की नगरी में आकर उनमें मिल जाता है, क्योंकि यह तारक ब्रह्म का उपदेश देती है, जिस प्रकार भूतकाल कहनेवाली विभक्ति में अस् धातु का रूप भव हो जाता है।

निर्विश्य निर्विशति काशिनिवासिभोगा-
न्निर्माय नर्म च मिथो मिथुनं यथेच्छम् ।
गौरीगिरीशघटनाधिकमेकभावं
शर्मोर्मिकञ्चुकितमञ्चति पञ्चतायाम् ॥२१॥

काशी में रहनेवाला दम्पती परस्पर इच्छापूर्वक भोगों को भोगकर और यथेच्छ क्रीड़ा करके देहान्त के समय गौरी और महादेव के एकीभाव से भी अधिक कल्याण परम्परा से युक्त अभेद भाव का अनुभव करता है।

न श्रद्दधासि यदि तन्मम मौनमस्तु
कथ्या निजास्तमयैव तवानुभूत्या ।
न स्यात्कनीयसितरा यदि नाम काश्या
राजन्वती मुदिरमण्डनधन्वना भूः ॥२२॥

यदि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करती हो तो मैं चुप हो जाती हूँ, तुम्हारा अपना अनुभव ही तुम्हें कहे, इन्द्र के द्वारा पालित होनेवाली अमरावती काशी से छोटी है कि नहीं।

ज्ञानाधिकासि सुकृतान्यधिकासि कुर्याः
कार्यं किमन्यकथनैरपि यत्र मृत्योः
एकैजनाय सततामयदानमन्य-
दन्ये वहत्यमृतमग्नमवारितार्थि ॥ २३ ॥

तुम ज्ञानी हो, तुम्हारा ज्ञान अधिक है, तुम काशी में
ण्य कर्मों को करो। अधिक क्या कहा जाय जहाँ मृत्यु से
दा मनुष्यों के लिए अभयदानरूपी मोक्षसत्र (दानशाला)
लता है, और दूसरा जहां से अर्थी विमुख होकर नहीं
टते वैसी अमृत जल की गङ्गा वहती है।

सुबन्धु ।

वासवदत्ता नाम की एक आख्यायिका इन्होंने गद्य में
लखी है। संस्कृत में गद्यकाव्य लिखनेवाले कवियों का बड़ा
ी अभाव है। दो ही तीन गद्यकाव्य लेखक संस्कृत में पाये
ाते हैं, उन्हीं में एक सुबन्धु भी हैं। सुबन्धु बाणभट्ट से पहले
ः कवि हैं। आश्चर्य होता है इस कवि के साहस पर, क्योंकि
ुबन्धु जिस समय थे, उस समय गद्यलेखकों का बिलकुल
ाभाव ही था। उस समय संस्कृत काव्य बनाये जाते थे,
र पद्य में, गद्य में नहीं। ऐसे समय में गद्य लिखना
ावश्य ही साहस की बात है। महाकवि सुबन्धु सरस्वती
ः बड़े भक्त थे। इनकी समझ थी कि मेरी कविताशक्ति
ारस्वती के प्रसाद से उत्पन्न हुई है। यह बात इन्होंने स्वयं
ापनी वासवदत्ता की प्रस्तावना में लिखी है—

सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥

सुजनों के मित्र सुबन्धु ने सरस्वती के दिये हुए वरप्रस से एक निबन्ध बनाया जिसका प्रत्येक अक्षर श्लेषमय है राधमुख सुबन्धु ने अपने निबन्ध के लिए जैसा लिखा है वैसा ही है। इनके विषय में बाणभट्ट ने अपने हर्षचरि नामक गद्यकाव्य में लिखा है –

कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया,
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥१॥

वासवदत्ता से अवश्य ही कवियों का अभिमान नष्ट हो गया, जिस प्रकार शक्ति के कर्ण के अधीन होने पर पाण्डवों का गर्व नष्ट हो गया था। सुबन्धु ने अपनी वासवदत्ता में बौद्धसंगति नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है, इस ग्रन्थ के कर्ता धर्मकीर्ति नामक एक बौद्ध पण्डित थे। ये धर्मकीर्ति ५५० ई० के लगभग हुए थे, इससे इनका समय भी पांच सदीका प्रारम्भ भाग मानना चाहिए। पर इस विषय में म भेद है, कुछ लोगों का कहना है कि वासवदत्ता की [illegible] पुस्तक में "वररुचिभागिनेय महाकवि सुबन्धु विरचिता लिखा है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये कवि वररुचि [illegible] भांजे थे। ये वररुचि विक्रमादित्य के समकालीन थे। वास वदत्ता में विक्रमादित्य का उल्लेख भी मिलता है। इनके कुछ श्लोक सुनिये।

भवति सुभगत्वमधिकं विस्तारितपरगुणस्य सुजनस्य ।
वहति विकासितकुमुदो द्विगुणरुचिं हिमकरोद्योतः ॥१॥

जो दूसरों के गुणों को फैलाते हैं, जो खुलकर परगुण कीर्तन करते हैं, वे सुजन हैं, उनकी रमणीयता और भी

धिक होती है, इस कारण—दूसरों के गुण वर्णन करने के
ारण अपनी छोटाई होगी इस प्रकार की शङ्का निर्मूल है।
न्द्रमा की किरणें कमलों (कुमुद) को विकसित करती
इससे उनकी शोभा और बढ़ती ही है।

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्तिः परत एव संभवति ।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात् ॥२॥

गुणियों को भी अपने रूप का ज्ञान दूसरों के द्वारा हो
ता है। वे स्वयं अपने गुणों को नहीं जान सकते, नेत्र
पने गौरव का अनुभव तब तक नहीं कर सकते, जब तक
उनके सामने दर्पण न रखा जाय।

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः ।
यदयं नकुलद्वेषी सकुलद्वेषी सदा पिशुनः ॥३॥

विद्वानों का यह कहना झूठ नहीं है कि खल सर्प से भी
ढ़कर भयानक हैं। क्योंकि सर्प नकुल द्वेषी है (कुलसे न
ष करनेवाला, अथवा नेवले से द्वेष करनेवाला है) पर चुगल-
र कुल द्वेषी है। यह अपने कुल का ही नाश करता है।

अतिमलिने कर्तव्ये भवति खलानामतीव निपुणा धीः ।
तिमिरे हि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ॥४॥

नीचकर्म करने में खलों की बुद्धि बड़ी ही तेज हुआ
रती है। देखिए न उल्लुओं की आँखें अंधेरे में ही रूप
खा करती हैं।

विकसत्तरगुणानां भवति खलानामतीव मलिनत्वम् ।
अन्तरितशशधरामपि सलिलमुचां मलिनिमाभ्यधिकः ॥५॥

खल पड़े ही मलिन होते हैं, वे दूसरों के गुणों पर कालिमा पोता करते हैं। मेघ चन्द्रमा को अपने पेट में छिपा लिया करता है, पर इससे उसकी कालिमा घटती नहीं किन्तु बढ़ती ही है।

> हस्त इव भूतिमलिनो लंघयति यथा यथा खलः सुजनम्।
> दर्पणमिव तं कुरुते तथा तथा निर्मलच्छायम् ॥६॥

दुर्जन मनुष्य सज्जनों को बदनाम करने का—उनको नीचा दिखाने का ज्यों ज्यों प्रयत्न करता है त्यों त्यों वे अधिक उज्ज्वल होते जाते हैं, जिस प्रकार दर्पण पर राख लिपटा हुआ हाथ ज्यों ज्यों फेरा जाय, त्यों त्यों वह अधिक उज्ज्वल हो जाता है।

> सुराणां पातासौ स पुनरतिपुण्यैकरसिको,
> बृहस्तस्यास्थाने गुरुरुचितमार्गे स निरतः
> करास्तस्यात्यन्तं स्थशनिशतकोटिप्रणयिनो
> स सर्वस्वं दाता तृणमिव सुरेशं विजयते ॥७॥

यह देवताओं की रक्षा करता है, यह नितान्त पुण्य का प्रेमी है, उसकी सभा में बृहस्पति हैं, वह सदा उचित मार्ग में निरत है, उसके हाथ करोड़ों से प्रेम करनेवाले हैं, वह अपना सर्वस्वदान करता है। इस प्रकार वह इन्द्र को भी जीत लेता है।

सोमदेव भट्ट

इन्होंने " कथासरित्सागर " नाम की एक पुस्तक लिखी है। यह कथासरित्सागर गुणाढ्य की बृहत्कथा के आधार

पर लिखा गया है। गुणाढ्य की बृहत्कथा पैशाची भाषा में लिखी गयी थी और वह सात लक्ष श्लोकों में समाप्त थी। उसका पढ़ना और समझना कठिन था इसलिए सोमदेव ने संस्कृत भाषा में कथासरित्सागर बनाया। अनुष्टुप छन्द में यह ग्रन्थ लिखा गया है, बड़ा है, यह कथा-ग्रन्थ है, काव्य के लक्षण इसमें नहीं मिलते। अतएव संस्कृत के कवियों की श्रेणी में इनका कोई ऊंचा स्थान नहीं है।

ये कश्मीर के निवासी थे और कश्मीर के राजा अनन्तदेव के दरबार में रहते थे, अनन्तदेव की रानी का नाम सूर्यवती था और सूर्यवती की प्रसन्नता के लिए ही इन्होंने कथासरित्सागर का निर्माण किया है। राजतरङ्गिणी से मालूम होता है कि ९५५ शक के पश्चात् अनन्तदेव कश्मीर का राजा हुआ अतएव सोमदेव का भी यही समय मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। इनके कुछ श्लोक नीचे उद्धृत किये जाते हैं।

उन्मुक्तमानकलहा रमध्वं दयितान्विता
इतीव मधुरालापा कोकिला जगदुर्जनान्।

मान कलह का छोड़कर प्रिय के साथ रमण करो, यही बात कोकिल मधुर शब्दों में लोगों से कह रही है।

विधुरप्यर्कति चन्दनमनलति मित्राण्यपि रिपवन्ति।
विधुरे वेधसि खिन्ने चेतसि विपरीतानि भवन्ति॥

भाग्य के विपरीत होने पर, हृदय के खिन्न होने पर चन्द्रमा सूर्य के समान हो जाता है, चन्दन अग्नि के समान हो जाता है और मित्र शत्रु के समान हो जाते हैं।

पुरा नदीनां पुष्पाणि वृक्षाणि शशिनः कलाः
क्षीणानि पुनरायान्ति यौवनानि न देहिनाम्।

नदी की धारा पुनः आती है, वृक्षों में फूल भी लगते ही रहते हैं, चन्द्रमा की कला क्षीण होकर पुनः बढ़ती है, पर शरीर धारियों की गयी जवानी नहीं लौटती।

यत्कर्म बीजमुप्तं येन पुरा निश्चितं स तद् भुङ्क्ते।
पूर्वकृतानि हि भवतो निखिलानि न कर्तुमन्यथा शक्यः।

पूर्व जन्म में जिसने जैसा कर्म किया है अवश्य ही उसको उसका फल भोगना पड़ता है, पूर्व जन्म के कर्मों के फल भी उलट नहीं सकते।

अतीवकर्कशा स्तब्धाः हिंस्रैर्जन्तुभिरावृता
दुराराध्याश्च विषमा ईश्वराः पर्वता इव।

धनी पर्वत के समान होते हैं, दोनों ही बड़े कठिन और स्तब्ध (अचल) होते हैं, दोनों ही हिंस्र प्राणियों (क्रूर मनुष्य या पशु) से युक्त होते हैं और इनकी आराधना भी बड़ी ही कठिन होती है।

आगच्छन्सूचितो येन येनानीतो गृहं प्रति
प्रथमं सखि कः पूज्यः किं काकः किं क्रमेलकः।

हे सखि, बतलाओ, पहले किसकी पूजा की जाय, कौए की या ऊँट की, क्योंकि कौए ने पहले बोलकर पति के आने की सूचना दी है, और ऊँट उन्हें ले आया है। अब सूचना देनेवाले की पूजा की जाय या घर पर ले आनेवाले की।

हर्षदेव

ये राजा थे और कवि थे। नागानन्द, प्रियदर्शिका और रत्नावली ये ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं। बाण मयूर और

मातङ्ग दिवाकर इनके सभा-पण्डित थे यह बात राजशेखर के नीचे लिखे श्लोक से प्रमाणित होती है।

> अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातङ्गदिवाकरः
> श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥

वाग्देवी का प्रभाव विचित्र है, मातङ्ग (चाण्डाल) दिवाकर श्रीहर्ष की सभा का सभ्य हुआ सो भी बाण और मयूर की बराबरी का।

राजा श्रीहर्षदेव के विषय में कहा जाता है कि ये स्वयं कवि नहीं थे, किन्तु अन्य कवियों से ग्रन्थ बनवाकर इन्होंने अपने नाम से प्रकाशित किया है। इसके प्रमाण के विषय में एक श्लोक उद्धृत किया जाता है।

> हेम्नोभारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनाम्,
> श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत्
> या बाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
> स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाग् मन्ये परिम्लानताम्।

अर्थात् राजा श्रीहर्ष ने जो बाण को सोने के सौ भार दिये अथवा मतवाले हाथियों का दल दिया वह आज कहां है, पर बाण ने सुन्दर उक्तियों से श्रीहर्ष का कीर्तिगान किया है वह तो प्रलय तक भी म्लान नहीं होगा।

एक और श्लोक है जो इस बात के प्रमाण में उपस्थित किया जाता है, वह श्लोक यह है।

> हालेनोत्तमपूजया कविवृषः श्रीपालितो लालितः
> ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना
> श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्,
> सद्यः सत्क्रिययाभिनन्द च मतिं श्रीहारवर्षोऽग्रहीत्।

इस श्लोक में भी गणपति याम को श्रीहर्ष के द्वारा कविता का फल प्राप्त होने का उल्लेख है। इन श्लोकों के आधार पर श्रीहर्ष पर यह अभियोग लगाया जाता है कि उन्होंने कवियों द्वारा ग्रन्थ बनवाकर उनका प्रचार अपने नाम से किया, पर जिन प्रमाणों के आधार पर यह अभियोग लगाया जाता है, वे प्रमाण इतने पुष्ट नहीं हैं, जिनसे इस अभियोग की पुष्टि हो। ऊपर लिखे श्लोकों में केवल यही बात लिखी गई है कि बाणभट्ट को राजा श्रीहर्षदेव ने अपने की गान के उपलक्ष में पारितोषिक दिये बात ठीक है। व भट्ट ने श्रीहर्षचरित नामक गद्य काव्य बनाया है जि श्रीहर्ष का गुणगान है और उसीके उपलक्ष में उनको पा तोषिक भी मिला।

डा० ब्युलर ने राजा श्रीहर्षदेव को बाण और मयूर क आश्रयदाता लिखा है। इनकी रत्नावली नाटिका क एक श्लोक—

> उद्दामोत्कलिकां विपाण्डुररुचं प्रारब्धजृम्भां क्षणा-
> दायासं श्वसनोद्गमैरविरलैरातन्वतीमात्मनः
> अद्योद्यानलतामिमां समदनां नारीमिवान्यां ध्रुवम्
> पश्यन् कोपविपाण्डुरद्युति मुखं तस्याः करिष्याम्यहम्।

आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक नामक ग्रन्थ में उद्धृत किया है। इससे ये आनन्दवर्धन से पहले के सिद्ध होते हैं। ६०८ से ६५० के बीच इनका राज्यकाल है। हुएनसंग और यूरोपियन मिशनरी इनसे मिलने आये थे। दक्षिण-प्रान्त की इन्होंने यात्रा की थी और द्वितीय पुलकेशी को जीता था।

कुछ लोग कहते हैं कि धावक नाम के कवि से इन्होंने रत्नावली आदि ग्रन्थ बनवाये थे। पर यह कहना नितान्त अशुद्ध है, क्योंकि धावक कालिदास से भी प्राचीन हैं। कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में धावक कवि का नाम लिया है। ऐसी दशा में धावक का श्रीहर्ष के लिए ग्रन्थ बनाना कैसे सम्भव हो सकता है?

अशठमलोलमजिह्मं त्यागिनमनुरागिणं विशेषज्ञम्।
यदि नाश्रयति नरं श्रीः श्रीरेव हि वञ्चिता तत्र ॥१॥

जो शठ नहीं, चञ्चल नहीं, कुटिल नहीं, जो दाता है, अनुरागी है और विशेषज्ञ है, उस मनुष्य का यदि लक्ष्मी आश्रय न करें, तो समझना चाहिए कि यह लक्ष्मी का ही दुर्भाग्य है।

विधायापूर्वपूर्णेन्दु मस्यामुखमभूद्ध्रुवम्।
धाता निजासनाम्भोजविनिमीलनदुःस्थितः ॥२॥

ब्रह्मा इस नायिका का मुख अपूर्व पूर्णचन्द्र के समान बनाकर बड़ा ही दुःखी हुआ, क्योंकि उसे भय था कि कहीं वह कमल जिस पर मैं बैठा हूँ बन्द न हो जाय। चन्द्रमा के उदय से कमलों का बन्द होना संसार में प्रसिद्ध है।

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते
करिष्याम्येवं नो पुनरपि भवेदभ्युपगमः।
न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि हि ज्ञास्यसि मृषा
किमेतस्मिन्वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥३॥

भामिनी नायिका के प्रति कोई कह रहा है—यदि मैं कहूँ कि तुम खुश हो जाओ तो यह अनुचित है क्योंकि तुमने तो कोप नहीं किया है। बिना कोप के ऐसा कहना अच्छा नहीं।

विरहिणी स्त्रियों ने अपने कटाक्षरूपी अंगारों से चन्द्रमा को जलाया है और उसी व्रण का यह चिन्ह है ।

> अमुष्मै चौराय प्रतिनियतमृत्युप्रतिभिये
> प्रभुः प्रीतः प्रादादुपरितनपादद्वयकृते ।
> सुवर्णानां कोटीर्दशदशनकोटिक्षतगिरी
> करीन्द्रानप्यष्टौ मदमुदितगुञ्जन् मधुलिहः ॥७॥

इस चोर को--जिसके लिए मृत्युदण्ड नियत था—श्लोक के दो चरण बनाने के कारण प्रसन्न होकर महाराज ने दस कोटि सुवर्ण, आठ हाथी दिये । (ये श्लोक भोज प्रबन्ध में भोजदेव और चोर के कथोपकथन में उद्धृत हैं, पर सुभाषितावली में धोकर देव और चोर के नाम से लिखे गये हैं)।

> मुग्धे धानुष्कता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।
> यया विध्यसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः ॥८॥

मुग्धे, धनुष चलाने की तुम्हारी यह निपुणता अपूर्व है। जिससे गुणों (डोरी, या उत्तम गुण) से ही चित्त विंध जाता है, सायकों से नहीं ।

> मुग्धे न धार्यसे दातुमदत्तं नोपतिष्ठति ।
> अस्थास्नु यौवनमिदं चपलोदवतिष्ठति ॥९॥

मुग्धे, तुम देना नहीं चाहती, और बिना दिये प्राप्त नहीं होता । यह यौवन भी चञ्चल है, यह कैसे होगा ।

> प्रविशामि किमङ्गेषु भवती निगरामि किम् ।
> किं त्वत्कण्ठस्थापि न जाने करवाणि किम् ॥१०॥

क्या तुम्हारे अंगों में मैं प्रविष्ट हो जाऊँ या तुमको निगल जाऊँ ! बहुत दिनों पर तुम मिली हो, मालूम नहीं पड़ता कि मैं क्या करूँ ।

कौमुदी–कुञ्ज

(वक्रोक्ति)

कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेऽहं
केकामेकां वद पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे ।
मुग्धे स्थाणुः स चरति कथं जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥१॥

शिव और पार्वती की उक्ति प्रत्युक्ति। शिव जी की बातों का विपरीत अर्थ समझ कर पार्वती जी उनको उत्तर देती हैं। पार्वती ने पूछा, तुम कौन हो? शिव ने कहा, मैं शूली हूँ (शूल धारण करनेवाला)। पार्वती ने शूलरोगवाला अर्थ समझ कर के कहा, फिर वैद्य को ढूँढ़िए। शिव ने कहा, प्रिये मैं नीलकण्ठ हूँ। पार्वती ने नीलकण्ठ का मयूर अर्थ समझकर कहा, एक केका (मोर की बोली) बोलिए। शिव ने कहा, मैं पशुपति हूँ, पार्वती ने पशुपति का बैल अर्थ समझकर कहा, सींग तो दिखायी नहीं पड़ती। शिव ने कहा मैं स्थाणु हूँ। पार्वती ने स्थाणु का अर्थ बिना डालपात का वृक्ष समझकर कहा, यह चलने कब से लगा। शिव ने कहा मैं शिवा (पार्वती) का पति हूँ। पार्वती ने शिवा का सियारिन अर्थ समझकर कहा, फिर जंगल में जाइए। इस उत्तर से शिव जी चुप हो गये। ऐसे शिव आपकी रक्षा करें।

> उदयगिरिमूर्धं गोर्वं त्वद्वदनापहृतकान्तिसर्वस्वः ।
> फूत्कर्तु मिवोर्ध्व करः स्थितः पुरस्ताद्विशानायः ॥।

तुम्हारे मुखमण्डल से कान्ति चुरा कर य उदय गिरि के मस्तक पर बैठा है और आगे से फूत्क के लिए ही मानो इसने अपने कर (किरणें या हाथ किये हैं।

> प्रणयविशदां दृष्टिं वक्त्रे ददाति न शङ्किता
> घटयति घनं घण्टाश्लेषं न सान्द्रपयोधरा।
> वदति बहुशो गच्छामीति प्रयत्नधृताप्यहो।
> रमयतितरां संकेतस्था तथापि हि कामिनी ॥१२॥

शङ्कित होने के कारण प्रेमपूर्वक सामने नहीं और न दृढ़ आलिङ्गन ही करती है, प्रयत्न पूर्वक जाने पर भी बारबार "जाती हूँ, जाती हूँ" कहा फिर भी सङ्केत स्थान में आयी हुई कामिनी प्रस उत्पन्न करती है।

> दृष्टा दृष्टिमधोददाति कुरुते नालापमाभाषिता ।
> शय्यायां परिवृत्यतिष्ठति बलादालिंगिता वेपते ॥
> निर्यान्तीषु सखीषु वासभवनान्निर्गन्तुमेवेहते ।
> जाता वामतयैव मेऽद्य सुतरां प्रीत्यै नवोढा वधूः ॥१॥

देखने पर आंखें नीची कर लेती है, बातें कर बोलती नहीं, शयन में करवट बदल कर सोती है, बल आलिंगन करने पर कांपने लगती है, जब उसकी स घर से बाहर जाने लगती हैं, तो यह भी उनके साथ जाना चाहती है, इस प्रकार नयी वधू अपनी प्रतिकूल ही मेरी प्रसन्नता बढ़ा रही है।

कौमुदी–कुञ्ज

(वक्रोक्ति)

कस्त्वं शूली मृगय भिषजं नीलकण्ठः प्रियेहं
केकामेकां वद पशुपतिर्नैव दृश्ये विषाणे।
मुग्धे स्थाणुः स चरति कथं जीवितेशः शिवाया
गच्छाटव्यामिति हतवचाः पातु वश्चन्द्रचूडः ॥१॥

शिव और पार्वती की उक्ति प्रत्युक्ति। शिव जी की बातों का विपरीत अर्थ समझ कर पार्वती जी उनको उत्तर देती हैं। पार्वती ने पूछा, तुम कौन हो? शिव ने कहा, मैं शूली हूँ (शूल धारण करनेवाला)। पार्वती ने शूलरोगवाला अर्थ समझ कर के कहा, फिर वैद्य को ढूँढ़िए। शिव ने कहा, प्रिये मैं नीलकण्ठ हूँ। पार्वती ने नीलकण्ठ का मयूर अर्थ समझकर कहा, एक केका (मोर की बोली) बोलिए। शिव ने कहा, मैं पशुपति हूँ, पार्वती ने पशुपति का बैल अर्थ समझकर कहा, सींग तो दिखायी नहीं पड़ती। शिव ने कहा मैं स्थाणु हूँ। पार्वती ने स्थाणु का अर्थ बिना डालपात का वृक्ष समझकर कहा, वह चलने क्यों लगा। शिव ने कहा मैं शिवा (पार्वती) का पति हूँ। पार्वती ने शिवा का सियारिन अर्थ समझकर कहा, फिर जंगल में जाइए। इस उत्तर से शिव जी चुप हो गये। ऐसे शिव आपकी रक्षा करें।

बात है यदि तुम ईश्वर हो तो नंगे क्यों रहते हो और धूलि में सने हुए क्यों रहते हो ?

> पण्डितवादस्तव यदि लोकेऽहं त्र्यम्बको विदित एषः ।
> अम्बा ह्येकापि न ते प्रजल्पसि त्वं कुतस्तिस्रः ॥५॥

यदि तुम पण्डितों के समान बोलती हो, प्रकृति प्रत्यय के विभाग से अर्थ करती हो, तो समझ लो मैं त्र्यम्बक हूँ। पार्वती ने समझा कि त्र्यम्बक का अर्थ है तीन अम्बक (माता) वाला, और यही समझकर उन्होंने कहा, क्या बकते हो, तुम्हारी तो एक भी मा नहीं है, और तुम कहते हो तीन, यह कैसी बात !

> किं मे दुरोदरेण प्रयातु यदि गणपतिर्न तेभिमतः ।
> कः प्रद्वेष्टि विनायकमहिलोकः किं न जानासि ॥६॥

शिव ने कहा, मुझे दुरोदर (जूआ) से कोई मतलब नहीं। पार्वती ने दुरोदर का अर्थ समझा, बुरे पेटवाला अर्थात् गणेश और यही समझकर उन्होंने कहा, गणपति पसन्द न हो, तो वह यहां से चला जाय। शिव ने कहा, अजी, विनायक (गणेश) से कौन द्वेष करता है ? पार्वती ने विनायक का अर्थ समझा गरुड़ और उन्होंने कहा, गरुड़ से द्वेष करनेवाले सर्प हैं, क्या यह भी मालूम नहीं है ?

> चन्द्रग्रहणेन विना नास्मि रमे किं प्रवर्तयस्येवम् ।
> देव्यै यदि रुचितमिदं नन्दिन्नाहूयतां राहुः ॥७॥

शिव और पार्वती जूआ खेल रहे थे। शिवने चन्द्रमा को बाजी पर रखा, पार्वती जीत गयीं। शिवने कहा, फिर खेलो। तब पार्वती ने कहा, बिना चन्द्रमा को लिए मैं न खेलूंगी,

बोद्धारो मत्सरग्रस्ता विभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२॥

समझदार मनुष्य मत्सर से मरे जाते हैं, वे दूसरे की प्रशंसा सुन नहीं सकते और धनी दर्प से चूर हो रहे हैं, अन्य मनुष्य अज्ञानी हैं, उनको समझ नहीं है, ऐसी दशा में सुभाषित सूक्तियों को शरीर में ही पच जाना चाहिए, इनके उपयोग का कोई स्थान नहीं है।

बहूनि नरशीर्षाणि लोमशानि बृहन्ति च ।
ग्रीवासु प्रतिबद्धानि किंचित्तेषु सकर्णकम् ॥३॥

बड़े बड़े और बालवाले अनेक मस्तक लोगों के गले से जड़े हुए हैं। पर उनमें थोड़े ही ऐसे हैं जिनमें आकर्षकता हो।

ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः ॥४॥

वे वन्दनीय हैं, वे महात्मा हैं और संसार में उन्हीका यश स्थिर है, एक तो वे जिन लोगों ने काव्य बनाये हैं और दूसरे वे जिनका वर्णन काव्यों में किया गया है।

यास्यति सज्जनहस्तं रमयिष्यति तं भवेच्च निर्दोषा ।
उत्पादितयापि कविस्ताम्यति कन्यया दुहितेव ॥५॥

सज्जनों के हाथ में जायगी, उनको प्रसन्न करेगी, और निर्दोष साबित होगी, इसी प्रकार की चिन्ताओं से कविता करनेवाला कवि कन्या के पिता के समान सदा घुला करता है।

दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णं विशुद्धिमुपयाति ।
दर्शयितव्यं तस्मात्मत्सरिमनसः प्रयत्नेन ॥६॥

शब्दों से प्रकट होनेवाला अभिप्राय—जो केवल कोमल पदों में स्फुरित होता है उस अभिप्राय को शरीर के रोमांच के द्वारा जो कहते हैं पर शब्द के द्वारा नहीं, मुंह से एक शब्द तक नहीं निकालते ऐसों को केवल हाथ ही जोड़ना चाहिए।

चेतः प्रसादजननं विबुधोत्तमाना-
मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम्।
काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
पीयूषपानमिव वक्त्रविवर्ति राहोः ॥१०॥

सब रसों से युक्त और प्रसादगुणपूर्ण काव्य उत्तम विद्वानों को प्रसन्न करता है तथा आनन्दित करता है। पर दुर्जनों के हृदय में उस काव्य को स्थान नहीं मिलता, जिस प्रकार अमृत राहु के मुँह ही तक जाता है और मुँह ही में घूमा करता है। शरीर नहीं इसलिए और जाय कहाँ।

हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात्।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
क्रुद्धैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः ॥११॥

हे राजागण, कवियों की प्रेमपूर्ण कविता के प्रति आप लोग अपना विरोध छोड़ दें। आप लोगों की यह उज्ज्वल कीर्ति जो फैल रही है, वह कवियों ही की कृपा है। देखिए प्रसन्न होकर कवियों ने एक छोटे रघुकुल के स्वामी का बड़ा भारी चरित्र निर्माण किया और क्रोध करके त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण को तुच्छ बना दिया है।

शब्दों से प्रकट होनेवाला अभिप्राय—जो केवल कोमल पदों में स्फुरित होता है उस अभिप्राय को शरीर के रोमांच के द्वारा जो कहते हैं पर शब्द के द्वारा नहीं, मुंह से एक शब्द तक नहीं निकालते ऐसों को केवल हाथ ही जोड़ना चाहिए।

> चेतः प्रसादजननं विबुधोत्तमाना-
> मानन्दि सर्वरसयुक्तमतिप्रसन्नम् ।
> काव्यं खलस्य न करोति हृदि प्रतिष्ठां
> पीयूषपानमिववक्रविवर्ति राहोः ॥१०॥

सब रसों से युक्त और प्रसादगुणपूर्ण काव्य उत्तम विद्वानों को प्रसन्न करता है तथा आनन्दित करता है। पर दुर्जनों के हृदय में उस काव्य को स्थान नहीं मिलता, जिस प्रकार अमृत राहु के मुंह ही तक जाता है और मुंह ही में घूमा करता है। शरीर नहीं इसलिए और जाय कहाँ।

> हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
> शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात् ।
> तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
> क्रुद्धैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः ॥११॥

हे राजागण, कवियों की प्रेमपूर्ण कविता के प्रति आप लोग अपना विरोध छोड़ दें। आप लोगों की यह उज्ज्वल कीर्ति जो फैल रही है, यह कवियों ही की कृपा है। देखिए प्रसन्न होकर कवियों ने एक छोटे रघुकुल के स्वामी का बड़ा भारी चरित्र निर्माण किया और क्रोध करके त्रिभुवन को जीतनेवाले रावण को तुच्छ बना दिया है।

परश्लोकान्स्तोकाननुदिवसमभ्यस्य ननु ये
चतुष्पादीं कुर्युर्बहव इह ते सन्ति कवयः।
अविच्छिन्नोद्गच्छज्जलधिलहरीरीतिसुहृदः
सुहृद्या वैशद्यं दधति किल केषांचन गिरः॥१२॥

दूसरों के कतिपय श्लोकों को कण्ठस्थ करके चार प
के श्लोक बनानेवाले कवियों की कमी नहीं, वैसे कवि म
बहुत हैं। निरन्तर निकलनेवाली समुद्र की लहरियों
समान हृदय का वश करनेवाली और स्वच्छ वाणी किस
किसी को ही होती है।

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षेण समर्पितानि गुणिने बाणाय कुत्राद्य तत्।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिविसरैरुट्टङ्किताः कीर्तय-
स्ताः कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनाङ्मन्ये परिम्लानताम्॥११॥

राजा श्रीहर्ष ने गुणी बाण कवि को सैकड़ों तोले सुवर्ण,
मतवाले हाथियों का समूह दिया था, पर वे सब आज कहां
हैं, उनका पता नहीं। पर बाणभट्ट ने अपनी वाणी के द्वारा
उनकी कीर्तियां गुंफित की हैं वे तो प्रलय होने पर भी
मलिन नहीं हो सकती। धनियों को अपने धन दान का गर्व
नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका धन कुछ ही दिनों के लिए
है और कवियों की कविता चिरस्थायी है।

वल्मीकप्रभवेण रामनृपतिर्व्यासेन धर्मात्मजो
व्याख्यातः किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृपः।
भोजश्चित्तपबिल्हणप्रभृतिभिः कर्णोऽपि विद्यापतेः
ख्यातिं यान्ति नरेश्वराः कविवरैः स्फारैर्न भेरीरवैः॥१४॥

वाल्मीक कवि ने रामचन्द्र का वर्णन किया है, व्यासदेव ने युधिष्ठिर का वर्णन किया है, कालिदास कवि ने राजा विक्रमदेव का वर्णन किया है चित्तप और विल्हण आदि कवियों ने भोजदेव का वर्णन किया है, विद्यापति ने राजा कर्णदेव का वर्णन किया है। इस प्रकार राजाओं की प्रसिद्धि कवियों के द्वारा होती है, नगारा पीटने से नहीं।

परिश्रमज्ञं जनमन्तरेण
मौनव्रतं बिभ्रति वाग्मिनोपि।
वार्षयमाः सन्ति विना वसन्तं
पुंस्कोकिलाः पञ्चमचञ्चवोपि ॥१५॥

परिश्रम समझनेवाला मनुष्य यदि न मिले तो वक्ता भी मौन धारण कर लेते हैं। देखिए, पंचमराग गानेवाली कोयल भी जब तक वसन्त नहीं आता तब तक चुप रहती हैं।

सुभाषितेन गीतेन युवतीनां च लीलया।
मनो न भिद्यते यस्य स योगी ह्यथवा पशुः ॥१६॥

सुभाषित से, गान से, स्त्रियों के हावभाव से जिसका मन चंचल नहीं होता, वह योगी है या पशु।

स्निग्धं यापि सुभाषितेन रमते स्वीयं मनः सर्वदा
श्रुत्वान्यस्य सुभाषितं खलु मनः श्रोतुं पुनर्वाञ्छति।
अज्ञानज्ञानवतोऽप्यनेन हि वशीकर्तुं समर्थो भवे-
त्कर्तव्योऽपि सुभाषितस्य मनुजैरावश्यकः संग्रहः ॥१७॥

मन दुखी हो तो भी वह सुभाषित से प्रसन्न हो जाता है। दूसरों का सुभाषित सुन पुनः मन सुनना चाहता है, मूर्ख और पण्डित दोनों इसके द्वारा वश किये जा सकते हैं।

अर्थो गिरामपिहितः पिहितश्च कश्चि-
त्सौभाग्यमेति मरहट्टवधूकुचाभः ।
नान्ध्रीपयोधर इवातितरां प्रकाशो
नो गुर्जरीस्तन इवातितरां निगूढः ॥१८॥

शब्दों का अर्थ कुछ छिपा और प्रकाशित होने प
राष्ट्र स्त्रियों के कुच के समान प्रशंसा पाता है। आन्ध्र
के स्तन के समान बिलकुल प्रकाशित रहना भी अच्छा
और न गुर्जरी स्त्रियों के समान नितान्त छिपा ही हुआ

मिश्र ।

हेमकार सुधिये नमोस्तु ते
दुस्तरेषु बहुशः परीक्षितुम् ।
काञ्चनाभरणमश्मना समं
यत्त्वयैवमधिरोप्यते तुलाम् ॥१॥

हे स्वर्णकार, सोने के आभूषणों की परीक्षा करना कठिन
था, इस कारण आपने उसे पत्थर के साथ तराजू पर रख
दिया, आपकी इस बुद्धिमानी के लिए आपको नमस्कार।

सुवर्णकार श्रवणौ विभाति
वस्तूनि विद्धं सुमिरागतोनि ।
अथाऽपि माथाऽपि यदत्र पत्न्यां
पत्नीतनिर्धूमविदुरकर्णौ ॥२॥

हे सुवर्णकार, तुम कानों में पहनने के गहने लेकर यहाँ बेचने आये हो। मालूम होता है कि तुमने आज तक यह बात नहीं सुनी है कि इस गाँव के ठाकुर के कान अभी तक नहीं छेदे गये हैं।

काकः स्वभावचपलः परिशुद्धवृत्ति-
र्लब्ध्वा बलिं स्वजनमाह्वयते परांश्च ।
चर्मास्थिमांसवति हस्तिकलेवरेपि
श्वा द्वेष्टि हन्ति च पराकृपणस्वभावः ॥३॥

कौआ स्वभावतः चञ्चल होता है पर उसका स्वभाव अच्छा होता है, वह जब थोड़ी सी बलि पाता है तब अपनी जातिवालों तथा दूसरों को बुलाकर उसमें शामिल कर लेता है। पर कुत्ता यदि हाथि का शरीर भी पावे, जिसमें चमड़ा हड्डियाँ और काफी मांस हो, तो भी वह अपने भाई बन्धुओं को नहीं बुलाता, यदि वे आजांय तो उनसे द्वेष करता है उन्हें मारता है। इसका कारण है स्वभाव की कृपणता।

गृहं श्मशानं गजचर्म चाम्बरं
विलेपनं भस्म वृषश्च वाहनम् ।
कुबेर हे लिप्यते न लज्जसे
प्रियस्य ते सख्युरियं दरिद्रता ॥४॥

कुबेर, तुम्हे लज्जित होना चाहिए कि तुम्हारे मित्र शिव जी ऐसी दरिद्रता भोग रहे हैं। श्मशान को उन्होंने अपना घर बनाया है, हाथी के चमड़े का वे वस्त्र धारण करते हैं शरीर में भस्म लपेटते हैं और बैल की सवारी करते हैं कितनी दयनीय दरिद्रता है और तुम धनपति कहे जाते हो।

आवद्धकृत्रिमसटाजटिलांसभित्ति-
रारोप्यते मृगपतेः पदवीं यदि श्वा।
मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य
नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य ॥५॥

यदि कुत्ते के गले पर बनावटी सटा बनाकर लगा
जाय और वह सिंह के आसन पर बैठा दिया जाय तो
वाले हाथियों के मस्तक फाड़नेवाले सिंह के समान र
कैसे कर सकता है ?

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
यस्याश्रयेण तरवस्तरवस्त एव।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण
शाखोटनिम्बकुटजान्यपि चन्दनानि ॥६॥

उन सुवर्ण और चांदी के पर्वतों से क्या लाभ, क्यों
इनके आश्रय में रहनेवाले वृक्ष, वृक्ष ही बने रहते हैं, उः
कोई परिवर्तन नहीं होता। हम लोग तो चन्दन वृक्ष को
सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, जिसके आश्रय में रहनेवाले निम्ब कुट
आदि वृक्ष भी चन्दन हो जाते हैं।

शृङ्गार

या बिम्बौष्ठरुचिं विद्रुममणिः स्वप्नेऽपि तां दृष्टवा-
न्हासश्रीः गुरुशस्तयोभिरपि किं मुक्ताफलैः प्राप्यते।
तत्कान्तिः शतशोऽपि वह्निपतनैर्हेम्नः कुतः मेरवपि
त्यक्त्वा त्वमपि प्रयासि दयितां कस्मै धनायाध्वना ॥१॥

कोई धन के लिए विदेश जा रहा है, उससे कोई पूछत
है कि किस धन के लिए तुम विदेश जाते हो। तुम्हारी प्रि
के ओठों की कान्ति, स्वप्न में भी मूंगों को नहीं मिल सकती

उसकी हँसी की शोभा तपस्या करने पर भी मुक्ताफल नहीं पा सकते, सोना चाहे हजारों बार आग में कूदे पर उसे वैसी शरीरकान्ति नहीं मिल सकती, फिर ऐसी रत्नमयी दयिता को घर में छोड़कर तुम किस धन के लिए जा रहे हो।

विरहिणी का प्रलाप

अद्यापि हि नृशंसस्य पितुस्ते दिवसो गतः ।
तमसा पिहितः पन्था एहि पुत्रक शेवहे ॥१९

विरहिणी पुत्र को संबोधन करके कहती है, आज का भी दिन बीत गया और तुम्हारे निठुर पिता नहीं आये, मार्ग अन्धकार से छिप गये, अब क्या आयेंगे, आते भी होंगे तो कहीं ठहर गये होंगे, बेटा, अब चलो हम लोग सो रहें।

चक्षुः किं कम्पसे मूढ त्वयि दीनेऽश्रुवाहिनी ।
यो मां त्यक्त्वा गतः सोऽद्य कथमेष्यति स्फुरे ॥२०

अरी मूर्ख आँख, तुम क्यों काँप रही है, जिस समय तुम दीन थी, आँसू बरसा रही थी, उस समय जो मुझे छोड़कर चला गया, वह क्या आज तुम्हारे फरकने से चला आयेगा।

त्वयमज्ञात दुःखोपद्दुनोनीति न विस्मयः ।
त्वं पुनः प्रासदाहो यद्दहसीति किमुच्यताम् ॥२१

विरहिणी कामदेव को सम्बोधित करके कहती है—जिसने कभी दुःख नहीं उठाया है, वह यदि दुःख दे तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं होता। पर कामदेव तुम्हारा शरीर तो जलाया जा चुका है, फिर मुझे क्यों जलाते हो।

स्पशाल्लोऽस्मिन प्रमरितापूयर्ते
कश्चिन्निरेनुः स्मरपि पुत्रक निर्दृशस्व ।

वत्सैवमङ्गगतमर्भकमायताक्ष्या
पान्थस्त्रिया प्ररुदितं करुणं दिनान्ते ॥४॥

सन्ध्या का समय था, पति विदेश था सामने ही धूलि धाकर से लिपटा हुआ उसका पुत्र था, उसने कहा, क्यों बेटा तुम्हें अपने निठुर पिता की याद आती है? गोदी में बैठे बालक से इस प्रकार कहकर सन्ध्या के समय पथिक की स्त्री फूटकर रो पड़ी।

सखि स सुभगो मन्दस्नेहो ममेति न मे व्यथा
विधिविरचितं यस्मात्सर्वो जनः सुखमश्नुते।
मम तु सततं सन्तापोयं जने विमुखेपि य-
त्क्षणमपि हतव्रीडं चेतो न याति विरागताम् ॥५॥

सखि, मेरे प्रिय मुझ पर कम प्रेम करते हैं इसका मुझे तनिक भी कष्ट नहीं है, क्योंकि सभी मनुष्य अपने भाग्य के अनुसार सुख भोगा करते हैं, मुझे सबसे बड़ा कष्ट यदि कुछ है तो यही; कि वे तो मुझसे इतने विमुख रहते हैं, पर मेरा निर्लज्ज मन उनकी ओर से तनिक भी विरक्त नहीं होता।

तैलाक्तानलकान्कपोलपतितानुत्क्षिप्य कर्णान्तिके
वस्त्रार्धेन विलम्बिना सरभसं प्रच्छाद्य पीनौ स्तनौ।
बाला वायसमेवमाह रुदती दास्यामि यत्ते प्रियं
चूतात्केसरपादपं व्रज शनैर्यत्रास्ति मे वल्लभः ॥६॥

तेल से चुपड़े केशों को जो उसके गाल पर आ गये थे - समेट कर कानों के पीछे उसने कर दिया, लटकते हुए आँचर से अपने मोटे स्तनों को उसने शीघ्रता पूर्वक छिपा लिया, फिर वह रोती हुई कौए से बोली, काक, तुमको जो प्रिय है वही तुमको मैं दूँगी, यदि तुम आम के पेड़ से धीरे से केशर के

पेड़ पर चले आओ और इस प्रकार मेरे पति के आने की मुझे सूचना दो।

> प्रस्थानं वलयैः कृतं प्रियसखैरस्रैरजस्रं गतं
> धृत्या न क्षणमासितं व्यवसितं चित्तेन गन्तुं पुरः।
> गन्तुं निश्चितचेतसि प्रियतमे सर्वे समं प्रस्थिता
> गन्तव्ये सति जीवितप्रियसुहृत्सार्थः किमु त्यज्यते ॥७॥

पति विदेश जा रहा है, नायिका अपने प्राणों से कह रही है, कंकणों ने प्रस्थान किया अर्थात् विरहवेदना के कारण हाथ पतले हो गये और इससे कंकण गिर पड़े, प्रिय मित्र आँसू भी चले गये अर्थात् रोते रोते आँखें सूख गयीं। धैर्य ने एक क्षण भी ठहरना उचित नहीं समझा, यह मन के साथ ही चला गया, इस प्रकार जब प्रिय ने प्रस्थान करना निश्चित किया, तब सभी ने साथ ही प्रस्थान किया, प्राण, तुमको भी तो जाना ही है,फिर इनका साथ क्यों छोड़ते हो।

> निश्वासा वदनं दहन्ति हृदयं निर्मूलमुन्मथ्यते
> निद्रा नैति न दृश्यते प्रियमुखं नक्तं दिनं रुद्यते।
> अङ्गं शोषमुपैति पादपतितः प्रेयांस्तथोपेक्षितः
> सख्यः कं गुणमाकलय्य दयिते मानं वयं कारिताः॥ ८॥

सांस मुंह को जला रही है, हृदय मानों पक रहा है, नींद नहीं आती, प्रिय का मुख भी कहीं दिखायी नहीं पड़ता, रात दिन रो रही है, शरीर सूख रहे हैं। उस समय प्रिय हमारे पैरों पर पड़ा था और हमने उपेक्षा की थी। सखियो, किस गुण के भरोसे तुम लोगों ने हमें प्रिय पर मान करने के लिए कहा है। अब तो वह आता नहीं, हमारी यह दशा है, अब उपाय?

यावन्नो सखि गोचरं नयनयोरायाति तावद्द्रुतं
गत्वा ब्रूहि यथाद्य ते दयितया मानः समालम्बितः ।
दृष्टे धूर्तविचेष्टिते तु दयिते तस्मिन्नवश्यं मम
स्वेदाम्भः प्रतिरोधनिर्भरतनोः स्मेरं मुखं जायते ॥९॥

सखी ने नायिका से कहा था कि आज तुम अपने प्रिय के विषय में मान करो। उसी का उत्तर नायिका इस प्रकार देती है। जब तक वे (नायक) मेरी आंखों के सामने न आवें तभी तक जाकर तुम उनसे कहो कि तुम्हारी स्त्री ने आज मान किया है, क्योंकि जब मैं उनको सामने देख लूंगी, जब वे तरह तरह के मज़ाक करने लगेंगे उस समय मेरा समस्त शरीर पसीना पसीना हो जायगा और हंसी आ जायगी।

इदानीं तीव्राभिर्दहन इव भाभिः परिवृतो
ममाश्चर्यं सूर्यः किमु सखि रजन्यामुदयते,
अयं मुग्धे चन्द्रः, किमिति मयि तापं प्रकटय-
त्यनाथानां बाले किमिव विपरीतं न भवति ॥१०॥

सखि, मुझे बड़ा आश्चर्य है कि अग्नि के समान तीक्ष्ण किरणों से युक्त यह सूर्य रात को उदित होने लगा है। सखी ने कहा, अरे भोली, यह सूर्य नहीं चन्द्रमा है। नायिका ने कहा, फिर यह मुझे तपाता क्यों है। सखी ने कहा बेटी, अनाथों के लिए सभी विपरीत ही होता है।

यात्रामङ्गलसंविधानरचनाव्यग्रं सखीनां जने,
बाष्पाम्भःस्थगितेक्षणे गुरुजने तद्गतमुद्रमण्डले ।
प्राणेशस्य महीक्षणार्पितदृशः कृच्छ्रादपि क्षामतः ।
किं व्रीडाहतया मया भुजलतापाशो न कण्ठेऽर्पितः ॥११॥

जिस समय सखियाँ यात्रा के लिए मङ्गल वस्तुओं को एकत्र कर रही थीं, बड़े लोगों को आँखें आँसू से ढँक गयी थीं, मित्रों की भी यही दशा थी, प्राणेश भी पृथिवी की ओर देख रहे थे, उस समय अभागिन लज्जा के कारण मैंने क्यों नहीं अपनी लतारूपी भुजाओं को उनके गले में डाल दिया।

दूतीप्रेषण।

जीवामीति वियोगिनी यदि लिखेदत्रैव वृत्ताःकथाः
अद्य श्वोय मरिष्यतीति मरणे कालात्ययः किंकृतः।
आगन्तव्यमिहेति सम्प्रति सखे संभावना निष्फला
भ्रातः सम्प्रति याहि नास्ति लिखितं तद्ब्रूहि यत्क्षमम् ॥१॥

नायिका अपने विदेशी पति को सन्देश भेज रही है, पर क्या कहना चाहिए यही उसकी समझ में नहीं आता। मैं *क्या कहूँ, यदि कहूँ कि मैं अभी तक जीती हूँ तो यह* बात वियोगिनी के कहने योग्य नहीं, यदि वियोगिनी ऐसी बात कहे तो समझिए सब बात ही खतम हो चुकी। यदि यह कहूँ कि एक दो दिनों में मर जाऊँगी, तो मुझसे पूछा जा सकता है कि मरने में इतना विलम्ब क्यों किया। यदि कहूँ कि आप यहाँ आयें, तो यह बात झूठी ही होगी, इसकी तो संभावना भी नहीं है। फिर भाई अब आप जायँ, मैं क्या लिखूँ सो कुछ समझ में नहीं आता, जो आप उचित समझें वह कह दीजियेगा।

अपूजितैवास्ति गिरीन्द्रकन्या किं पक्षपातेन मनोभवस्य ।
यद्यस्ति दूती मरमोक्तिदक्षा दासः पतिः पादतले वधूनाम् ॥२॥

पार्वती की पूजा न भी की जाय तो कोई हानि नहीं, कामदेव पर अनुराग करने की भी आवश्यकता नहीं है। यदि दूती मधुर वचन बोलने में निपुण है तो पति स्त्रियों के चरणों के पास दास के समान हो सकता है।

वृथागाथाश्लोकैरलमलमलीकैर्मम रुजं ।
कदाचिद्द धूर्तोऽसौ कविवचनमित्याकलयति,
इदं पार्श्वे तस्य प्रहिणु परिलग्नाञ्जनचय-
स्वदाप्पोत्पीडस्थगितलिपि ताटङ्कयुगलम् ॥३॥

स्तुति के श्लोक बना कर भेजने से क्या लाभ? मेरे दुःख की चर्चा से भी कोई लाभ नहीं, सम्भव है वह धूर्त इन सब बातों को कविकल्पना समझे। उसके पास ये ही दोनों कर्णफूल भेज दो, जिस पर के अक्षर अञ्जनयुक्त आंसू से भीगने के कारण मिट गये हैं।

वाच्यं तस्मै सहचरि भवद्भूरिविश्लेषवन्हौ,
स्नेहैरिद्धे मम वपुरिदं कामहोता जुहोति ।
प्राणा तस्मै तदिहमुचितां दक्षिणां दातुमीहे,
तत्रादेशो भवतु भवतो यत्त्वमेषामधीशः ॥४॥

सखि, उससे कहना कि आपको वियोगरूपी अग्नि में उसके शरीर का कामरूपीहोता हवन करता है, यह अग्नि स्नेह के द्वारा खूब बढ़ायी गयी है। अब मैं उस हवन करने वाले को अपने प्राण दक्षिणा में देना चाहती हूँ, इसकी आप आज्ञा दें, क्योंकि आप इन सबके स्वामी हैं।

उल्लङ्घ्यापि सखीवचः समुचितांमुल्लङ्घ्य लज्जामलं
भित्वाभीतिभरं निरस्य च निजं सौभाग्यगर्वं मनाक् ।
आज्ञां केवलमेव मन्मथगुरोरादाय नूनं मया
त्वं निःशेषविलासिनीगणनाचूडामणि. संभृतः ॥५॥

सखियों की बात न मानकर लज्जा का त्याग कर भय छोड़कर अपने सौभाग्य के गर्व को भी हटाकर केवल कामदेवगुरु की आज्ञा को ही मानकर मैंने तुमको सब विलासिनी का चूड़ामणि बनाया है।

दूति त्वं तरुणी युवा स चपलः श्यामास्तमोभिर्दिशः
सन्देशः सरहस्य एव विपिने सङ्केतकावासकः
भूयो भूय इमे वसन्तमरुतश्चेतो हरन्त्यन्यतो
गच्छ क्षेमसमागमाय निपुणे रक्षन्तु ते देवताः ॥६॥

दूति, तुम युवती हो, जिसके पास जाती हो वह भी युवा और चञ्चल है, दिशाएँ अन्धकार से छिप गयी हैं, सन्देशा भी गुप्त है, वन में जाना है जो सङ्केत-स्थान के समान है, यह वसन्त की हवा बारबार चित्त को खींच लेती है, अच्छा मङ्गल-समागम के लिए जाओ, तुम स्वयं चतुर हो, देवता तुम्हारी रक्षा करें।

न च मेऽवगच्छति यथा लघुतां
करुणां यथा च कुरुते स मयि ।
निपुणं तथैनमभिगम्य वदे-
रभिदूति काचिदिति सन्दिदिशे ॥७॥

किसी नायिका ने दूती से कहा, जिससे मेरी लघुता प्रकट न हो और वह मुझ पर दया भी करे, इस प्रकार चतुरता पूर्वक जाकर उससे कहना।

विरही का प्रलाप।

हारोपि नार्पितः कण्ठे मयासंस्पर्शभीरुणा।
आवयोरन्तरे जाताः पर्वताः सरितो द्रुमाः॥

विरही कहता है पहले मैंने गले में एक हार भी नहीं रहने दिया था, क्योंकि उसके और मेरे शरीर के मध्य में थोड़ा भी अन्तर मुझे असह्य था। आज मेरे और उसके बीच में बड़े बड़े पर्वत नदियाँ और वृक्ष हैं, आज हम उससे बहुत दूर हैं।

प्राणानां च प्रियायाश्च मूढाः सादृश्यकारिणः।
प्रिया कण्ठगता रत्यै प्राणा मरणहेतवः॥

प्राण और प्रिया इन दोनों में जो समानता करते हैं वे मूर्ख हैं। उनको मालूम नहीं कि प्रिया जब कण्ठ में लगती है तो उससे आनन्द होता है और प्राण जब कण्ठ में आते हैं तो मृत्यु हो जाती है। फिर इनका सादृश्य कैसा?

दूरस्था यस्य दयिता नवा पीनपयोधरा।
तस्य संतापशमने न वापी न पयोधरा॥

नवीन और पीन पयोधर (स्तन) वाली जिसकी दूर ... उसके ताप शान्त करने के लिए न तो वापी (तालाब) ... न पयोधर मेघ ही समर्थ होते हैं।

नपुंसकमिति ज्ञात्वा त्वां प्रति प्रेषितं मया।
मनस्तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम्॥

वैयाकरण पाणिनि ने मन शब्द को नपुंसक ... है, मैंने इसे सच समझा और नपुंसक समझ कर ...

उसे प्रिय के पास भेज दिया, पर मन तो वहीं रम गया। हाय, पाणिनि ने मुझे धोखा दिया।

> मुखेन चन्द्रकान्तेन महानीलैः शिरोरुहैः।
> पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा ॥

वह तो रत्नमयी के समान मालूम पड़ती है, उसका मुँह चन्द्रकान्त है। चन्द्रमा के समान सुन्दर है, केश नीलमणि के समान अर्थात् काले हैं, उसके दोनों हाथ पद्मराग मणि के समान लाल हैं।

> तावदेवामृतमयी यावल्लोचनगोचरे।
> चक्षुष्पथादतीता तु विषादप्यतिरिच्यते ॥

दयिता तभी तक अमृतमयी रहती है, जब तक आँखों के सामने है, आँखों के ओझल होने पर तो वह विष से भी बढ़कर हो जाती है।

> मूढाः संयोगमिच्छन्ति वियोगस्तु मयेष्यते।
> एकैव संगमे बाला वियोगे तन्मयं जगत् ॥

जो मूर्ख हैं वे दयिता के साथ संयोग चाहते हैं, मैं तो वियोग चाहता हूँ। क्योंकि संयोग के समय वह केवल एक ही रहती है, पर वियोग के समय समस्त जगत् उसके रूप का हो जाता है।

> एकैव सङ्गमे बाला वियोगे तन्मयं जगत्।
> कृतोपकार एवायं वियोगः केन निन्द्यते ॥

सङ्गम के समय केवल एक वही दयिता रहती है, पर वियोग के समय समस्त संसार तन्मय हो जाता है। इस प्रकार वियोग उपकार ही करता है, फिर उसकी निन्दा क्यों की जाती है?

स मे समागमो मासो मा मे मासमसा समा ।
यो मासवत् मतः मासि या मान्यासान्तरा तथा ॥

उसके साथ जो मेरा वर्ष बीतता है वह महीने के सम
है और उसके बिना जो महीना बीतता है वह वर्ष के सम
है ।

यदि प्रियावियोगेऽपि रुद्यते दीनदीनकम् ।
तदिदं दग्धमरणमुपयोगं क यास्यति ॥

यदि प्रिया के वियोग के समय भी दीनतापूर्वक रो
जाय तो इस अभागे मरण का उपयोग कहां होगा । प्रिया
वियोग के स्वागत के लिए मृत्यु ही उपयुक्त है ।

कामिनीकायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।
मा सञ्चर मनः पान्थ तत्रास्ति स्मरतस्करः ॥

कामिनी का शरीर एक वन है, यहां स्तनरूपी दुर्गम
पर्वत हैं । हे पथिक मन, तुम उस वन में विचरण मत करो,
क्योंकि यहां कामदेव नाम का एक चोर है ।

मनः शुक निवर्तस्व कामिनीगण्डदाडिमात् ।
कामव्याधेन विन्यस्तं तत्रास्त्यलकजालकम् ॥

हे मनरूपी शुक, कामिनी के कपोलरूपी दाड़िम (अनार) से तुम हट जाओ, क्योंकि कामरूपी व्याध ने यहां केशों का जाल फैला रखा है ।

त्यागो हि सर्वव्यसनानि हन्ती-
त्यलीकमेतद्भुवि संप्रतीतम् ।
जातानि सर्वव्यसनानि तस्या-
स्त्यागेन मे मुग्धविलोचनायाः ॥

लोग कहते हैं कि त्याग करने से सब दुःख दूर हो जाते हैं। पर मुझे मालूम होता है कि यह झूठी बात है। मैंने तो जिस दिन से उस सुन्दर नेत्रवाली का त्याग किया है उसी दिन से सभी दुःख मेरे सिर आपड़े हैं।

निद्रार्धमीलितदृशो मदमन्थराया
नाप्यर्थवन्ति न च यानि निरर्थकानि।
अद्यापि मे मृगदृशो मधुराणि तस्या-
स्तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति॥

निद्रा के कारण जिसकी आँख झँपी हुई हैं, जो मद के कारण अलसायी हुई है, उस मृगनयनी के वे मधुर वचन—जिनके न तो कुछ अर्थ ही हैं और न जो निरर्थक ही हैं—आज भी हृदय में गूँज रहे हैं।

हर हर करुणापराङ्मुखोयं
गणयति तान्यपि वासराणि वेधाः।
कुवलयनयनास्तनान्तरेषु
क्षणमपि येषु न शेरते युवानः॥

शिव, शिव, यह ब्रह्मा बड़ा ही निर्दय है जो यह उन दिनों को भी आयु में शामिल करता है जिन दिनों में युवक एक क्षण के लिए भी कमलनेत्रा दयिता के स्तनों के मध्य में नहीं सोते।

केशैः केसरमालिकामपि चिरं या बिभ्रती खिद्यति
या गात्रेषु घनं विलेपनमपि न्यस्तं न सोढुं क्षमा।
दीपस्यापि शिखां न वासभवने शक्नोति या वीक्षितुं
सा तापं विरहात्तवरय महतः सोढुं कथं शक्ष्यति॥

जो मोती से [illegible] को [illegible] में भी दुःखी होती है, जो शरीर पर [illegible] निचोल को भी धारण नहीं कर सकती, जो घर में दीपक को भी देख नहीं सकती, वह विरहिणि के इस विकट ताप को कैसे सह सकेगी ?

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥

यह चलता है, पर हमारा तन काला हो रहा है, यह सही है पर हम [illegible] हैं पर [illegible] और [illegible] का [illegible] धारण करता है, पर हम तुम्हारा हो रहे हैं। उसके अँधेरे अँधेरे हैं, पर हम सह नहीं सकते। यह आश्चर्य की बात है कि दूसरों के दोषों से हमारी यह दयनीय दशा हो रही है।

[illegible] सुमुखी प्रियतमा [illegible] दृष्टा मया
सा मां [illegible] प्रवृत्ता ततः ।
[illegible] प्रसादयामि प्रियां
[illegible] विधिना निद्रा दरिद्रीकृतः ॥

विरही अपने मित्र से अपने स्वप्न का वृत्तान्त कह रहा है। मालूम पड़ता है कि मैंने आज स्वप्न में अपनी प्रियतमा को देखा, पर मुझसे फिरी हुई थी। नहीं मुझे न छुओ, ऐसा कहती हुई और रोती हुई वह वहाँ से जाने लगी। आलिङ्गन करके प्रिय वचनों के द्वारा जब तक मैं उसे प्रसन्न करूँ, भाई, तभी तक शठ विधाता ने मुझे निद्रा-दरिद्र कर दिया अर्थात् नींद खुल गयी। इस श्लोक बनाने के कारण इस कवि का नाम निद्रादरिद्र पड़ गया था।

दूतिवाक्य

मौने निषण्णा कृतभूरिरक्षा
खट्वाङ्गलीना दधती जटाश्च ।
सा त्वत्कृते ध्यानपरा वराकी
व्रतं महापाशुपतं प्रपन्ना ॥ १ ॥

दूती नायक से कहती है—उसने (नायिका ने) मौन धारण किया है, अनेक प्रकार से उसकी रक्षा की गयी है अथवा उसने राख लपेटी है, खाट पर उसके अँग पड़े हुए हैं, अथवा खटिया का पावा धारण किया है, उसने जटा धारण की है, सदा ध्यान में मग्न रहती है, इस प्रकार वह विचारी तुम्हारे लिए पाशुपत व्रत कर रही है।

खे खेदमन्दां विनिवेश्य दृष्टि-
मालोक्य शोभातिशयं घनानाम् ।
नेदीयसा सा मरणेन किञ्चि-
दाश्वासिता प्राणिति मास्म भैषीः ॥ २ ॥

दुःख से मन्ददृष्टि से आकाश की ओर उसने देखा, मेघों की अलौकिक शोभा उसे दिखायी पड़ी। इस कारण अब शीघ्र ही मरना है, इस आश्वास से वह अभी तक जीवित है, डरो मत।

किं पृष्टेन द्रुततरमितो गम्यतां सा प्रिया ते
दृष्टा प्रातर्दिवसमखिलं साश्रमेकं मयैव ।
पान्थे पान्थे त्वमिति रभसोद्ग्रीवमालोकयन्ती
दृष्टे दृष्टे न भवति भवानित्युदस्त्रं वलन्ती ॥ ३ ॥

[illegible]

[illegible]

मेरे नायक, जीवन [illegible] आया, मैंने तुम्हारी स्त्री को देखा है, वह हर रास्ते पर तुम्हारा इन्तजार सुनने के लिए प्रत्येक नायक के साथ जाती थी, पर उसकी आँखें भर आती थीं, गला रुक जाता था, वह कुछ बोल नहीं सकती थी, वह मुँह फेरकर बड़ी देर तक रोती रहती थी।

[illegible]
वापी वापी हिमकणमयी वाटिका वाटिकापि।
बाणः बाणः [illegible] मृणाली
[illegible] इव हारः प्रहारः ॥ २ ॥

माला काँटों के समान है, घर की पुष्करिणी का [illegible] तुषाग्नि के समान है, लताएँ तीखे भाले के समान हैं, [illegible] की धारों भी ताप देनेवाली है, वायु तीखे बाणों के साथ [illegible] के समान है। पति वियोग के समय नायिका के लिए [illegible] भी प्रहार के समान है।

तस्या महाविरहवह्निशिखाकलाप—
तप्ता स्थितोऽपि हृदये सततं प्रियायाः।

प्रालेयशीकरसमे हृदि सा कृपालो
बाला क्षणं वसति नैव खलु त्वदीये ॥ ६ ॥

तुम प्रिया के उस हृदय में सदा वर्तमान रहते हो, जिसमें विरहाग्नि की ज्वाला सदा धधकती रहती है। पर कृपालो, वर्फ के समान शीतल तुम्हारे हृदय में उस बाला को एक क्षण के लिए भी स्थान नहीं मिलता।

चित्रोत्कीर्णादपि विषधराद् भीतिभाजो निशायां
किन्तु ब्रूमस्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः।
ध्वान्ते यान्त्या यदतिनिभृतं बालयात्मप्रकाश-
त्रासात् पाणिं पथि फणिफणारत्नरोधी व्यधायि ॥ ७ ॥

नाथ, जो सर्प की तसवीर देख कर भी डरती है उसीका तुम्हारे लिए अभिसरण करने में जो साहस देखा गया, वह मैं क्या कहूँ। अँधेरे में वह आरही थी, उसने साँप के सिरके रत्न का प्रकाश देखा और डर गयी। पर, शीघ्र ही उसने अपने हाथों से उस प्रकाश को छिपा लिया।

न हारं नाहारं कलयति विहारं विषमिव,
स्मरन्ती सा रामा सुभग भवदागमदिनम्।
परं क्षीणा दीना परमसुखहीना सुवदना,
कुहूपक्षग्लौवच्चपलनयनाङ्गीकृतगतिः ॥ ८ ॥

हार और आहार कुछ भी नहीं लेती, विहार को विष समझती है, सुभग तुम्हारे आने के दिन का सदा स्मरण किया करती है, इससे वह सुवदना क्षीण दीन और सुखहीन होगयी है। अमावास्या के चंद्रमा के समान उसकी दशा हो गई है।

सखी के प्रति प्रश्न।

किं त्वं दूति गता गतासि सुभगे तस्यान्तिकं कामिनः
किं दृष्टः सुचिरं करोति किमसौ वीणाविनोदक्रियाम्।

सौभाग्योदयगर्वितः किमवदन्नैवोत्तरं दत्तवा —
न्किं गर्वाद्विदि वाष्पगद्गदतया धूर्तस्य मायाहि मा ॥ १ ॥

सखी और नायिका का कथोपकथन। दूति, क्या तु उनके पास गयी थी? सखी ने कहा हाँ, मैं उस कामी के पा.. गई थी। नायिका ने पूछा, क्या तुम ने उन्हें देखा। उसने कहा, बड़ी देर तक मैं देखती रही। नायिका ने पूछा, वे क्या करते थे? उसने कहा—वीणा बजा कर मन बहला रहे थे। नायिका ने पूछा, अपने सौभाग्य पर गर्व करनेवाले उन्होंने क्या कहा? दूती ने कहा, नहीं, कुछ भी नहीं। उन्होंने कुछ उत्तर ही न दिया। नायिका ने पूछा—क्या अहङ्कार के कारण उत्तर नहीं दिया? उसने कहा, नहीं, उनका गला भर आया था। नायिका ने कहा यह उस धूर्त की चाल है।

मर्मणि स्पृशति भाषते प्रियं
प्रेम संस्मरति रन्ध्रमीक्षते।
ईदृशस्य बहुचित्तकारिणो
विक्रियापि न शठस्य लक्ष्यते ॥ २ ॥

अवाजे कसता है, और प्रिय बोलता है, प्रेम का स्मरण करता है, पर त्रुटियाँ ढूंढा करता है। इस प्रकार अनेक तरह की माया करनेवाले उस धूर्त का क्रोध भी मालूम नहीं पड़ता।

अलमलमघृणस्य तस्य नाम्ना
पुनरपि सैव कथा गतः स कालः।
कथय कथय वा तथापि दूति
प्रतिवचनं द्विषतोऽपि माननीयम् ॥ ३ ॥

उस पापी का नाम न लो। फिर वही बात, उसका समय बीत गया। अथवा दूति, कहो कहो, शत्रु का भी उत्तर सुन लेना चाहिए।

कथय निपुणं क्वचिन्नु दृष्टः कथं स कियच्चिरं
किमपि लपितं किं तेनोक्तं कदा स इहैष्यति।
इति बहुविधप्रेमालापप्रकल्पितविस्तराः
प्रियतमकथा स्वप्नेऽप्यर्थे प्रयान्ति न नेष्टताम् ॥ ४ ॥

ठीक ठीक कहो, कहाँ और कैसा देखा? कितनी देर तक देखा? वे क्या चाहते हैं? उन्होंने क्या कहा है? कब वे आवेंगे? इस प्रकार के प्रियतम सम्बन्धी विविध प्रेमालाप यदि स्वप्न में भी हों तो अच्छे ही हैं, इसमें कोई अनिष्ट नहीं।

स्त्री

एकान्तसुन्दरविधानजडः क धाता
सर्वाङ्गकान्तिचतुरं क नु रूपमस्याः।
मन्ये महेश्वरभयात्स्मरएवजेन
प्राणार्थिना युवतिरूपमिदं गृहीतम् ॥ १ ॥

ब्रह्मा सर्वाङ्ग सुन्दर वस्तुओं के निर्माण में अनभिज्ञ हैं और इसका रूप सर्वाङ्ग सुन्दर है। मालूम होता है, शिव के भय से अपनी रक्षा करने के लिए कामदेव ने ही स्त्री का रूप धारण किया है।

किं तारुण्यतरोरियं रसभरोद्भिन्ना नवा मञ्जरी
लीलाप्रोच्छलितस्य किं लहरिका लावण्यवारांनिधेः।

स्त्री-प्रशंसा।

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं
पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः।
तत्रापि शय्या शयने वरस्त्री
रत्नोज्वला राज्यसुखस्य सारम् ॥ १ ॥

पृथिवी जीतने का जो सार है वह नगरों पर अधिकार होना है, नगरों का सार घर और घर का सार वहाँ की थोड़ी सी भूमि है, उस भूमि का सार पलंग है, पलंग का सार उत्तम स्त्री है, जो रत्नों के समान उज्ज्वल हो, वह राज्य-सुख का सार है।

क्रतुं धनानां फलमग्रमाहुः
फलं क्रतूनामविवादि पुण्यम्।
पुण्यस्य पूर्णं फलमिन्द्रलोको
द्विरष्टवर्षा स्त्रिय एव नाकः ॥ २ ॥

धन का प्रधान फल यज्ञ है, यज्ञ का फल पुण्य है, पुण्य का फल इन्द्रलोक है और सोलह वर्ष की अवस्थावाली स्त्रियाँ ही इन्द्रलोक हैं।

स्त्री-रूप

केश

स्नेहं परित्यज्य निपीय चूर्णं
कान्ताकचा मोक्षपथं प्रपन्नाः।
नितम्बसङ्गात् पुनरेव बद्धाः
अहो दुरन्ता विषयेषु सक्तिः ॥ १ ॥

भवमुञ्च जहासि किं स्वशोभां
दयितावक्त्रमिदं न पद्म चन्द्रः।
अयि नालिक किं दिवापि भाति
स्वयमप्यस्य किमस्ति वा कलङ्कः ॥ २ ॥

कमल, भय छोड़ दो। अपनी शोभा क्यों छोड़ते हो? यह प्रेया का मुख है चन्द्रमा नहीं है। जानते हो क्या दिन में भी चन्द्रमा होता है, अथवा इसमें क्या कलङ्क है।

चित्रं यदेव गुणवृन्दविमर्ददक्षं
पुंसः सखे निखिलदोषवितानधाम,
मौग्ध्यं तदेव दयितावदने नितान्तं
यातं विभूषणमनेकगुणातिशायि ॥ ३ ॥

यह आश्चर्य की बात है कि जो भोलापन सब गुणों को नष्ट भ्रष्ट कर देता है तथा जो अनेक दोषों का स्थान समझा जाता है, पर वही भोलापन नायिका के मुखमण्डल पर भूषण हो गया और वैसा भूषण जिसने अनेक गुणों को छिपा लिया।

वक्त्रं जेष्यामि चन्द्रः प्रतिदिवसमसौ कान्तिमभ्येति गुर्वीं
नेत्रच्छायां हरिष्याम्यहमिति विकसत्पुष्पदलं दीर्घिकायाम्,
कुर्वाणे ते तथापि श्रियमधिकतरां वीक्ष्य लोलेक्षणायां
वैलक्ष्यात् क्षीण एको विशति तदपरं मत्सरे मज्जितमद्रम् ॥ ४ ॥

चन्द्रमा प्रतिदिन नायिकामुख को जीतने के लिए अधिक अधिक शोभा धारण करता है। नयनों की शोभा हरण करने की इच्छा से कमल प्रतिदिन सरोवर में विकसित होता है। ये ऐसा करके भी जब देखते हैं कि नायिका

अरे बाहु, क्यों व्यर्थ फरक रहे हो। हे वामलोचन, तुम भी स्थिर होओ, फरकना बन्द करो। क्योंकि वह अपराधी यदि मेरे पास आवे भी, तो न तो मैं उसका आलिङ्गन ही कर सकती हूँ और न उससे बोल ही सकती हूँ।

तद्वक्त्राभिमुखं मुखं विनमितं दृष्टिः कृता चान्यत-
स्तस्यालापकुतूहलाकुलतरे श्रोत्रे निरुद्धे मया।
हस्ताभ्यां विनिवारितः सपुलकः स्वेदोद्गमो गण्डयोः
सख्यः किं करवाणि यान्ति शतधा यत्कञ्चुके सन्धयः ॥२॥

मैंने उसके मुँह की ओर से अपना मुँह हटा लिया, आँखें भी दूसरी ओर कर लीं, उसकी बातें सुनने के लिए व्याकुल अपने कानों को भी मैंने बन्द कर लिया, शरीर का रोमांच और कपोलों का पसीना भी मैंने हाथों से छिपा दिया। पर सखियो, बतलाओ मेरी चोली में जो सैकड़ों छेद हो रहे हैं, उनके लिए मैं क्या करूँ।

एकत्रासनसंस्थितिः परिहृता प्रत्युद्गमाद्दूरत-
स्ताम्बूलानयनच्छलेन रभसाश्लेषोऽपि संविघ्नितः।
आलापोऽपि न मिश्रितः परिजनं व्यापारयन्त्यान्तिके
कान्तं प्रत्युपचारतश्चतुरया कोपः कृतार्थी कृतः ॥३॥

प्रत्युत्थान के व्याज से एक स्थान पर बैठना उसने रोक दिया, पान लाने के बहाने आलिङ्गन में भी उसने विघ्न डाल दिया, नौकरों और दासियों को काम में लगाने के व्याज से उसने बातें भी न की। इस प्रकार उस चतुर ने प्रिय के प्रति आगत-स्वागत के बहाने अपना क्रोध सफल किया।

प्राणेशे सहसा चिरादुपगते रुद्धे मया लोचने
क्रोधे वागपि सत्प्रियापंथपरा रुद्धा बलादाकुला।

पहले हम दोनों का यह शरीर एक ही था कोई भेद न था, फिर आप प्रिय हुए और मैं प्रियतमा हुई। इस समय आप गृहपति हैं और मैं गृहिणी, इन वज्र के समान कठिन प्राणों का फल मैंने पाया, मैं जीती हूं इसी कारण यह अपमान सहना पड़ा है।

प्रसादे वर्तस्व प्रकटय मुदं संत्यज रुषं
प्रिये शुष्यन्त्यङ्गान्यमृतमिव ते सिञ्चतु वचः।
निधानं सौख्यानां क्षणमभिमुखं स्थापय मुखं
न मुग्धे प्रत्येतुं प्रभवति गतः कालहरिणः॥

मानिनी का प्रसादन। प्रसन्न होओ, क्रोध छोड़ो, मेरा शरीर सूख रहा है तुम अमृत के समान अपने वचनों का सिंचन करो, सब सुखों का मूल अपना मुँह मेरी ओर करो। तुम भोली हो, कालरूपी यह हिरन जब चला जाता है तब वह पुनः लौटकर नहीं आता।

वसन्त

अध्वन्यस्य वधूर्वियोगविधुरा भर्तुः स्मरन्ती यदि
प्राणानुज्झति कस्य तन्ननु महत्संजायते पातकम्।
यावन्नो कृतमध्वगेन हृदये तावत्तरोर्मञ्जरि
प्रोद्धृष्टं परिपुष्टया सत्र सर्वैरुच्चैर्वचोनेकशः॥

पथिक की स्त्री वियोग से दुःखी होकर पति का स्मरण करती हुई यदि प्राण त्याग करे तो इसका पाप किसको होगा? पथिक ने हृदय में ही कहा "नहीं" अर्थात् इसका पाप

यह वसन्त काल हनुमान् के समान आया, हनुमान् के शरीर के बाल वायु के द्वारा चुम्बित है। वसन्त काल में भी पुष्पों के केशर वायु द्वारा चुम्बित होते हैं। हनुमान प्रसन्न चन्द्र मण्डल के आगे चलते हैं, वसन्त काल में चन्द्रमा अधिक सुन्दर हो जाता है, हनुमान को वियोगिनी सीता ने देखा था, वसन्त काल भी वियोगिनी स्त्रियों के द्वारा देखा जाता है।

> ददो जनोऽसौ खलु विद्यमानमविद्यमानं तु न कोऽपि तावत्।
> वियोगिनां पुष्पनमन्नशोकः शोकप्रदोऽभूदति चित्रमेतत्॥

जो रहता है वही मनुष्य देता है, जो नहीं रहता वह कोई किसी को नहीं देता। पर पुष्पभार से नवा हुआ अशोक वियोगियों के लिए शोकदायी हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है। अशोक के पास तो शोक नहीं था।

> जगौ विवाहावसरे वनस्थली-
> वसन्तयोः कामहुताशसाक्षिणि।
> पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं
> मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमादरात्॥

वनस्थली और वसन्त का विवाह हो रहा था, कामदेवरूपी अग्नि उसका साक्षी था, इसी उपलक्ष में पिकरूपी ब्राह्मण बड़े आदर से मङ्गल मन्त्र पढ़ता था।

यह वसन्त काल हनुमान् के समान आया, हनुमान् के शरीर के बाल वायु के द्वारा चुम्बित है। वसन्त काल में भी पुष्पों के केशर वायु द्वारा चुम्बित होते हैं। हनुमान प्रसन्न चन्द्र मण्डल के आगे चलते हैं, वसन्त काल में चन्द्रमा अधिक सुन्दर हो जाता है, हनुमान को वियोगिनी सीता ने देखा था, वसन्त काल भी वियोगिनी स्त्रियों के द्वारा देखा जाता है।

दर्शी जनोऽसौ खलु विद्यमानमविद्यमानं तु न कोऽपि तावत्।
वियोगिनां पुष्पनमत्रशोकः शोकप्रदोऽभूदति चित्रमेतत्॥

जो रहता है वही मनुष्य देता है, जो नहीं रहता वह कोई किसी को नहीं देता। पर पुष्पभार से नवा हुआ अशोक वियोगियों के लिए शोकदायी हुआ, यह बड़ा आश्चर्य है। अशोक के पास तो शोक नहीं था।

जगौ विवाहावसरे वनस्थली-
वसन्तयोः कामहुताशसाक्षिणि।
पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं
मुहुर्मुहुर्मङ्गलमन्त्रमादरात्॥

वनस्थली और वसन्त का विवाह हो रहा था, कामदेव-रूपी अग्नि उसका साक्षी था, इसी उपलक्ष में पिकरूपी ब्राह्मण बड़े आदर से मङ्गल मन्त्र पढ़ता था।

ग्रीष्म

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं
विदह्यमानः पथि तप्तपांसुभिः ।
अवाक्फणोऽजिह्मगतिः श्वसन्मुहुः
फणी मयूरस्य तले निषीदति ॥

ऊपर से सूर्य की किरणों से खूब तपाया गया है, मार्ग की गरम धूल से जल रहा है, ऐसी दशा में उसांसे लेता हुआ सर्प सिर नीचा करके और अपनी टेढ़ी चाल छोड़कर मयूर के नीचे विश्राम करता है ।

सर्वाशारुधि दग्धवीरुधि सदा सारङ्गवृन्दक्रुधि
क्षामक्ष्मारुहि मन्दमुन्मधुलिहि स्वच्छन्दकुन्दद्रुहि ।
शुष्यत्स्रोतसि भूरितप्तरजसि ज्वालायमानांशुसि
ग्रीष्मे मासि ततार्कतेजसि कथं पान्थ प्रजञ्जीवसि ॥

जिस ग्रीष्मऋतु ने सब दिशाओं को रोक दिया है, पौ को जला दिया है, मृगयूथ पर जिसने क्रोध किया है, वृ को क्षीण बना दिया है, भ्रमरों के आनन्द को क्षीण बना दिय है, जो स्वच्छन्दता पूर्वक कुन्द पुष्प से द्वेष करता है, जिसने सोतों को सुखा दिया है, धूल को गर्म बना दिया है, जल को तप्त कर दिया है और जिसमें सूर्य की किरणें फैल रही हैं उस ऋतु में तुम यात्रा करके कैसे जी सकते हो ।

दूरादेव कृतोऽञ्जलिर्न तु पुनः पानीयपानार्थिना
रोमाञ्चोऽपि निरन्तरं प्रकटितः प्रीत्या न शैत्याद्रपाम् ।
रूपालोकनविस्मितेन चलितो मूर्धा न शाम्या तृषा–
मक्षुण्णो विधिरध्वगेन घटितो बोऽय प्रपापालिकाम् ॥

पथिक ने दूर से ही हाथों की अंजलि बना ली पर यह पानी पीने के लिए नहीं। शरीर में रोमाञ्च भी हुआ पर प्रेम से, जल की शीतलता के कारण नहीं। रूप देखने के ही कारण मस्तक हिल गया, जल पीने की तृप्ति के कारण नहीं। प्याऊ पर जल पिलानेवाली को देखकर पथिक के ये सब आप ही आप हुए।

गन्तुं सत्वरमीहसे यदि गृहं व्यालोलवेणीलतां
द्रष्टुं वा स्वकुटुम्बिनीमनुदिनं कान्तां समुत्कण्ठसे।
तत् त्वय्यपि मुग्धमन्थरचलन्नेत्रान्तरुद्धाध्वगा-
मेतां दूरत एव हे परिहर भ्रातः प्रपापालिकाम् ॥

भाई, यदि तुम यहां से जल्दी जाना चाहते हो, यदि तुम बिखरी वेणीवाली अपनी कान्ता को देखने के लिए उत्कण्ठित हो तो प्यासे होने पर भी उस प्रपापालिका (प्याऊ पर जल पिलानेवाली) को दूर से ही बचाकर जाना, जो सुन्दर और मन्द मन्द चलनेवाली आँखों के इशारे से पथिकों को रोकती है, उन्हें रास्ते ही में विलमा देती है।

वर्षा

किं गतेन यदि सा न जीवति
प्राणिति प्रियतमा तथापि किम्।
इत्युदीक्ष्य नवमेघमालिकां
न प्रयाति पथिकः स्वमन्दिरम् ॥

वर्षा ऋतु में आकाश में मेघमाला को देख पथिक उत्कण्ठित होता है। यदि जाने पर प्रियतमा जीवित न मिले तो

या चक्रादपहृत्य रोपितवती कण्ठे ममैवानन
सा द्रक्ष्यत्यधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥

हरिण के बच्चे के समान चञ्चल आँखोंवाली यह पहले मेघों का शब्द सुनकर डर गयी और मेरे वक्षस्थल पर स्थित होने पर भी भय से उसने और दृढ़ आलिङ्गन किया और मेरे गले पर उसने अपना मुख रख दिया, वही आज इस विरह दशा में मेघों की पंक्ति कैसे देखेगी।

मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः।
एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥

मेघों से आकाश भर गया, नये जल से पृथिवी भर गयी, बिजली से दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। धारा से गगन, कुटज पुष्प से वन, प्रवाह से नदियाँ व्याप्त हो गयीं। यह सब आडम्बर केवल एक वियोगिनी दीन बिचारी स्त्री को मारने के लिए अभागे वर्षा-काल ने किया है, पर इन सबकी ज़रूरत क्या थी।

भद्राख ग्रामके त्वं वससि परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्ता-
मस्मिन्नध्वन्यजाया जलधररसितोत्का न काचिद्विपन्ना।
इत्थं पान्थः प्रवासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः
पृच्छन्वृत्तान्तमारात्स्थितनिजभवनोऽप्याकुलो न प्रयाति ॥

भद्र, तुम क्या इस गाँव में रहते हो? तुम इस गाँव की बातें जानते हो? क्या तुम जानते हो कि इस गाँव में एक पथिक की स्त्री मेघ गर्जन से उत्कण्ठित होकर मर गयी है? इस प्रकार प्रवास से लौटने की अवधि के समाप्त हो जाने से

या वक्रादपहृत्य रोपितवती कण्ठे ममैवाननं
सा द्रक्ष्यत्यधुना कथं नु विरहे बाला पयोदावलीम् ॥

हरिण के बच्चे के समान चञ्चल आँखोंवाली वह पहले मेघों का शब्द सुनकर डर गयी और मेरे वक्षस्थल पर स्थित होने पर भी भय से उसने और दृढ़ आलिङ्गन किया और मेरे गले पर उसने अपना मुख रख दिया, वही आज इस विरह दशा में मेघों की पंक्ति कैसे देखेगी।

मेघैर्व्योम नवाम्बुभिर्वसुमती विद्युल्लताभिर्दिशो
धाराभिर्गगनं वनानि कुटजैः पूरैर्वृता निम्नगाः।
एकां घातयितुं वियोगविधुरां दीनां वराकीं स्त्रियं
प्रावृट्काल हताश वर्णय कृतं मिथ्या किमाडम्बरम् ॥

मेघों से आकाश भर गया, नये जल से पृथिवी भर गयी, बिजली से दिशाएँ व्याप्त हो गयीं। धारा से गगन, कुटज पुष्प से वन, प्रवाह से नदियाँ व्याप्त हो गयीं। यह सब आडम्बर केवल एक वियोगिनी दीन विचारी स्त्री को मारने के लिए अभागे वर्षा-काल ने किया है, पर इन सबकी ज़रूरत क्या थी।

भद्रास्य ग्रामके त्वं वससि परिचयस्तेऽस्ति जानासि वार्ता–
मस्मिन्पान्थजाया जलधररसितोत्का न काचिद्विपन्ना।
इत्थं पान्थः प्रवासावधिदिनविगमापायशङ्की प्रियायाः
पृच्छन्वृत्तान्तमारात्स्थितनिजभवनोऽप्याकुलो न प्रयाति ॥

भद्र, तुम क्या इस गाँव में रहते हो? तुम इस गाँव की बातें जानते हो? क्या तुम जानते हो कि इस गाँव में एक पथिक की स्त्री मेघ गर्जन से उत्कण्ठित होकर मर गयी है? इस प्रकार प्रवास से लौटने की अवधि के समाप्त हो जाने से

यह अपनी प्रिया के अमङ्गल का सन्देह करता था।
से पूछता था और अपने घर के पास ही था पर यह
नहीं जा सकता था।

> रटन्तु जलधराः पतन्तु धाराः
> स्फुरन्तु तडिन्मरुतोपि वान्तु शीताः।
> इयमुरसि महौषधीव कान्ता
> सकलभयप्रतिघातिनी स्थिता मे ॥

मेघ गर्जें, पानी बरसे, बिजली चमके, शीतल वायु बहे,
सब प्रकार के भयों को दूर करनेवाली यह महौषधि के समान
कान्ता मेरे वक्षस्थल पर वर्तमान है।

शरद्

> नीतोस्मि येन महतीं सलिलेन वृद्धिं
> संयोजितश्च सततं गुरुणा फलेन ।
> तच्छोष्यते दिनकृतेत्यतिचिन्तयेव
> शोकानतं कलमशालिवनं विपाण्डु ॥

जिस जल ने मुझे बढ़ाया, जिसने बड़े फल से
सयन्ध कराया, उसको ही सूर्य सोख रहा है। मानो
चिन्ता के कारण धान पीले पड़ गये और शोक से नव ग

> अथ प्रसन्नेन्दुमुखी सिताम्बरा,
> समाययावुत्पलपत्र लोचना,
> सपङ्कजश्रीरिव गां निषेविदुं
> सहंसवालव्यजना शरद्वधूः ॥

यह शरद् ऋतुरूपी वधू आयी, इसका मुख प्रसन्न है, वस्त्र श्वेत हैं, कमल इसके नेत्र हैं, हंस पंखे के समान हैं, उन्हींको लेकर यह पृथिवी की सेवा के लिए आयी है।

क्वचित्सस्यै राढ्या क्वचनविकचैर्नीरजवनैः
क्वचित्स्वच्छैस्तोयैः क्वचिदपि रुतैः सारसकृतैः।
क्वचिद्व्योमाभोगैः सुभगशशभृद्बिम्बधवलै-
रहो चेतः पुंसां हरति बहुरूपा शरदियम्॥

कहीं धान लहलहा रहे हैं, कहीं कमल खिले हुए हैं, कहीं स्वच्छ जल है, कहीं सारस बोल रहे हैं, कहीं चन्द्र बिम्ब के समान स्वच्छ आकाश की शोभा दीख पड़ती है, इस प्रकार अनेक रूप धारण करनेवाली यह शरत् पुरुषों का चित्त हरण करती है।

हेमन्त

नग्नाः सदा शीतसहा जटाधरा
विमुच्य पर्णानि फलानि सांप्रतम्।
सुखप्रदं माधवमाप्तुमुत्सुका-
स्तपः प्रवृत्ताः किमु सन्ति पादपाः॥

वृक्ष मानो तपस्या कर रहे हैं, वे नंगे हैं, शीत सहन कर रहे हैं, जटा उन्होंने धारण की है, पत्ते और फलों को उन्होंने इस समय त्याग कर दिया है। मालूम होता है सुखदायी माधव (वसन्त) को पाने के लिए मानो वे तपस्या कर रहे हैं।

हे हेमन्त स्मरिष्यामि याते त्वयि गुणद्वय
अयत्नशीतलं वारि निशाश्च सुरतक्षमाः ॥

हे हेमन्त, तुम्हारे चले जाने पर भी तुम्हारे दो
स्मरण रहेंगे, एक तो बिना प्रयत्न के ही शीतल ज
दूसरी सुरत के योग्य रात्रि।

लघुनि तृणकुटीरे क्षेत्रकोणे यवानां
नवयवमपलालस्रस्तरे सोपधाने ।
परिहरति सुषुप्तं हालिकद्वन्द्वमारात्
कुचकलशमहोष्मावद्धरेखस्तुषारः ॥

जौके खेत के कोने में फूसकी छोटी कुटिया है, नये पु
का बिछौना और तकिया है, वहाँ किसान और उसकी
सुरक्षित हैं, इस जाड़े की शीत का कुछ भय नहीं है।

हे पान्थ प्रियविप्रयोगहुतभुग्ज्वालानभिज्ञोऽसि किम्
किं वा नास्ति तवप्रिया गतघृणः किं वासि हीनोधिया,
येनास्मिन्नतुड्कुमारवकचिन्दासद्वयमोचिते
कुन्दानन्दितमत्त षट्पदकुले काले गृहान्निर्गतः ॥

भाई, क्या प्रिया—वियोग की अग्नि की ज्वाला का
तुम्हे ज्ञान नहीं है, अथवा तुम्हारे घर में प्रिया नहीं है,
अथवा तुम निर्दय हो या बुद्धिहीन हो, जिससे इस स
जब कि सूर्य के घाम सेवन करने का अवसर है, और
समय कुन्दपुष्प में भ्रमर मग्न हो रहे हैं, तुम अपने घर
बाहर जा रहे हो।

शिशिर

करचरणनासमादौ कर्णौ गृह्णाति रक्ततां गमयन् ।
शीतं गुरुकृतपीडं पश्चादङ्गानि कूर्म इव ॥

शीत पहले हाथ पैर नाक और कान को पकड़ता है, इनको लाल करता है, बड़ी पीडा देता है, पुनः समस्त अंग को कच्छप के समान सङ्कुचित करता है।

केशानाकुलयन् दृशौ मुकुलयन् वासो बलादाक्षिप-
न्नातन्वन् पुलकोद्गमं प्रकटयन्नावेगकम्पं गतेः
वारं वारमुदारसीत्कृतरवैर्दन्तच्छदं पीडयन्
प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुत्कान्तासु कालायते ।

केशों को उलझा देता है, आँखें बन्द कर देता है, वस्त्र ज़बरदस्ती खींचता है, रोमाञ्च कराता है, गति को कम्पित कर देता है, बारबार ज़ोर से सीत्कार कराता है, ओठों को पीड़ित करता है, प्रायः यह शिशिर का वायु स्त्रियों के प्रति काल का सा व्यवहार करता है।

चन्द्रमा

यतेद्दचन्द्रान्तर्जलदलवलीलां प्रकुरुते
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा ।
अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्त तरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकिणकलङ्काङ्किततनुम् ॥

चन्द्रमा के मध्य में मेघ के टुकड़े के समान जो दिखायी पड़ता है, उसे लोग शशक कहते हैं, पर मैं इसे ठीक नहीं

समझना। महाराज, इस विषय में मैं तो यह समझता हूँ कि विरहिणी तुम्हारी शत्रु स्त्रियों के जलते हुए कटाक्ष से चन्द्रमा के शरीर में यह घाव हो गया है।

अङ्कं केपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं परे मेनिरे
सारङ्गं कतिचिच्च संजगदिरे भूमेश्च बिम्बं परे।
इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते
तन्मन्ये रविभीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमालक्ष्यते॥

चन्द्रमा में जो काला चिन्ह है, उसे कोई चिन्ह समझते हैं, कोई उसे समुद्र का पंक बतलाते हैं, कुछ लोग उसे हरिण बतलाते हैं और कुछ लोगों का कहना है कि यह भूमि की छाया है। यह चन्द्रमा के मध्य में इन्द्रनीलमणि के टुकड़े के समान जो काला दिखायी पड़ता है, मेरी समझ से तो वह सूर्य के भय से छिपा हुआ अन्धकार मालूम पड़ता है।

पश्य चन्द्रमुखि चन्द्रमण्डलं
व्योममार्गसरसीसरोरुहम्।
यामिनीयुवतिकर्णकुण्डलं
मारमार्गणनिघर्षणोपलम्॥

चन्द्रमुखी, चन्द्रमा को देखो, यह आकाश मार्ग तालाब का कमल है, रात्रिरूपी युवती के कानों का कुण्डल है अथवा यह कामदेव के बाण तीखा करने के पत्थर का टुकड़ा है।

चाटु

अन्यतो नय मुहूर्तमानन
चन्द्र एव सरले कलामयः।
स कदाचन कपोलयोर्मलं
संक्रमय्य समतां न नेष्यति॥

थोड़ी देर तुम अपना मुँह उधर कर लो, नहीं तो कलाधारी यह चन्द्रमा कहीं अपना मल तुम्हारे कपोलों पर लगा कर तुम्हारे मुँह से समता न करने लग जाय।

शिखरिणि क नु नाम कियच्चिरं
किमभिधानमसावकरोत्तपः।
तरुणि येन तवाधरपाटलं
दशति बिम्बफलं शुकशावकः॥

इस शुकशावक ने किस पर्वत पर कितने दिनों तक और किस नाम की तपस्या की है, जिस कारण यह तुम्हारे ओष्ठ के समान लाल विम्ब फल चुग रहा है।

विसृज दयिते हासज्योत्स्नां निमीलतु पङ्कजं
विकिर नयने भ्रष्टच्छायं भवन्वसितोत्पलम्,
वद सुवदने लज्जामूका भवत्वपि कोकिला
परपरिभवो मानस्थाने न मानिनि सह्यते।

दयिते, हँसो, जिससे कमल बन्द हो जायँ। तुम्हारी हंसी को चन्द्र प्रकाश समझ कर वे मुकुलित हो जायँ। आँखें फेरो, जिससे नीलकमल की शोभा नष्ट हो जाय, बोलो, जिससे कोयल मूक हो जाय, मानिनि, सम्मान के ध्यान से शत्रु का पराजय नहीं सहा जाता।

प्रसीद गतिरुत्सवतो भवतु राजहंसी सुगम्,
स्मितं च परिमुञ्चतो स्फुरतु कुन्दपुष्पप्रभा।
निमीलय विलोचने भवतु हारि कर्णोत्पलं
करस्थगितमाननं कुरु विभातु चन्द्रोदयः॥

प्रसन्न होओ, अपनी गति मन्द करो जिससे राजहंसी सुख पूर्वक चले, हंसना छोड़ दो जिससे कुन्दपुष्प की शोभा बढ़े। आंखें बन्द कर लो जिससे कान पर के कमल की शोभा दीख पड़े, मुंह हाथों से छिपा लो, जिससे चन्द्रमा प्रकाशित हो।

प्रिय आगमन

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुत्प्रेक्ष्य दुर्लङ्घ्यतां
तन्वङ्ग्या परितोषवाष्पतरलामासज्य दृष्टिं मुखे।
दत्त्वा पीलुशमीकरीरकवलं स्वेनाञ्चलेनादरा-
दुन्मृष्टं करभस्य केसरसटा भाराविलग्नं रजः॥

प्रिय आये हैं, मारवाड़ की भूमि से आने की कठिनाई समझ कर सुन्दरी ने प्रसन्नता के आंसू के कारण चञ्चल आँखों से उस ऊँट का मुंह देखा, पीलु शमी करील आदि की पत्तियों का कवल बना कर उसे दिया और अपने आँचल से उसके कन्धे पर की धूल साफ की।

आयाते दयिते मनोरथशतैर्नीते कथंचिद्दिने
वैदग्ध्यापगमाज्जडे परिजने दीर्घां कथां कुर्वति।
दष्टास्मीत्यभिधाय सत्वरपदं व्याधूय चीनांशुकं
तन्वङ्ग्या रतिलालसेन मनसा लोकः प्रदीपः शमम्॥

प्रिय आये, अनेक प्रकार के मनोरथों से किसी किसी प्रकार दिन बिताया, मूर्ख परिवार वालों ने लम्बी बातें छेड़ दीं, उसी समय 'मैं जल गयी" कहती हुई सुन्दरी उठी, उसने अपने कपड़े झाड़े, इस प्रकार प्रिय-समागम की इच्छा से उसने दीपक बुझा दिया।

प्रभातवर्णन।

चन्दनं स्तनतटेधरबिम्बे
यावकं घनतरं च सपत्न्याः।
प्रातरीक्ष्य कुपितापि मृगाक्षी
सागसि प्रियतमे परितुष्टा॥

सुन्दरी अपने अपराधी पति पर अप्रसन्न थी, क्योंकि वह उसके पास नहीं आया था, पर प्रातःकाल होने पर जब उसने अपनी सौत के स्तनों पर चन्दन, ओठों पर महावर ज्यों के त्यों देखे, तब वह प्रसन्न हो गयी, इससे उसने समझा कि मेरे यहाँ न आया तो सौत के यहाँ भी न गया।

दम्पत्योर्निशि जल्पतोर्गृहशुकेनाकर्णितं यद्वच-
स्तत्प्रातर्गुरुसन्निधौ निगदतस्तस्यातिमात्रं वधूः।
कर्णालम्बितपद्मरागशकलं विन्यस्य चञ्च्वाः पुटे
व्रीडार्ता प्रकरोति दाडिमफलव्याजेन वाग्बन्धनम्॥

रात को स्त्रीपुरुष ने जो बातें की वे घर के शुकने सुन ली थीं। प्रातःकाल होने पर वह सब के सामने वे बातें कहने लगा। स्त्री वहीं थी, वह लज्जित हो गयी, उसने

अपने कान के पद्मराग मणि को उतारा और अनार के उस शुक के मुख में देकर उसकी बोली बन्द कर दी।

विरलविरलीभूतास्ताराः कलाविव सज्जना
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः।
अपसरति च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनो
विगलति निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमिनामिव॥

कलियुग में जिस प्रकार सज्जन थोड़े रह जाते हैं, उसी प्रकार आकाश में तारा थोड़े रह गये, मुनि के मन के समान समस्त आकाश स्वच्छ हो गया, सज्जनों के चित्त से जिस प्रकार दुर्जन हट जाते हैं, उसी प्रकार अन्धकार हट गया है, और निरुद्योगियों की लक्ष्मी के समान रात्रि नष्ट हो गयी,

अभून्प्राची पिङ्गा रसपतिरिव प्राश्य कनकं
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्य सदसि।
क्षणात्क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा
न दीपा राजन्ते द्रविणरहितानामिव गुणाः॥

पूर्व दिशा पीली हो गयी, जिस प्रकार सोना खाकर पारा पीला हो जाता है, चन्द्रमा की शोभा जाती रही, जिस प्रकार दिहातियों की सभा में पण्डित निष्प्रभ हो जाते हैं। क्षण ही में तारा क्षीण हो गये, जिस प्रकार अनुद्योगी राजा क्षीण हो जाते हैं, दीपक भी अच्छे नहीं लगते, जिस प्रकार दरिद्रों के गुण।

मिश्र

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाता-
ल्लोकेषु सप्तस्वपि तथ्यमेतत् ।
नान्यन्मनोहारि नितम्बिनीभ्यो
दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ॥

मैं सच कह रहा हूँ, पक्षपात से नहीं, सातों लोकों में यह बात सच है, स्त्रियों से बढ़कर न तो कोई मनोहर वस्तु है और न उनसे बढ़कर दुःख-हेतु ही कोई दूसरा है।

एकाकिनी यदबला तरुणी तथाह-
मस्मद्गृहे गृहपतिश्च गतो विदेशम् ।
कं याचसे तदिह वासमियं वराकी
श्वश्रूर्ममान्धबधिरा ननु मूढ़ पान्थ ॥

मैं अकेली अबला हूँ और युवती हूँ, मेरे घर के मालिक विदेश गये हुए हैं, फिर तुम ठहरने के लिए जगह किससे माँगते हो, जानते नहीं कि मेरी सास बिचारी भी तो अन्धी और बहरी है।

संसारेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभवनद्वारसेवाकलङ्क-
व्यासङ्गव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं संविदध्युः ।
यद्येताः प्रोद्यदिन्दुद्युतिनिचयभृतो न स्युरम्भोजनेत्राः
प्रेङ्खत्काञ्चीकलापाः स्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः ।

इस असार संसार में सज्जनों का मन बुरे राजाओं के द्वार की सेवा के कलङ्क लगने से अधीर हो जाता, यदि उदित चन्द्रमा के कान्तिसमूह धारण करनेवाली कमल

है, फिर भी शरीर-रहित कामदेव समस्त त्रिलोक को जीत लेता है। इससे मालूम पड़ता है कि महान् मनुष्य अपने बल से कार्य सिद्ध करते हैं, सामग्रियों से नहीं।

क्षुद्राः सन्त्रासमेते विजहत हरयो भिन्नशक्रेभकुम्भा
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परमसी सायका निष्पतन्तः।
सौमित्रे तिष्ठ पात्रं त्वमपि नहि रुषां नन्वहं मेघनादः
किञ्चिद्भ्रूभङ्गलीलानियमितजलधिं राममन्वेषयामि॥

मेघनाद कहता है, अरे क्षुद्रो, क्यों तुम लोग डरते हो! इन्द्र के हाथी के मस्तक तोड़नेवाले हमारे बाण तुम लोगों के शरीर पर गिरते लज्जित होते हैं। लक्ष्मण, तुम भी ठहरो तुम भी हमारे क्रोध के पात्र नहीं हो, क्योंकि मैं मेघनाद हूँ मैं उस राम को ढूँढ रहा हूँ जिसने थोड़ा क्रोध करके समुद्र को बाँधा है।

पातालतः किमु सुधारसमानयामि
चन्द्रं निपीड्य किमुतामृतमाहरामि।
उच्चण्डचण्डकिरणं किमु वारयामि
कीनाशलोकमथवा ननु चूर्णयामि॥

हनुमान कहते हैं, पाताल से अमृत ले आऊँ, चन्द्रमा निचोड़ कर अमृत ले आऊँ, प्रखर किरण सूर्य को रोकूँ अथवा यमराज की नगरी को तोड़ फोड़ दूँ।

काकुत्स्थस्य दशाननो न कृतवान्दारापहारं यदि
कामभोधिः क्व सेतुबन्धघटना कोत्तीर्णलङ्काश्रयः।
पार्थस्यापि पराभवं यदि रिपुर्नाधात्क तादृक् नपः
कोपन्ते रिपुभिः स क्षतिरियं प्रायः परं मानिनः॥

रामचन्द्र की स्त्री का हरण यदि रावण न करता तो क्या समुद्र के पास वे जाते, या सेतु बाँधते, अथवा समुद्र पार जाकर लंका जीतते ? अर्जुन को भी शत्रु यदि तंग न करता तो क्या वे वैसी तपस्या करते ? बात यह है कि शत्रु ही मानियों का उत्कर्ष बढ़ाते हैं ।

> वह्निं शीतयितुं हिमं ज्वलयितुं वातं निरोद्धुं पयो
> मूर्तं व्योम विधातुमुन्नमयितुं नेतुं नतिं वा महीम् ।
> उद्धर्तुं किल भूभृतः स्थलयितुं सिन्धुं च संभाव्यते
> शक्तिर्यस्य जनैः स एव नृपतिः शेषाः परं पार्थिवाः ॥

आग को शीतल करने की, बर्फ को जला देने की, हवा को रोकने की, जल को ठोस बनाने की, आकाश को उठाने की, पृथिवी को बनाने की, पर्वतों को उखाड़ने की, समुद्र को समतल और समतल को समुद्र बनाने की जिसमें शक्ति रहती है, उसे ही लोग नृपति कहते हैं, और लोग तो पार्थिव हैं अर्थात् मिट्टी के ढोंधे हैं ।

हास्य

> प्रायश्चित्तं मृगयते यः प्रियापादताडितः ।
> क्षालनीयं शिरस्तस्य कान्तागण्डूषशीधुभिः ॥१॥

जो मनुष्य प्रिया के पैरों से ताड़ित होकर प्रायश्चित्त ढूँढ़ता है, उसका मस्तक कान्ता के मुँह में की शराब से धो देना चाहिए ।

गणयति गगने गणकश्चन्द्रेण समागमं विशाखायाः ।
विविधभुजङ्गक्रीडासक्तां गृहिणीं न जानाति ॥२॥

ज्योतिषी जी आकाशस्थ चन्द्रमा का विशाखा के साथ समागम का समय गणना के द्वारा जानते हैं, पर उनके घर की गृहिणी अनेक दुर्दशों के साथ क्रीड़ा करती है, यह उन्हें मालूम नहीं ।

सदा वक्रः सदा क्रूरः सदा मानधनापहः ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ॥३॥

जामाता (दामाद) दशवाँग्रह है, यह सदा कन्याराशि पर वर्तमान रहता है, यह सदा टेढ़ा, सदा क्रूर और सदा मान धन का अपहरण करने वाला है ।

यमः शरीरगोप्तारं संचितारं वसुन्धरा ।
दुःशीला स्त्री च हसति भर्तारं पुत्रवत्सलम् ॥

शरीर की रक्षा करनेवाले को यमराज हँसता है, धन संचय करनेवाले को पृथिवी हँसती है और व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति को पुत्र पर प्रेम करते देखकर हँसती है ।

परान्नं प्राप्य दुर्बुद्धे मा प्राणेषु दयां कृथाः ।
दुर्लभानि परान्नानि प्राणा जन्मनि जन्मनि ॥५॥

हे दुर्बुद्धे, यदि दूसरों का अन्न मिले तो प्राणों का मोह छोड़ दो, क्योंकि परान्न का मिलना दुर्लभ है, प्राण तो प्रत्येक जन्म में मिलते हैं ।

निदाघकाले विप्रस्य प्रसुप्तस्य तरोरधः ।
शूना मसृणितं हस्ते देवरस्त्वेति सोऽब्रवीद् ॥६॥

गर्मी के दिनों में एक ब्राह्मण किसी पेड़ के नीचे सो रहा था, कुत्ते ने उसके हाथ पर मूत दिया, उसने कहा यह देवता का है।

> वैद्यनाथ नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव।
> त्वयि सन्यस्तभारोयं कृतान्तः सुखमेधते ॥७॥

समस्त मनुष्यों को नष्ट करनेवाले हे वैद्यराज, आपको नमस्कार। यमराज, आप ही पर अपना प्राणवध का भार सौंपकर निश्चिन्त हो रहा है।

> काकाल्लौल्यं यमात्क्रौर्यं स्थपतेर्निर्त्यघातिताम्।
> आद्यक्षराणि संगृह्य कायस्थः केन निर्मितः ॥८॥

कौए से लोलता, यमराज से क्रूरता और स्थपति (व्याध) से प्रति दिन हिंसा का काम कायस्थों में विद्यमान है, इन तीनों के पहले अक्षरों को लेकर कायस्थों का निर्माण किसने किया?

> लेखनीकृतकर्णस्य कायस्थस्य न विश्वसेत्।
> विश्वसेत्कृष्णसर्पस्य वने व्याघ्रस्य विश्वसेत् ॥९॥

काले साँप का विश्वास किया जा सकता है, वन में बाघ का भी विश्वास किया जा सकता है, पर कान पर कलम रखनेवाले कायस्थ का विश्वास नहीं किया जा सकता।

> वाचयति नान्यलिखितं लिखितमनेनापि वाचयति नान्यः।
> अयमपरोस्य विशेषः स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति ॥१०॥

ये दूसरों का लिखा नहीं बांच सकते और इनका लिखा दूसरा भी नहीं बांच सकता। खूबी यह कि ये अपना लिखा भी नहीं बांच सकते।

खट्वा विशाल्लघुका शिथिलस्तनाला
वेश्यारतिः स च निरन्तरचण्डकारी ।
तत्रापि ईश्वरतिकाः खलु माघरात्र्यो
हास्यकरी कथमयं व्यसनप्रपञ्चः ॥११॥

खाट पड़ी छाती है उसके थाने ढीले हो गये हैं और व वेश्या से प्रेम रखनेवाला पति प्रायः ग़ायब रहता है, इस प सो ईश्वर की मारी माघ की रातें हैं, भला ये कष्ट कैसे सहे जा सकते हैं ?

उच्चैरध्ययनं चिरन्तनकथाः स्त्रीभिः सहालापनं
तासामर्भकलालने रतिरथो तत्पाकमिथ्यास्तुतिः ।
पितृभ्रातृजनाशिषः सुभगतायोग्यत्वसंकीर्तनं
स्वानुष्ठानकथाभिवादनविधिर्भिक्षोर्गुणा द्वादश ॥१२॥

भिक्षुक के बारह गुण हैं। वे ये हैं ज़ोर से पढ़ना, पुरानी बातें कहना, स्त्रियों के साथ बातचीत करना, उनके बच्चों के खेलाने में प्रेम रखना, उनकी बनायी रसोई की झूठी तारीफ़ करना, उनके पिता भाई आदि को आशीर्वाद उनमें पति प्रिय होने की पूरी योग्यता का वर्णन करना, अनुष्ठान कथा अभिवादन आदि की योग्यता बखानना ।

क्षारं राद्धमिदं किमद्य दयिते राद्धोऽपि किं न स्वय-
माः पापे प्रतिजल्पसे प्रतिदिनं पापस्त्वदीयः पिता ।
धिक् त्वां क्रोधमुखीमलीकमुखरस्त्वत्तोऽपि कः क्रोधनो
दम्पत्योरिति नित्यदत्तकलहक्लेशान्तयोः किं सुखम् ॥१३॥

स्त्री पुरुष से वाद—पु०—प्रिये, यह क्या आज कड़ुआ कड़ुआ बनाया है ? स्त्री०—तो तुम स्वयं क्यों नहीं बना लेते पु०—ओह पापिन, तू प्रतिदिन उत्तर दिया करती है, स्त्री०—

तुम्हारा बाप पापी है, पु०—तू तो बड़ी क्रोधिन है, तुझे धिक्कार। स्त्री—तू व्यर्थ का बकता है, तुझसे बढ़कर क्रोधी कौन है ? इस प्रकार प्रति दिन कलह करने वाले स्त्रीपुरुषों को क्या सुख है ?

स्वायत्तमेकान्तहितं विधात्रा
विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥१४॥

ब्रह्मा ने मूर्खता छिपाने के लिए अपने वश का एक उत्तम उपाय बनाया है। वह यह है कि सर्वज्ञ पण्डितों के समाज में मूर्खों का चुप रहना।

नाम ग्रन्थकृतां गृहाण विबुधोपाध्यायचर्चां कुरु
ग्रन्थानां भव सत्परिग्रहकृती स्पर्धस्व साकं बुधैः ।
नानाहस्तविचित्रचालनपरश्चोच्चैः सशब्दं हस—
न्निच्छेश्चेद्बुधतां पुरो जड़धियामत्यन्तमूर्खोऽपि सन् ॥१५॥

अत्यन्त मूर्ख होने पर भी तुम मूर्खों की सभा में पण्डित बनना चाहते हो, तो इन बातों को करो ग्रन्थकारों का नाम लिया करो। विद्वान् पण्डितों की चर्चा करो, ग्रन्थों का संग्रह करो, विद्वानों की बराबरी करो, खूब ज़ोर से हँसते हुए अनेक प्रकार की हस्तमुद्रा दिखाओ ।

निःशङ्कं यत्तदुच्चैर्वद कुरु विकटं स्वासनं ज्ञानगर्वा—
न्श्लाघस्वात्मानमन्यान्प्रहस सहसा किंचिदश्लीलमुक्त्वा ।
साचर्यं खण्डखाद्यं पठ विवद समुत्कर्षयन्मूर्ख लोका:—
निच्छेश्चेत्सूरिभावं जड़जनपुरतो मूर्खवृन्दारकोऽपि ॥१६॥

मूर्ख शिरोमणि होने पर भी मूर्खों के सामने विद्वान् बनना चाहते हो, तो यह करो। जो मन में आवे, निःशङ्क हो

कर बोलो, अपने ज्ञानी होने का अहंकार मुँह बनाकर दिखाओ। अपनी प्रशंसा करो और दूसरों की निन्दा। कुछ बुरी बातें कह कर हँसो। तपाक के साथ खण्डनखाद्य पढ़ो, मूर्खों को उत्तेजित करते हुए विवाद करो।

> व्यासादीन्कविपुङ्गवाननुचितैरवाच्यैः सलीलंमय--
> श्रुत्यैक्सर निमील्य लोचनयुगं श्लोकान्मनर्वं पठन्।
> काव्यं स्वीकुरु यत्परैर्विरचितं सार्धं सार्द्धं बुधैः--
> र्यद्यस्ययं से श्रुतेन रहितः पाण्डित्यमाप्तुं बलात् ॥१७॥

व्यास आदि कवि श्रेष्ठों की अनुचित शब्दों से निन्दा करो, आँखें मूँद कर जोर जोर से बोलो, अहंकार के साथ श्लोक पढ़ो, दूसरों के बनाये काव्यों को अपना बतलाओ विद्वानों की बराबरी करो, यदि शास्त्र - ज्ञान के बिना विद्वान बनना चाहते हो तो इन कामों को करो।

> नास्माकं जननी तथोज्ज्वलकुला सच्छ्रोत्रियाणां कुला--
> दूढा काचन कन्यका खलु मया तेनास्मि ताताधिकः।
> अस्मत्स्यालकभागिनेयभगिनी मिथ्याभिशस्ता परै-
> स्तत्संबन्धवशान्मया स्वगृहिणी प्रेयस्यपि मोज्झिता ॥१८॥

मेरी माता उच्च कुल की नहीं है, पर मैंने श्रेष्ठ श्रोत्रियों के कुल की कन्या ब्याही है, इससे मैं अपने बाप से बड़ा हूँ। मेरे साले के भांजे की बहिन पर मिथ्या कलङ्क लगा है, उसी संबन्ध का विचार करके मैंने अपनी प्यारी स्त्री का परित्याग कर दिया।

> असारे खलुसंसारे सारं श्वसुर मन्दिरम्।
> हरो हिमालये शेते विष्णु शेते महोदधौ ॥१९॥

इस असार संसार में श्वसुर का घर ही एक सार है। इसीसे महादेव हिमालय में रहते हैं और विष्णु समुद्र में।

> कमले कमला शेते हरःशेते हिमालये।
> क्षीराब्धौ च हरिः शेते मन्ये मत्कुणशङ्कया ॥२०॥

लक्ष्मी कमल में शयन करती हैं, शिव जी हिमालय में शयन करते हैं और विष्णु क्षीर समुद्र में शयन करते हैं, मालूम होता है कि इसका कारण खटमलों का भय ही है।

> स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजाननषडाननौ
> दिगम्बरः कथं जीवेदन्नपूर्णा न चेद्गृहे ॥२१॥

दिगम्बर—महादेव स्वयं पांच मुखवाले हैं, उनका एक पुत्र गजानन—हाथी का मुखवाला है और दूसरा षडानन—छः मुख वाला है, ये दिगम्बर कैसे जीते, यदि उनके घर अन्नपूर्णा न होतीं।

> अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणः
> पितामहाद्यैरपभुक्तयौवनः
> अलङ्करिष्यत्यथ पुत्रपौत्रकान्
> मयाधुना पुष्पवदेव धार्यते ॥२२॥

यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर को भूषित कर चुका है, यह वस्त्र जब नया था तो मेरे पितामह आदि ने इसका उपभोग किया था, यह हमारे पुत्र और पौत्रों को भी शोभित करेगा, मैं पुष्प के समान ही इसको धारण करता हूँ।

> आयुष्य पाथिमयुषि मम सूर्भिर्वेरया
> मंत्राम्भर्मा प्रतिग्रह पूवनेः पविगे। —

मात्रचर्ं प्रविमृश्य क्रमशात् प्रहार
हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णु शर्मा ॥२३॥

मंत्र-जल के छींटों से पवित्र मस्तक पर वेश्या ने अपने अपवित्र हाथ रखे, बड़े ज़ोरों से थूका और मारा, इससे विष्णु शर्मा हाय हाय करके रोता है।

आपाण्डुराः शिरसिजास्त्रिवली कपोले
दन्तावली विगलिता न च मे विषादः
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपरा इति मे विषादः ॥२४॥

मेरे सिर के बाल सफ़ेद हो गये हैं, गालों पर झुरियां पड़ गयी हैं, दांत गिर गये हैं, पर इनके कारण मुझे कष्ट नहीं है। मुझे सब से बड़ा कष्ट इसमें है कि रास्ते में स्त्रियाँ मुझे देख कर बाबा कहती हैं।

अत्तु वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी
तं च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम्
गौरी जन्हुसुतामसूयति कलानाथं कपालानलो
निर्विण्णः सपपौ कुटुम्ब कलहादीशोऽपि हालाहलम् ॥२५॥

भूखा सांप गणेश के चूहों को खाना चाहता है, उस सांप को कार्तिकेय का मयूर खाना चाहता है, पार्वती का सिंह गजानन को खाना चाहता है। पार्वती गङ्गा से द्वेष रखती है और चन्द्रमा से अग्नि द्वेष रखता है, इसी गृहकलह से दुःखी होकर महादेव ने भी विष पी लिया है।

दृष्ट्वा षडाननजनुर्दिनान्तरेव
पञ्चाननेन सहसा चतुराननाय
शार्दूलचर्मभुजगाभरणं समस्तं,
दत्तं निशाम्य गिरिजाहसितं पुनातु ॥२६॥

षडानन - कार्तिकेय के जन्म से प्रसन्न होकर पंचानन—महादेव ने चतुरानन - ब्रह्मा को अपना व्याघ्रचर्म और सर्प का आभूषण दिया, यह सुन कर पार्वती हँसने लगीं।

रामायाचय मेदिनीं धनपतेर्बीजं बलाल्लाङ्गलं
प्रेतेशान्महिषं तवास्ति वृषभः फालंत्रिशूलादपि
शक्ताहं तव चान्नदानकरणे स्कन्दोऽस्ति गोरक्षणे
खिन्नाहं तव याचनात् कुरु कृषिं भिक्षाटनं मा कृथा ॥२६॥

पार्वती ने शिव से कहा—तुम्हारा भीख माँगना देखकर मैं बहुत दुःखी हूँ, इस कारण तुम अब खेती करो, भीख माँगना छोड़ दो, परशुराम से पृथिवी ले लो, कुबेर से बीज, बलदेव से हल, यमराज से भैंसे, बैल तुम्हारे पास हैं ही, त्रिशूल का फार बनवा लो, हम तुम्हें अन्न देंगी, कार्तिकेय तुम्हारे पशुओं की रक्षा करेगा। फिर भीख क्यों माँगते हो?

जाति

आयातो भवतः पितेति सहसा मातुर्निशम्योदितं
धूलीधूसरितो विहाय शिशुभिः क्रीडारसात्प्रस्तुतान्।
दूरात्स्मेरमुखः प्रसार्य ललितं बाहुद्वयं बालको
नाधन्यस्य पुरः परैति त्वरया प्रीत्या रणन्घर्घरम् ॥१॥

तुम्हारे पिता आये यह माता की बात सुनकर धूल में लिपटा हुआ अपने साथी बालकों के साथ का खेल छोड़कर दूर ही से हंसता हुआ दोनों हाथ फैलाकर कुछ बोलता हुआ बालक बड़े प्रेम से किसी अन्य मनुष्य के सामने नहीं आता।

इत्युक्ता सहसा प्रचण्डगृहिणीवाक्येन निर्भर्त्सितः
स्कन्धन्यस्तपलालमुष्टिविभवः पान्थः पुनः प्रस्थितः ॥२॥

धर्मी माई, मैं थका विदेशी हूँ मुझ पर दया करो, द्वार के चौकठे के कोने में रातभर सोकर मैं प्रातःकाल चला आऊँगा। इतना कहने पर वह गृहिणी के द्वारा दुतकारा गया वह पथिक जो कन्धे पर एक मुट्ठी पुआल लिये हुआ था, वह वहाँ से चला गया।

गायति हंसति च नृत्यपि हृदयेन धृतां प्रियां विचिन्तयति
समविषमं नच विन्दति गृहगमनसमुत्सुकः पथिकः ॥३॥

पथिक घर जाने के लिए उत्सुक है, उस उत्सुकता में वह गाता है, हँसता है, नाचता है, हृदयस्थित प्रिया का ध्यान करता है और उसे ऊँच नीच का ज्ञान नहीं है।

भद्रं ते सदृशं यदध्वग जनैःकीर्तिस्तवोद्गीयते
स्थाने रूपमनुत्तमं सुकृतिना दानेन कर्णो जितः
इत्यालोक्य भृशं दृशा करुणया शीतातुरे च स्तुतः
पान्थेनैक पलाल मुष्टिरुचिना गर्वायते हालिकः ॥४॥

पथिक गण तुम्हारी कीर्ति का वर्णन करते हैं, यह तुम्हारे ए सर्वथा उचित है, सुन्दर रूप भी तुमने पाया है, दान तुमने कर्ण को भी जीत लिया है, शीत से ठिठुरा र पथिक ने एक मुट्ठी पुआल लेने की इच्छा से किसान की ति की और अपनी स्तुति सुनकर वह अपने को बड़ा सम‑ ने लगा।

कलिकाल

प्राप्ते कलौ राजनि चार्थलुब्धे
धनेन किं जीवितमेव रक्ष्यम्।
किं नैव लाभो यदि सौनिकेन
मुच्येत मेषो हृतसर्वलोमा ॥

कलिकाल आया, राजा धन के लोभी हुए, ऐसे समय में धन की इच्छा कौन करे, प्राणों की ही रक्षा करनी चाहिए, यदि कसाई भेड़ के बाल काट कर उसे छोड़ दे, तो क्या यह उसका लाभ नहीं है।

गच्छ त्रपे विरम धैर्य धियः किमत्र
मिथ्या कदर्थयसि किं पुरुषाभिमान।
दूरादपास्तगुणमर्चितदोषसैन्यं
दैन्यं यदादिशति तद्वयमाचरामः ॥

लज्जे, जाओ; धैर्य ठहरो; बुद्धि यहां क्यों? पुरुषाभिमान, तुम व्यर्थ क्यों तंग कर रहे हो! इस समय हम वही कर रहे हैं जो दीनता कहती है जिस दीनता ने सब गुणों को दूर हटाया है और दोषों की पूजा की है।

क भ्रातःप्रस्थितोऽसि यामि कटकं किं तत्र सेवाशया
कः सेव्यो नृपतिः कथं निजगुणैः के ते गुणा ये सताम्।
किं तैरद्य गुणो परं व्रज वनं किं वा त्वया न श्रुतम्
पुण्यस्तो शठमत्सरिस्सरिमभृतयः कर्णेजपाः सेवकाः ॥

भाई, कहां चले? राजधानी जारहा हूं। किस लिए? सेवा के लिए। यहां किसकी सेवा करोगे? राजा की। कैसे? अपने गुणों से। वे कौन गुण हैं? जो सज्जनों के होते हैं? इस समय उनसे क्या होगा? क्यों? अजी, वन में जाओ। क्या

तुमने नहीं सुना है कि शठ, मत्सरी और चुगल सेवकों का यहाँ आदर होता है ।

शील' शैलतटात्पतत्वभिजनो निर्दह्यतो वह्निना
मा श्रौत्रं श्रगति ग्रुतस्य विफलक्लेशस्य नामाप्यहम् ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु मे सर्वदा
येनैकेन विना गुणास्तृणलुवप्रायाः समस्ता इमे ॥

पर्वत से शील गिर जाय, कुल आग से जल जाय, उस शास्त्र का नाम भी अब मैं न सुनूं जिसके लिए व्यर्थ परिश्रम किया है, इस वैरिन शूरता पर शात्र ही वज्र गिरे, सिर्फ एक धन होना चाहिए, जिसके बिना ये समस्त गुण घास भूसे के समान है ।

धर्मः प्रव्रजितस्तपश्च चलितं सत्यं च दूरं गतं
पृथ्वी मन्दफला जनाः कपटिनो मौर्ख्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
राजा दण्डपरो विचाररहितः पुत्राः पितृद्वेषिणो
भार्याभर्तृविरोधिनी कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥

धर्म ने सन्यास ले लिया, तपस्या भी चला गया, सत्य तो बहुत दूर गया, पृथिवी की उपजाऊ शक्ति घट गयी, कपटी होने लगे, ब्राह्मण मूर्ख हो गये, राजा बिना विचार के दण्ड देनेवाले हुए पुत्र पिता से द्वेष करने लगे, भार्या पति विरोधिनी हुई, इस कलियुग में जो मर गये, वे ही धन्य हैं।

आपत्तिः

चाण्डालश्च दरिद्रश्च द्वाविमौ पुरुषौ समौ ।
चाण्डालस्य न गृह्णन्ति दरिद्रो न प्रयच्छति

चाण्डाल और दरिद्र ये दोनों बराबर हैं, चाण्डाल ग्रहण नहीं करता और दरिद्र देता नहीं।

एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर।
इत्यमाशाग्रहग्रस्तैः क्रीडन्ति धनिनोर्थिभिः॥

आओ, जाओ, गिरो, उठो, बोलो, चुप रहो, इस प्रकार आशा ग्रह से ग्रस्त याचकों से धनी लोग खेलते हैं।

शीतमध्वा कदन्नं च वयोतीताश्च योषितः
मनसः प्रातिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः॥

बुढ़ापे के पांच हेतु हैं, ठंढा लगना, बुरा अन्न खाना, अधिक उमर की स्त्री और मन के प्रतिकूल स्थिति का सामना।

दानं न दत्तं न तपश्च तप्तं
नाराधितौ शङ्कर वासुदेवौ।
अग्नौ रणे वा न हुतश्च कायः
शरीर किं प्रार्थयसे सुखानि

दान नहीं दिया, तप नहीं किया, शंकर और वासुदेव की आराधना भी न की, अग्नि में या रण में शरीर का हवन भी नहीं किया शरीर, फिर तुम सुख की आशा क्यों करते हो?

भद्रे वाणि कुरुष्व तावदमलां वर्णानुपूर्वीं मुखे
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि याहि गुरुते प्रज्ञे स्थिरत्वं भज।
लज्जे तिष्ठ पराङ्मुखी क्षणमहो तृष्णे पुरः स्थीयतां
यावो यावदहं मनीमि धनिनं देहीति दीनं वचः॥

भद्रे वाणि, सुन्दर शब्दों को मुंह में सजा रखो, चित्त स्वस्थ हो जाओ, बड़प्पन तुम जाओ, बुद्धि स्थिर होओ,

लज्जे मुंह फेर कर ठहरो, तृष्णे तुम थोड़ी देर के लिए आ जाओ, जब तक पापी मैं धनियों के सामने "दो" दीन वचन कहूं ।

मद्गेहे मशकीव मूषकवधूर्मूषीव मार्जारिका
मार्जारीव शुनी शुनीव गृहणी वाच्यः किमन्यो जनः ।
इत्यापन्नशिशूनसून्विजहतः संप्रेक्ष्य झिल्लीरवै-
र्लूतातन्तुवितानसंवृतमुखी चुल्ली चिरं रोदिति ॥

मेरे घर की चूहिया मच्छर के समान हो गयी है, बिल्ली चूहिया के समान हो गयी है, बिल्ली के समान कुत्ती और कुत्ती के समान गृहिणी हो गयी है, ऐसी दशा में दूसरों के लिए क्या कहा जाय ? इस प्रकार दुःखी लड़कों को प्राण छोड़ते देख कर मकरी के जाले से मुंह छिपा कर झिल्ली शब्द के द्वारा चूल्ही रो रही है ।

तृणादपि लघुस्तूलस्तूलादपि च याचकः ।
वायुना किं न नीतो सौ मामयं प्रार्थयेदिति ॥

रुई तृण से भी हल्की है और याचक तृण से भी हल्का है । फिर भी वायु उसे उड़ा कर नहीं ले गया, यह इस डर से कि कहीं यह मुझसे भी माँगने न लग जाय ।

सेवा-पद्धति

स्वं जहाति सेवकः सुखञ्च मानमेव च ।
यदर्थमर्थमीहते तदेव तस्य हीयते ॥

सेवक सुख और मान को छोड़ता है ...

एतावज्जन्म साफल्यं यदनायत्तवृत्तिता।
ये पराधीनजन्मानस्ते चेज्जीवन्ति के मृताः॥

किसी के अधीन रहना न पड़े, यही जन्म की सफलता है, जिनका जन्म पराधीनता में बीतता है वे यदि जीवित हैं तो मरा कौन है।

सेवकादपरो मूर्खस्त्रैलोक्येऽपि न विद्यते।
दिने दिने नमन्मोहादुन्नतिं योऽभिवाञ्छति॥

सेवक से बढ़कर मूर्ख इस त्रिलोक में दूसरा नहीं है, जो दिन दिन नवता जाता है पर उन्नति चाहता है।

काके शौचं द्यूतकारेषु सत्यं
क्लीबे धैर्यं मद्यपे तत्वचिन्ता।
ज्ञाने भ्रान्तिः स्त्रीषु कामोपशान्ती
राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा॥

कौए में शुद्धता, जुआरी में सचाई, नपुंसक में धीरता, शराबी में विचार, ज्ञान में भ्रम, स्त्रियों में कामशान्ति और राजा का मित्र होना किसने देखा या सुना है।

पहेली

अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः॥१॥

पैर नहीं है, पर बहुत दूर तक चला जाता है। साक्षर है पर पण्डित नहीं, मुंह नहीं है, पर साफ़ साफ़ बोलता है, इसको जो जानता है वही पण्डित है। उत्तर— पत्र।

वने जाता वनं त्यक्त्वा वने तिष्ठति नित्यशः ।
पण्यस्त्री न तु सा वेश्या यो जानाति स पण्डितः ॥२॥

वन में उत्पन्न हुई है, वन में ही रहती है, वह बाजार की है, पर वेश्या नहीं। इसे जो जानता है वह पण्डित है। —नौका ।

गोपालो नैव गोपालः त्रिशूली नैव शंकरः ।
चक्रपाणिः स नो विष्णुर्यो जानाति स पण्डितः ॥३॥

गोपाल है पर गोपाल (कृष्ण) नहीं है, त्रिशूली है। शंकर महादेव नहीं है, चक्रपाणि है, पर विष्णु नहीं है। इ जो जानता है, वह पण्डित है। उत्तर--सांड।

उच्छिष्टं शिवनिर्माल्यं वमनं शवकर्पटं ।
काकविष्ठा समुत्पन्नः पंचैतेति पवित्रकाः ॥४॥

जूठा, शिव का निर्माल्य, वान्त किया हुआ, मुर्दे का कपड़ा, कौए की विष्ठा से उत्पन्न ये पांच वस्तु पवित्र हैं। क्रम से उत्तर—दूध, गंगाजल, मधु, रेशम और वट ।

काचिन्मृगाक्षी प्रियविप्रयोगे गन्तुं निशा पारमपारयन्ती ।
वद्गातुमादाय करेणवीणामेणाङ्कमालोक्य शनैरहासीत् ॥५॥

एक स्त्री पति विरह के कारण रात काटने में असमर्थ हो गयी। अतएव गाने के लिए उसने हाथ से वीणा उठायी, पर चन्द्रमा को देखकर उसने वीणा धीरे से रख दी। वीणा रखने का कारण यह है कि मृगाङ्क (चन्द्रमा) के गोद में रहने वाला मृग, यदि मेरा गाना सुनने के लिए चन्द्रमा को छोड़ कर आवे, तो चन्द्रमा निष्कलङ्क हो जायगा और वह मेरे मुख की बराबरी करने लगेगा।

तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः।
गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥६॥

तरुणी ने गले में आलिङ्गन किया है, जो नितम्ब (कमर के पीछे का भाग) पर स्थित है, गुरुओं (भारी वस्तु) के समीप भी कौन बारबार बोलता है। उत्तर--आधा भरा घड़ा।

वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजस्त्रिनेत्रधारी न च शूलपाणिः।
त्वग्वस्त्रधारी न च सिद्धयोगी जलं च बिभ्रन्न घटो न मेघः ॥७॥

वृक्ष के अग्रभाग में रहता है, पर गरुड़ नहीं है, त्रिनेत्र है पर शिव नहीं है, छाल का वस्त्र धारण करता है पर सिद्ध या योगी नहीं है, जल धारण करता है पर न घड़ा है या न मेघ। उत्तर--नारियल।

एकचक्षुर्न काकोऽयं बिलमिच्छन्न पन्नगः।
क्षीयते वर्द्धते चैव न समुद्रो न चन्द्रमाः ॥८॥

उसको एक आँख है पर वह कौवा नहीं है, बिल ढूँढ़ता है, पर सर्प नहीं है, घटता बढ़ता रहता है, पर न समुद्र है और न चन्द्रमा।

अस्थि नाऽस्ति शिरो नाऽस्ति बाहुरस्ति निरंगुलिः।
नाऽस्ति पादद्वयं गाढमंगमालिंगति स्वयम् ॥९॥

हड्डियां नहीं हैं, सिर नहीं है, बाहु हैं पर अंगुलि नहीं है, दोनों पैर भी नहीं हैं, पर समस्त अंगों को वह स्वयं आलिङ्गन करती है। अँगरखा।

नरनारीसमुत्पन्ना साक्षी देहविवर्जिता।
अमुखी कुरुते शब्दं जातमात्रा विनश्यति ॥१०॥

स्त्री और पुरुषों से वह उत्पन्न होती है, वह स्त्री है पर उसके शरीर नहीं है, उसके मुँह नहीं हैं, पर वह शब्द करती है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाती है। उत्तर—चुटकी।

दन्तैर्हीनः शिलाभक्षी निर्जीवो बहुभाषकः।
गुणस्यूतिसमृद्धोऽपि परपादेन गच्छति ॥११॥

उसके दांत नहीं है, पर वह पत्थर खाता है, उसके ... नहीं हैं पर वह बहुत बोलता है, गुण (सूत) से युक्त है, दूसरों के पैरों से चलता है। उत्तर—जूता।

न तस्याऽऽदिर्न तस्यान्तो मध्ये यस्तस्य तिष्ठति।
तवाऽप्यस्ति ममाऽप्यस्ति यदि जानासि तद्वद ॥१२॥

न उसकी आदि है और न अन्त, (यः मध्ये तिष्ठति)। मध्य में रहता है। वह तुम्हारे भी है और हमारे भी। यदि जानते हो तो बतलाओ। नयन

अनेकसुषिरं वाद्यं कान्तं च ऋषिसंज्ञितम्।
चक्रिणा च सदाराध्यं यो जानाति स पण्डितः ॥१३॥

जिसमें अनेक बिल हैं, जिसकी आदि में व है और मध्य में क है और वह ऋषि का नाम है, सांप उसकी आराधना करते हैं, जो इसको जानता है वह पण्डित है। उत्तर—वाल्मीक

वने वसति को वीरो योऽस्थिमांसविवर्जितः।
असिवत्कुरुते कार्यं कार्यं कृत्वा वनं गतः ॥१४॥

वह कौन वीर वन (जल) में रहता है, जिसके हाड़ मांस नहीं है, आ तलवार के समान काम करता है और काम करके य न (जल) में चला आता है। कुंहार का डोरा।

अपूर्वोऽयं मया दृष्टः कान्तः कमललोचने ।
शोऽन्तरं यो विजानाति स विद्वान्नात्र संशयः ॥१५॥

मैंने यह अपूर्व (अ जिसके पहले हो), कान्त (जिसके अन्त में "क" हो) देखा, जिसके मध्य में "शो" है इसको जो जानता है वह पण्डित है, इसमें सन्देह नहीं। उत्तर—अशोक।

आद्येन हीनं जलधावदृश्यं मध्येन हीनं भुवि वर्णनीयम् ।
अन्तेन हीनं ध्वनते शरीरं हेमाभिधः स्वप्रियमातनोतु ॥१६॥

आद्य अक्षर से हीन होने पर वह समुद्र में अदृश्य होता है, मध्यहीन पृथिवी में रहता है, अन्त से हीन होने पर शरीर का एक अंग होता है वह हेम नाम वाला तुम्हारा कल्याण करे। उत्तर—करज।

सदारिमध्यापि न वैरियुक्ता नितान्तरक्तापि सितैव नित्यम् ।
यथोक्तवादिन्यपि नैव दूती का नाम कान्तेति निवेदयाशु ॥१७॥

जो सदारिमध्या अर्थात् सदा अरियों के मध्य में है अथवा जिसके मध्य में सदा "रि" है, पर वह वैरियुक्त नहीं है, नितान्त रक्त है पर सिता (श्वेत या स अक्षर से युक्त) है कही बात कहती है, पर दूती नहीं है, कान्ते, शीघ्र बतलाओ वह कौन है। उत्तर—सारिका।

चक्री त्रिशूली न हरो न विष्णुर्महाबलिष्ठो न च भीमसेनः ।
स्वच्छन्दचारी नृपतिर्न योगी सीतावियोगी न च रामचन्द्रः ॥१८॥

चक्र और त्रिशूल धारण करता है पर न तो विष्णु हैं और न शिव, बहुत बलवान है पर भीमसेन नहीं है, इच्छा पूर्वक चला करता है, पर न राजा है न योगी, सीता (जानकी या हल) का वियोगी है, पर रामचन्द्र नहीं है। उत्तर—सांड़।

नवोढा ।

कांची धामनि वेशयन् वितनुते वासः श्लथं सुभ्रु वो-
हारं वक्षसियोजयन् करतलं धत्ते कुचांभोरुहे ।
जल्पन् चाटु वचोधरं धयति यन्मेयान् कुतो विस्मयः-
पांशुं चक्षुषि विक्षिपन् यदि धनं गृह्णाति पाटचरः ॥१९॥

प्रियतम करधनी ठीक करते हुए नायिका का वस्त्र ढीला कर देता है, हार पहनाते हुए अपने हाथ स्तनों पर रखता है, मीठी मीठी बातें करता हुआ अधरपान करता है, इसमें क्या आश्चर्य है, चोर तो आंखों में धूल डालकर धन उठा ले जाता है ।

बलान्नीता पार्श्वं मुखमभिमुखं नैव कुरुते
धुनाना मूर्धनं हरति बहुशश्चुंबनविधिम् ।
हृदिन्यस्तं हस्तं क्षिपति गमनारोपितमना
नवोढ़ा वोढ़ारं सुखयति च संतापयति च ॥२०॥

बलपूर्वक जब वह पास लायी जाती है तब सामने मुंह नहीं करती, मस्तक कंपा कर चुंबन में विघ्न डालती है, हृदय पर हाथ रखते ही वह जाने के लिए तैयार हो जाती है, इस प्रकार नवोढ़ा पति को सुखी भी करती है और सन्तापित भी करती है ।

मातः केलि गृहं न यामिशयितुं कस्मात्तु चन्द्रानने
जामाता तव निर्दयो निजभुजापाशेन मां पीडति ।
अङ्गानि क्षतते निजैः कररुहैर्दन्तैर्दशत्योष्ठके
नीवीबन्धविमोक्षणं च कुरुते निद्रां न लेभे निशि ॥२१

मा, अब मैं केलिगृह में सोने न जाऊँगी। उसने पूछा, क्यों? नवोढ़ा ने कहा, तुम्हारा दामाद बड़ा निर्दयी है, वह मुझे अपने भुजपाश से दबाता है अपने नखों से वह मेरे अंगों को क्षत विक्षत करता है, ओंठ काटता है, वस्त्र भी......मैं रात सो न सकी।

धैर्यं धेहि सुते हतेनशरते भर्तु र्भयं मा कृथा-
श्चेष्टास्तस्य सहस्व यौवनवतो नानाविधाः कामदाः।
वाच्यं नैव कदापि कस्य निकटे रीतिस्त्वियं वर्त्तते-
स्त्रीणामीदृशमाकरोत्तवपिता जानीह पूर्वंहि मां ॥४॥

माता ने उत्तर दिया, बेटी धैर्य धारण करो, पति का भय न करो, उस युवक की अनेक प्रकार की चेष्टाओं को सहो, यह बात किसी दूसरी जगह न कहना, स्त्रियों की ऐसी ही रीति चली आयी है, तुम्हारे पिता ने भी पहले मुझसे ऐसा ही किया था।

दीपांकुरः स्फुरति पश्यति केलि कीरो
जालेनिवेशत मुखीव सखी च कास्ति।
इत्थं विचिंत्य वचसानशशाक बाला
नाथं निषेद्धुमनिषेद्धुमपित्रपाभः ॥५॥

दीपक जल रहा है, क्रीड़ा शुक देख रहा है, खिड़की में मुँह लगाये सखी भी खड़ी है, इस प्रकार सोचकर लज्जा के कारण बाला पति को न निषेध ही कर सकी और न अनिषेध।

प्रोषित भर्तृका

लोलो मधुपः पिकः परभृतो झंझानुसारी मरुत्
कीरो भाषितवाक्यमात्रपठनप्रौढः पयोदो जडः ।
हंसः संततपक्षपात निरतस्तस्मादमीषामिमां
मुग्धाहं प्रहिणोमि केन कठिन स्वान्ताय कान्ताय मे ॥१॥

भ्रमर मधु पीने वाला है, पिक दूसरों के द्वारा पोषित हुआ है, वायु झंझा (अपसार) ढूँढनेवाला है, शुक कही बात को कहने में ही चतुर है। मेघ जड़ है, हंस सदा पक्षपात करने में लगा रहता है, फिर मैं अपनी यह अवस्था बतला कर कठिन चित्त प्रियतम के पास किसको भेजूँ।

मालावालाम्बुजदलमयी मौक्तिकीहार यष्टिः
कांचीबाले क्वणति हरी सुभ्रु वपन्तीव ।
अस्यान्न च सा किमपि चपली कर्णेनालवेति
बाष्पं वाहोत्सङ्ग वलयं पाणिमूलं प्रयाति ॥२॥

कमल दल की बनायी माला और मोतियों का हार दोनों उस की करधनी बन गये हैं, और क्या कहा जाय! उसकी साड़ी चल रही है कि नहीं, इस बात का जानने के लिए कलाई का कंकण बाहुमूल में चला गया है। अर्थात् तुम्हारे वियोग में वह बहुत दुबली हो गयी है।

अन्यत्रेन्दुं विरहिकला सदन वेदना भूयसी
वीक्ष्य सवनमर्त्या प्रयत्नेन सकैतमसः ।
समस्तविदिनमिदपुर्वं विचिन्त्य नामनामानम्
स्वामामुख वार्के विचिन्त्य मा कृत न मुख ॥३॥

मेरे हृदय में दारुण कामवेदना देकर मेरे स्वामी इसी तुम्हारे मार्ग से गये। कौआ, उस समय तुम उनके सामने बोले क्यों नहीं ? अरे घर की तोती, तुमने छींका क्यों नहीं !

खंडिता

आतस्तेनिशिजागरोममपुनेनेत्रांबुजेशोणिमा-
निस्पीतं भवता मधु प्रचिततद्याघूर्णितं मे मनः।
भ्राम्यद्भृगंघनेनिकुंजभवने लब्धंत्वया श्रीफलं-
पंचेषुः पुनरेषमां बहुनरैः क्रूरैः शरैः कृंतति ॥१॥

स्त्री कहती है, रात को आपने जागरण किया है, और मेरी आखें लाल होगयी हैं, आपने रात को खूब शराब पी है और मेरा मन घूम रहा है। भ्रमर गूँजनेवाले लतागृह में आपने फल पाया है, पर यह कामदेव कठिन शरों से मुझे सता रहा है।

प्रातः प्रातरुपागतोसिजनितानिनिंद्रित्वा यदुपो-
मेंद्रायाममगौरवं व्यपहृतं प्रोत्पादितंलाघवं।
किंतपत्र कृतं त्वयारमणमीशुंकामयागम्यते
दुःखं तिष्ठति यत्तपथ्य मधुनाकर्तास्मितच्छ्रोष्यसि ॥२॥

इस समय बड़े प्रातःकाल आये हो, रात भर तुमने मुझे जगाया, मुझ मूर्ख का तुमने गौरव नष्ट किया, मुझे हलका बनाया, क्या तुमने नहीं किया ? प्यारे, अब मैंने भी भय छोड़ दिया, जाती हूँ और अपने हित की जो बात मैं करूँगी, वह तुम सुनोगे।

स्वाधीनपतिका

अस्माकं सखि वाससी न रुचिरे ग्रैवेयकं नोज्ज्वलं
नो वक्रांगतिरुद्धतं न हसितं नैवास्तिकश्चिन्मदः।
किंत्वन्येपिजना वदंतिसुभगोप्यस्याः पतिर्नान्यतो-
दृष्टिं निक्षिपतीति विश्वमियतां मन्यामहेदुःखितं ॥१॥

सखि, तुम्हारे कपड़े अच्छे नहीं हैं गले का हार भी सुन्दर नहीं है तुमारी चाल भी पेंठ की नहीं है हँसी भी रसीली नहीं है और किसी बात का भी अहंकार नहीं है। पर दूसरे भी यह बात कहते हैं कि इसका पति दूसरी ओर नहीं देखता। मैं इसीसे सब की अपेक्षा अपने को भाग्यवान् समझती हूँ।

श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रू भंग वक्रं क्षणा-
न्मर्मच्छेदपटु प्रतिक्षणमसौ वृ तेन नांदावचः।
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनो वेपते
कांतः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेतावदागः सखि ॥२॥

सास मेरी ओर देखती ही नहीं, देखती भी है तो आंखे टेढ़ी करके। ननद प्रतिक्षण हृदय को जलाने वाली बात बोलती है, औरों की बात क्या कहूँ, उनके चरित का स्मरण के ही हृदय काँप जाता है। सखि, मेरा अपराध यही है कि प्रियतम मुझपर प्रेम करते हैं, मुझे प्रेम की दृष्टि से देखते हैं।

अभिसारिका

त्रिप्रोत्कीर्यादपि विषधराद्रीतिभाजो निशायां-
किं तद्दृब्रूमस्त्वदभिसरणे साहसं नाथ तस्याः।

इति स्मारं स्मारं दरदलित शीतद्युतिरुचौ
सरोजाक्षी शोणं दिशिनयनकोणं विकिरति ॥४॥

क्या यह मार्ग में डांक आयी जो कुपित सर्पिणी के
ारण भयानक हो गया है? कुल के नियम पालन करनेवालों
ने कितने कठोर वचन मैंने न सहे। इन बातों का स्मरण
करके कमलाक्षी उस दिशा की ओर लाल आँखों से देखती
है जिस दिशा में चन्द्रमा थोड़ा उदित हो रहा है।

सितं वसनमीर्यतंवपुरिनीलचोलभ्रमा-
न्मयामृगमदाशयामलयजद्रवः सेवितः।
करणे प्रतिबोधितः स्वजन शंकया दुर्जनः
परं परम पुण्यतः सखि न लंघितादेहली ॥५॥

नील वस्त्र के भ्रम से मैंने श्वेत वस्त्र पहन लिये, कस्तूरी
के भ्रम से मलय चन्दन का उपयोग किया। स्वजन समझ
कर दुर्जन को हाथ से जगाया। पर सखि! भाग्य की
बात है कि उस समय तक मैं देहली के बाहर नहीं
गयी थी।

इह जगति रतीशप्रक्रियाकौशलिन्याः
कति कति न निशीथे सुभ्रुवः संचरन्ति।
प्रमतुविधि हतायाः जायमानस्मितायाः
सहचरि परिपंथीदंतदंताशुरेव ॥६॥

इस जगत् में कामकला में कुशल कितनी स्त्रियाँ रात को
नहीं घूमती हैं, पर मैं ऐसी अभागी हूँ कि मुझे हँसी आ
जाती है, और मेरे दाँतों की प्रभा ही मेरा दुश्मन हो
जाती है।

सामान्य वनिता

पौरादपि शङ्कसे हिमरुचोरप्यंशुपोलज्जसे-
भोगीन्द्रादपि चेद्बिभेषि तिमिरस्तोमाद् विभ्रस्यसि ।
चेत्कुञ्जादपि दूयसे जलधरध्वानादपि क्षुभ्यसि
प्रायः पुत्रि हतास्मि हन्त भविता त्वत्तः कलंकः कुले ॥१॥

यदि तुम नागरिकों से शङ्कित होती हो, चन्द्रमा की किरणों से भी लज्जित होती हो, साँपों से भी डरती हो, अन्धकार से भी भयभीत होती हो, लताकुंज से भी घबड़ाती हो, मेघ गर्जन से भी क्षुभित होती हो, तब तो बेटी, मैं मारी गयी, तुमने कुल में कलंक लगाया ।

वयं बाल्ये बाला तरुणिमनि यूनः परिणता-
वपीच्छामो वृद्धान्परिणयविधानं स्थितिरिति ।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सती लांछनमभूत् ॥२॥

हम लोग बाल्यावस्था में बालकों से, यौवन में युवकों प्रौढ़ों और वृद्धों से भी ब्याह करती हैं, यही रीति चली आयी है । पर तुमने इस एक ही पति के साथ जन्म बिताना निश्चय किया है । बेटी ! यह तुमने क्या किया ? हमारे कुल में आज तक सती होने का कलंक नहीं लगा है । हमारे कुल में आजतक कोई भी सती नहीं हुई है ।

दिवसे घटिकास्त्रिंशत्रिंशद्घटिकाः पर रजनौ ।

सामान्य वनिता

चेत्पौरादपिशंकसेहिमरुचोरप्यर्चिषोलज्जसे-
भोगीन्द्रादपिचेद्बिभेषितिमिरस्तोमाद पित्रस्यसि ।
चेत्कुंजादपिद्रूयसे जलधर ध्वानादपिक्षुभ्यसि
प्रायः पुत्रिहतास्मिहंत भविता त्वत्तः कलंकः कुले ॥१॥

यदि तुम नागरिकों से शङ्कित होती हो, चन्द्रमा की किरणों से भी लज्जित होती हो, सांपों से भी डरती हो, अन्धकार से भी भयभीत होती हो, लताकुंज से भी घबड़ाती हो, मेघ गर्जन से भी क्षुभित होती हो, तब तो बेटी, मैं मारी गयी, तुमने कुल में कलंक लगाया।

वयं बाल्ये बाला तरुणिमनियूनः परिणता-
नपीछामो वृद्धान्परिणय विधार्न स्थितिरिति ।
त्वयारब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैकपतिना
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सती लांछनमभून् ॥२॥

हम लोग बाल्यावस्था में बालकों से, यौवन में युवकों प्रौढ़ों और वृद्धों से भी ब्याह करती हैं, यही रीति चली आयी है। पर तुमने इस एक ही पति के साथ जन्म बिताना निश्चय किया है। बेटी! यह तुमने क्या किया? हमारे कुल में आज तक सती होने का कलंक नहीं लगा है। हमारे कुल में आजतक कोई भी सती नहीं हुई है।

दिवसे घटिकास्त्रिंशत्त्रिंशद्घटिकाः पर रजनौ ।
लक्षंनगर युवानस्तातविधातः किमाचरितं ॥३॥

दिन में तीस घड़ियां होती हैं और रात में तीस; नगर में लाखों युवक हैं। हाय, विधाता ने यह क्या किया?

अपरीक्षितलक्षणप्रमाणैरपरामृष्ट पदार्थसार्थतत्त्वैः ।
अवशीकृतजैत्रयुक्तिजालैरलमेतैरनधीततर्कविद्यैः ॥३॥

इनसे क्या होनेवाला है ? इन्होंने लक्षण और प्रमाणों की परीक्षा नहीं की है, पदार्थ तत्वों का इन्होंने ज्ञान नहीं प्राप्त किया है, जय की युक्तियों को इन्होंने वश में नहीं किया है।

ज्ञानाब्धिरक्षि चरणः कणभक्षकश्च
श्री पक्षिलोऽप्युदयनः स च वर्धमानः ।
गंगेश्वरः शशधरो बहवश्च नव्या,
ग्रंथैर्व्यधंत इमे हृदयांऽधकारं ॥४॥

ज्ञान-समुद्र गौतम, कणाद, पक्षिल स्वामी, उदयन, वर्धमान, गंगेश्वर, शशधर तथा और भी अनेक नवीन ग्रन्थकार अपने ग्रन्थों से हृदय का अन्धकार दूर करते हैं।

नैयायिक-निंदा

कर्मब्रह्मविचारणांविजहतोभोगापवर्गप्रदां-
घोरं कंचन कंठशोष फलकं कुर्वन्त्यमीतार्किकाः ।
प्रत्यक्षं न पुनाति नाऽपहरते पापानि पीलुच्छटा-
व्याप्तिर्नाऽवतिनैव पात्यनुमितिर्नो पक्षता रक्षति ॥१

ये नैयायिक कर्म और ब्रह्म के उस विचार का त्याग करते हैं जो भोग और मुक्ति देता है। केवल गला सुखाने वाला गर्जन करते हैं। प्रत्यक्ष पवित्र नहीं बनाता, पीलुवाद पापों को दूर नहीं करता, अनुमति भी रक्षा नहीं करती, पक्षता की भी यही दशा है।

हेतुः कोऽपि विशिष्टधीरनुमितौ न ज्ञान युग्मं मत-
द्वाधोनेति च मोघवादमुखरा नैयायिकाश्चेद्बुधाः ।
मेषस्याण्डमियत्पलं बलिभुजो दन्ताः कियन्तस्तथे-
त्येवं संतत चिन्तनैः श्रमजुषो न स्युः कथं पंडिताः ॥२॥

अनुमान में विशिष्ट बुद्धि हेतु है, दो ज्ञान नहीं, इस प्रकार की व्यर्थ की बातें जो बका करते हैं वे नैयायिक यदि पण्डित समझे जांय तो भेड़ का अंडकोश कितने पल का है, कौए के कितने दांत होते हैं, इस प्रकार की निरर्थक बातें जो करते हैं वे भी क्यों न पण्डित माने जांय ?

न जिघ्रत्याम्नायं स्पृशति न तदंगान्यपि सकृत्-
पुराणं नादत्ते न गणयति किं चस्मृतिगणम् ।
पठन् शुष्कं तर्कं परपरिभवार्थोक्तिभिरसौ
नयत्यायुः सर्वं निहतपरलोकार्थयतनः ॥३॥

नैयायिक वेदों को सूंघते तक नहीं, वेदांगों को छूते भी नहीं, पुराणों को एक बार भी नहीं देखते, स्मृतियों को तो कुछ समझते ही नहीं, वादी को परास्त करने के लिए केवल शुष्क पाठ पढ़ते रहते हैं । इस प्रकार अपनी समस्त आयु नष्ट कर देते हैं, परलोक को भूल जाते हैं ।

प्रयत्नै रस्तोकैः परिचितकुतर्कप्रकरणाः
परं वाचोवश्यान्कतिपयपदौघान् विदधतः
सभायां वाचाटाः श्रुतिकटु रटंतो घट पटान्
न लज्जन्ते मंदाः स्वयमपि तु जिह्रेति विबुधः ॥४॥

बड़े प्रयत्नों से इन्होंने कुतर्क प्रकरण का परिचय प्राप्त किया है, कतिपय शब्द समूहों का ये प्रयोग करते हैं, कान फाड़नेवाले घट पट आदि शब्दों का प्रयोग ये सभा में खूब

करते हैं। पर ये मूर्ख हैं इसलिए लज्जित नहीं होते, क्योंकि लज्जित तो विद्वान् होते हैं।

गणक-प्रशंसा

न दैवं न पित्र्यं च कर्माऽत्रसिद्ध्येच यत्राऽस्ति देशे न मुज्योतिषज्ञः।
न तारा न वारा नत्रानां ग्रहाणां न तिथ्यादयो वा यतस्तत्र बुद्धाः ॥१॥

जहां ज्योतिष विद्या जानने वाले नहीं हैं वहां देवता और पितर सम्बन्धी कोई कार्य सिद्ध नहीं होते। क्योंकि वहां वालों को तिथि नक्षत्र आदि का ज्ञान नहीं होता।

भानोः शीतकरस्यवाऽपि भुजगग्रासे पुरो निश्चिते—
तीर्थानामटनं जनस्य घटते तापत्रयोच्चाटनम्।
दृष्टे प्रागवधारिते सति घनेस्तुष्टेश्चलाभो भवे—
दृष्टे तु व्यसनेऽत्र तत्परि हृतिः कर्तुं जपाद्यैः क्षमा ॥२॥

सूर्य या चन्द्रमा का ग्रहण पहले से मालूम हो जाने पर ही मनुष्य तीर्थयात्रा के लिए जा सकता है, जिससे उसके त्रिताप नष्ट हो जांय। हमारे अमुक मनोरथ की सिद्धि होने वाली है यह बात पहले से मालूम होने पर मनुष्य को धैर्य होता है और वह प्रसन्न होता है। दुःख आनेवाला है यह बात जब पहले मालूम हो जाय, तभी जप आदि के द्वारा उसका प्रतीकार किया जा सकता है।

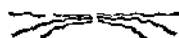
वृद्धिह्रासौ कुमुदसुहृदः पुष्पवन्तो परागः
शुक्रादीनामुदयविलयाविस्मयी सर्वदृष्टाः।
आविष्कुर्वन्त्यखिलवचनेष्वत्र कुंभीपुलाक—
व्यापारोत्थैर्वितिरिदीनिरत्नं मासमात्रम् ॥३॥

विलिखति सदसद्वा जन्मपत्रं जनानां
फलति यदि तदानीं दर्शयत्यात्मदाक्ष्यं ।
न फलति यदि लग्नं द्रष्टुरेवाऽज्ञमोद-
हरति धनमिहैवं हंत दैवज्ञपाशः ॥३॥

ये ज्योतिषी मनुष्यों का झूठ सच जन्मपत्र बनाते हैं, यदि फल ठीक उतरा तब ये अपनी विद्वत्ता दिखाते हैं, यदि फल न घटा तो लग्न देखनेवाले का अज्ञान बतलाते हैं, इस प्रकार ये मूर्ख लोगों का धन हरते हैं।

प्रमोदे खेदे वाऽप्युपनमतियं सो विधिवशा-
न्मयैवं प्रागेवाऽभिहितमिति मिथ्या कथयति
जनानिष्टाऽनिष्टाऽकलन परिहारैकनिरता-
नसौ मेषादीनां परिगणनयैव भ्रमयति ॥४॥

भाग्यवश मनुष्यों को दुःख सुख होता है। पर ज्योति जी कहते हैं देखो मैंने यह पहले ही बता दिया था, पर उन यह बात झूठी होती है। अपने इष्ट अनिष्ट जानकर उसे करने की इच्छा रखनेवालों को ये मेष वृष आदि की गण से मोह में डाला करते हैं।



वैद्य-प्रशंसा

गुरोरधीताऽखिलवैद्यविद्यः पीयूषपाणिः कुशलः क्रियासु ।
गतःस्पृहो धैर्यधरः कृपालुः शुद्धोधिकारी भिषगीदृशः स्यात् ॥१॥

जिसने गुरु से विद्याध्ययन किया है औ अमृतपाणि क्रिया में कुशल है, निस्पृह, धीर, कृपालु, शुद्ध और अधिका है, वही वैद्य है। वैद्य में इन गुणों का होना आवश्यक है।

रागादि रोगान् सततानुषक्तानशेषकायप्रसृतानशेषान् ।
औत्सुक्यमोहारतिदाञ्जघान योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥२॥

राग आदि रोग सदा लगे रहते हैं, ये समस्त शरीर में फैले हुए हैं। इनसे उत्सुकता, मोह, अरति आदि उत्पन्न होते हैं। इनको जिन पूर्व वैद्यों ने दूर किया है, उनको नमस्कार।

मस्ते दुःसहवेदनाकवलिते मग्ने स्वरे तर्गल-
तप्तायां ज्वरपावकेन च तनौ तान्ते हृषीकव्रजे ।
दूने बन्धुजने कृतप्रलपने धैर्यं विधातुं पुनः
कः शक्तः कलितामयप्रशमनो वैद्यात्परो विद्यते ॥३॥

सिर में भयानक वेदना हो रही हो, स्वर पड़ गया हो, ज्वर से शरीर जल रहा हो, इन्द्रियां शिथिल होगयी हों, बन्धु दुःखी हों और रो रहे हों उस समय वैद्य के अतिरिक्त धैर्य देने वाला दूसरा कौन समर्थ हो सकता है।

मात्रोषधिर्वैद्यकमयाऽपि महाऽमयेषु मासेषु यं भिषगिति प्रथितस्तमेव ।
आकारयत्यखिल एव विशेषदर्शी लोकोऽपि तेन भिषगेव न दूषणीयः ॥४॥

वैद्यक न जानता हो पर वैद्य के नाम से जो प्रसिद्ध हो बीमारी के समय में लोग उसे को बुलाते हैं, सभी बुलाते हैं जिन लोगों को बहुत अनुभव है वे भी बुलाते हैं इसमें उस वैद्यका क्या दोष है। उसे दोष न देना चाहिए।

निर्वृत्ताध्वरकृत्य ऋत्विजमहोनीर्णांतरङ्गोनाविक-
युद्धान्ते सुभटं च सिद्धविजयो योद्धारमासन्नखलः ।
वृद्धं वारवधूजनं चकितधी निर्वृत्तवीवनो
ध्वस्ताऽऽतङ्कचयश्चिकित्सकमपि द्वेष्टि प्रदेयार्पितम् ॥५॥

यज्ञ समाप्त होने पर ऋत्विज को, नदी पार जाने पर नाविक को, युद्ध समाप्त होने पर सैनिकों को, स्थान पर पहुँच

आने पर ढोने वाले को, वृद्ध। वेश्या को, रोग के दूर होने पर वैद्य को और जिसको देना है वैसे अर्थी को, लोग देखते तक नहीं। उनसे दूरही रहते हैं।

> भ्रांता वेदांतिनः किं पठथ शठतयाऽद्यापि चाऽद्वैत विद्यां-
> पृथ्वीतत्त्वे लुठंतो विमृशथ सततं कर्कशास्तार्किकाः किम् ।
> वेदैर्नानागमैः किं ग्लपयथ हृदयं श्रोत्रियाः श्रोत्रशूलै-
> र्वैद्यं सर्वानवद्यं विचिनुत शरणं प्राणसंप्रीणनाय ॥६॥

भाई वेदान्ती, क्या तुम पागल होगये हो? आज भी अद्वैत विद्या पढ़ रहे हो। नैयायिको, आजभी पृथ्वी तत्वका विचार करते कर्कश तर्कशास्त्र का विचार कर रहे हो? वेदों से क्यों हृदय सुखा रहे हो! सबसे उत्तम वैद्य-विद्या की शरण जाओ। जिससे प्राणों की रक्षा हो।

कुवैद्योपहास

> वैद्यराज नमस्तुभ्यं यमराज सहोदर।
> यमस्तु हरति प्राणान् वैद्यः प्राणान् धनानि च ॥१॥

हे यमराज के सहोदर भाई वैद्यराज! आपको नमस्कार यम तो केवल प्राण ही हरता है और वैद्य प्राण तथा धन दोनों हरते हैं।

> मिथ्योपधैर्हृत मृषाकषायैरसह्यलेह्यै रयथार्थतैलैः।
> वैद्या इमे वंचित रुग्णवर्गाः पिचण्डभाण्डं परिपूरयंति ॥२॥

झूटी दवाइयों से झूटे काढ़ों से असहनीय लेपों और झूटे तेलों से ये वैद्य रोगियों को ठगते हैं और अपनी मुट्ठी गरम करते हैं।

न धातोर्विज्ञानं न च परिचयो वैद्यकनये
न रोगाणां तत्त्वावगतिरपि नो वस्तुगुणधीः ।
तथाऽप्येते वैद्या इति तरलयंतो जड़ जना-
नसून्मृत्योर्भृत्या इव वसु हरंते गदजुषाम् ॥३॥

धातु से परिचय नहीं, वैद्यक का ज्ञान नहीं, रोगों ,के विषय में कुछ मालूम नहीं, औषधों के गुण का ज्ञान नहीं, फिर भी ये वैद्य मूर्खों को मोहित करते हैं। यमराज (मृत्यु) के समान रोगियों के प्राण हरते हैं और साथ ही धन भी।

कषायैरुपवासैश्च कृतामुल्लाघतां नृणाम् ।
निजौषधकृतो वैद्यो निवेद्य हरते धनं ॥४॥

उपवास आदि के द्वारा मनुष्य नीरोग हो जाता है, वैद्य जी कहते हैं कि मेरी दवाइयों के द्वारा ऐसा हुआ है, और लोगों से धन लेते हैं।

अज्ञातशास्त्रसद्भावान् शास्त्रमात्रपरायणान् ।
त्यजेद्दूराद्भिषक्पाशान्पाशान्वैवस्वतानिव ॥५॥

जिन्होंने शास्त्रीय रहस्यों को नहीं जाना है अथवा जो केवल शास्त्र ही जानते हैं ऐसे वैद्यों को दूर ही से नमस्कार करे,, वे यमराज के पाश हैं, उनका दूर ही रहना अच्छा।

वैयाकरण

(प्रशंसा और निन्दा)

वैयाकरणकिरातादपशब्दमृगाः क यांति संत्रस्ताः ।
ज्योतिर्नटविटगायकभिषगाननगह्वराणि यदि न स्युः ॥१॥

वैयाकरण रूपी किरात से डरकर वे अशुद्ध शब्दरूपी मृग कहाँ जाते, यदि ज्योतिषी, नट विट, गायक और वैद्यों की मुखरूपी गुफा न होती।

कुत्वोः कः पीव शेषोऽध्यसखि ससजुषोरुर्विरामोऽवसानं
शश्छोटीत्यादिशब्दैः यदपि यदि शठाः शाब्दिकाः पण्डिताः स्युः।
तेषां को वाऽपराधः कथयत सततं ये पठन्तीह धीमन्—
तायथ्यायथथथथाधिगधिगधिगधिगथदथदथेति शब्दान् ॥३॥

कुत्वोः कः पीव, शेषोऽध्यसखि, ससजुषोरुर्विरामोऽवसानम्, शश्छोटो आदि कठिन कठिन शब्दों को रटने वाले वैयाकरण यदि पण्डित कहे जांय तो जो लोग ताथैया ताथैया धिग् धिग् आदि शब्द कहते हैं उन लोगों का क्या अपराध है ?

टिड्ढाणञ् द्वयसज्दघ्नञ्ङसिङसो स्तिसम्भिम्यिभ्यस्भ्यसि-
ङ्वस्मस्ताहशिचष्टुनाष्टुरतङ्ञ शश्छोऽस्यचोऽन्त्यादिटिः
लोपोव्योर्वलिवृद्धिरेचियचिभं दाधाघ्वदाप् ठेचटे
रित्यन्द्रानखिलानयन्ति कतिचिच्छब्दान् पठन्तः कटून् ॥३॥

टिड्ढाणञ् ङसिङसो आदि कर्णकटु शब्दों को रटते रटते वैयाकरण अपना जीवन समाप्त कर देते हैं।

सूत्रैः पाणिनिनिर्मितैर्बहुतरैर्निष्पाद्य शब्दाऽऽवलिं-
वैकुण्ठस्तवमक्षमा रचयितुं मिथ्याश्रमाः शाब्दिकाः
पक्वान्नं विविधं श्रमेण विविधा सूपाग्रसूपाऽन्वितं
मंदाऽग्नीन्पुरुषधते मितबलानामातुमप्यक्षमान् ॥४॥

पाणिनि के बनाये सूत्रों से अनेक शुद्ध शब्द बनाकर वैयाकरण भगवान् की स्तुति-पद्य बनाने का व्यर्थ परिश्रम कर रहा है। बहुत परिश्रम से बनाया पक्वान्न क्या मन्दाग्नि वाले मनुष्य के काम का होता है? वे तो उसे सूंघ तक नहीं सकते।

कृतदुरितनिराकरणं व्याकरणं चतुरधीरधीयानः ।
बुधगणगणनाऽवसरे कनिष्ठिकायां परं जयति ॥५॥

अशुद्धियों को दूर करनेवाले व्याकरण का अध्ययन बुद्धिमान् करते हैं । जब विद्वानों की गणना होती है तब पहले नाम उन्हीं का आता है ।

पातंजले विष्णुपदाऽऽपगायाः पातंजले चापि नयेऽवगाहं ।
आचक्षते शुद्धिदमा प्रसूनेराचक्षते रागमधोक्षजे च ॥६॥

गंगा के जल में जिसने अवगाहन किया है; और व्याकरण का जिसने अवगाहन किया है उसी का विष्णु में अनुराग समझा जाता है और उसी की शब्द-शुद्धि समझी जाती है ।

नृणामनभ्यस्तफणाभृदीशगिरां दुरापा बुधराजगोष्ठी ।
अशुद्धचापश्रुतिपद्धतीनां युद्धक्षमेवोद्भटयोद्धृसार्था ॥७॥

जिसने व्याकरण का अध्ययन नहीं किया है उसे पण्डितों की सभा नहीं प्राप्त हो सकती है । जो धनुर्विद्या नहीं जानता वह क्या युद्ध में योद्धाओं का साथी हो सकता है !

नांऽगीकृतव्याकरणौषधानामपाटवं वाचि मुधाऽदमारते ।
कस्मिंश्चिदुक्ते तु पदे कथंचित्स्वेदं वपुः स्विद्यति वेपते च ॥८॥

जिसने व्याकरण का औषध नहीं पाया है उसके वचन में सदा अपटुता रहती है यदि किसी प्रकार कोई शब्द कहा भी जाय तो शरीर पसीना पसीना हो जाता है और काँपने लगता है ।

शुभं पाणिनिबद्धं कलयन्पुरुषः समुद्धरति मुद्गभम् ।
वर्णाहीनां पर्वान्दुह्या विविधम्दुं फोन्नी ॥९॥

पाणिनि के सूत्रों का ज्ञान प्राप्त करने से मनुष्यों को अच्छी आँखें मिल जाती हैं, वे वर्णो के धर्म जान जाते हैं और उनका उचित प्रयोग करते हैं।

शब्दशास्त्रमनधीत्य यः पुमान् वक्तुमिच्छति वचः सभांतरे।
बन्धुमिच्छति वनेमदोत्कटं हस्तिनं कमलनालतंतुना ॥१०॥

जो मनुष्य बिना व्याकरण पढ़े सभा में बोलना चा है वह वन में कमल के सूत से मतवाले हाथी को बाँ चाहता है।

वीर प्रशंसा

को वीरस्य मनस्विनः स्वविषयः को वा विदेशस्तथा।
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते बाहुप्रतापाऽर्जितम् ॥
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गुलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते–
तस्मिन्नेव हत द्विपेन्द्र रुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः ॥१॥

मनस्वी वीर के लिए न कोई अपना देश है और न विदे वह जिस देश में जाता है बाहु के प्रताप से अपने अधीन क लेता है। दांत नख और पूँछ रूपी अस्त्रों को धारण कर वाला सिंह जिस वन में जाता है वहीं हाथियों के रुधिर अपनी प्यास मिटाता है।

विनाप्यर्थैर्वीरः स्पृशति बहुमानोन्नतिपदं
समायुक्तोऽप्यर्थैः परिभवपदं याति कृपणः।
स्वभावादुद्भूतां गुण समुदयावाप्ति विषयां
द्युतिं सैंहीं किं श्वा धृतकनकमालोऽपि लभते ॥२॥

वीर धन के बिना भी ऊँचे पद पाते हैं। कृपण धनवान् होने पर भी तिरस्कृत होते हैं। सोने की माला पहनने वाला कुत्ता क्या सिंह को पा सकता है?

एकेनोऽपि हि शूरेण पदाऽऽक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करस्येव स्फारस्फुरति तेजसा ॥३॥

एक वीर भी समस्त पृथिवी तक को अपने वश में कर सकता है। जिस प्रकार एक सूर्य अपनी किरण समस्त संसार में फैला देता है। उसी प्रकार वीर भी अपना प्रताप सब जगह फैला सकता है।

पल्लवतः कल्पतरोरेष विशेषः करस्य ते वीर ।
भूषयति कर्णमेकः परस्तु कर्णं तिरस्कुरुते ॥४॥

वीर, तुम्हारे हाथ और कल्पतरु के पल्लव में थोड़ा भेद है। कल्पतरु का पल्लव कर्ण (कान) को भूषित करता है, और तुम्हारा हाथ कर्ण (इस नाम के राजा) का तिरस्कार करता है।

जिह्वा

हे जिह्वे रसमारज्ञे सर्वदा मधुरप्रिये ।
भगवन्नामपीयूषं पिबत्वेमनिशं सखे ॥ १ ॥

जिह्वे! तू रसों को पहचानने वाली हो, तुम्हें मधुर वस्तु प्रिय है, इस कारण भगवान का नामामृत तुम सदा पिया करो।

भोगेषुमुख्या द्विजमध्यसंस्था वाचाऽनुसंधानपराऽसि नित्यं ।
अर्थास्थिर प्रेमरसारसज्ञे नारस्तुनिंस्यज कर्णवर्ये ॥ २ ॥

जिह्वे, तुम शरीर के अंगों में प्रधान हो, द्विजों (दाँतों) के बीच में रहती तो, तुम मनुष्यों की स्तुति करना छोड़ दो।

रसने रचितोऽयमंजलिस्ते परनिंदापरपैरलं वचोभिः।
नरकाऽपहरंनमः शिवायेत्यमुमादि प्रणवं भजस्व मंत्र ॥ ३ ॥

जिह्वे, मैं तुमको हाथ जोड़ता हूं, परनिन्दा करना व्यर्थ है, नमः शिवाय, तथा प्रणव आदि मन्त्रों को जपो, इससे नरक का भय छूट जाता है

द्वात्रिंशद्दशनद्वेषिमध्ये भ्रमसि नित्यशः।
तदिदंशिक्षिता केन जिह्वे संचार कौशलम् ॥ ४ ॥

जिह्वे, बत्तीस दाँतों के बीच में तुम सदा रहती हो, घूमती हो, वे तुम्हारे शत्रु हैं, महान् कुशलता तुमने कहाँ सीखी।

मूर्ख-निन्दा

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ १ ॥

जिसको स्वयं बुद्धि नहीं है, उसके लिए शास्त्र व्यर्थ है। आँखों के अन्धों को दर्पण से लाभ नहीं होता।

वितरति गुरुः प्राज्ञे विद्यां तथैव यथा जड़े।
न तु खलु तयोर्ज्ञाने शक्तिं करोत्युपहंति वा ॥ २ ॥

गुरु, बुद्धिमान और निर्बुद्धि दोनों प्रकार के शिष्यों को समान भाव से पढ़ाता है। उनमें एक का ज्ञान बढ़ा देता है और दूसरे का ज्ञान नष्ट कर देता है, ऐसा नहीं करता।

भवति च पुनर्भूयान्भेदः फलं प्रति तद्यथा ।
प्रभवति शुचांविम्बोद्ग्राहेमणिर्न मृदां चयः ।। ३ ।।

पर फल में बड़ा भेद हो जाता है एक विद्वान् हो जाता और दूसरा मूर्ख का मूर्ख ही रह जाता है ।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतःपीड़य—
निपबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपिपर्यटन्शशविषाण मासादये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ४ ॥

प्रयत्न करने पर बालु से भी तेल निकल सकता है, प्यासे मनुष्य को मृगतृष्णिका में जल मिल सकता है, घूमता घूमता कभी मनुष्य खरहे की सींग भी पा सकता है, पर मूर्ख मनुष्य समझाया नहीं जा सकता ।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रांकुरा-
त्समुद्रमपिसंतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-
न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

मगर के मुंह से भी बलपूर्वक मणि निकाला जा सकता है, लहरियों वाला समुद्र भी पार किया जा सकता है, क्रुद्ध सांप भी फूल के समान माथे पर रखा जा सकता है, पर मूर्ख मनुष्य समझाया नहीं जा सकता ।

मूर्खो हि जल्पतां पुंसां श्रुत्वावाचः शुभाशुभाः ।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव शूकरः ॥ ६ ॥

मूर्ख मनुष्य लोगों की अच्छी बुरी बातें सुनता है, पर अच्छी बातें छोड़ देता है और बुरी बातें ले लेता है, जिस प्रकार सूअर सब चीज़ों को छोड़ कर विष्ठा ही लेता है ।

उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शांतये ।
पयःपानं भुजंगानां केवलं विषवर्धनं ॥ ७ ॥

उपदेश से मूर्ख मनुष्य क्रुद्ध होते हैं प्रसन्न नहीं होते
प को दूध पिलाने से उसका विषही बढ़ता है ।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रंजयति ॥ ८ ॥

जो कुछ नहीं जानता, वह समझाया जा सकता है, औ
बहुत कुछ जानता है वह तो आसानी से समझाया ज
कता है; पर जो मनुष्य थोड़ा जानता है उसको ब्रह्मा भं
ीं समझा सकते ।

व्यालं बालमृणालतंतुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृंभते-
छेत्तुं वज्रमणीन् शिरीषकुसुम प्रांतेन सन्नह्यते ।
माधुर्यं मधुबिंदुना रचयितुं क्षारांबुधेरीहते-
नेतुं वांछति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यंदिभिः ॥ ९ ॥

वह मनुष्य हाथी को मृणाल सूत्र से बांधने का प्रयत्न
करता है, हीरे को शिरीष के फूल से छेदना चाहता है, और
मधु के बिन्दु डाल कर क्षार समुद्र को मीठा बनाना चाहता
है, जो मनुष्य अमृतस्यन्दी वचनों से खलों को सज्जनों के
रास्ते में ले जाना चाहता है ।

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदांधः समभवं-
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदव लिप्तं मम मनः ।
यदा किंचित्किंचिद्बुधजनसकाशादवगतं-
तदा मूर्खोऽस्मिति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥ १० ॥

जिस समय मैं थोड़ा जानता था उस समय मैंने अपने को सर्वज्ञ समझा और इससे मुझे बड़ा अहंकार हो गया। पर सज्जनों के साथ से जब मुझे थोड़ी थोड़ी समझ हुई, तब मैंने समझा कि मैं मूर्ख हूं और मेरा सब अहंकार दूर हो गया।

> कृमिकुलचलितं लालाक्लिन्नं विगंधिजुगुप्सितं-
> निरुपमरसं प्रीत्याखादन्नराऽस्थिनिर्भयं ।
> सुरपतिमपिश्वापार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते-
> नहि गणयति क्षुद्रोजंतुः परिग्रहः फल्गुतां ॥ ११ ॥

कुत्ता बिना मांस का एक हड्डी का टुकड़ा जब पा लेता है, उसमें कीड़े पड़े रहते हैं लार से सना रहता है बहुत बुरी गन्ध उससे निकलती है वह उस टुकड़े को बड़ा ही सरस और स्वाद समझता है तथा बड़े प्रेम से खाता है उस समय इन्द्र भी उसके पास आ जाय तो वह किसी प्रकार का भय नहीं करता। छोटा आदमी यह बात नहीं समझता कि उस की बात में कितना सार है।

> शिरः शार्वं स्वर्गात् पशुपति शिरस्तः क्षितिधरं
> महीध्रादुत्तुंगादवनिमवनेश्चाऽपि जलधिम् ।
> अधोऽधो गंगेयं पदमुपगता स्तोकमधुना-
> विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १२ ॥

गङ्गा स्वर्ग से गिर कर शिव के मस्तक पर आयी, शिव के मस्तक से पर्वत पर, पर्वत से पृथिवी पर और पृथिवी से वह समुद्र में गयी, इस प्रकार गङ्गा ऊपर से गिरती गिरती बहुत नीचे चली गयी। विवेक-भ्रष्टों की यही गति होती है।

> शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्छत्रेण सूर्यातपो-
> मातंगो निशितांकुशेन समदो दंडेन गोगर्दभौ । ...

व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं-
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधं ॥ १३ ॥

जल के द्वारा अग्नि शान्त किया जा सकता है, छत्र से सूर्य-ताप से रक्षा की जा सकती है, हाथी तीखे अंकुश से वश में किया जा सकता है, गौ और गधे दण्डे से वश किये जा सकते हैं, रोग अनेक प्रकार की दवाइयों से दूर किया जा सकता है मंत्रों के द्वारा विष भी उतारा जा सकता इस प्रकार सब का औषध है पर शास्त्र-हीन मूर्ख का भी नहीं है।

साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।
तृणं न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥ १४ ॥

जो मनुष्य साहित्य-सङ्गीत से हीन है उसे पूंछ और सींग रहित साक्षात् पशु समझना चाहिए। यह तृण बिना खाये भी जीता है, यह पशुओं का भाग्य है।

वरं पर्वत दुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजन संपर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥१५॥

पर्वत और जंगलों में मूर्खों के साथ भ्रमण करना अच्छा है। पर इन्द्र-भवन में भी मूर्ख का साथ होना अच्छा नहीं।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मर्त्युलोके भुविभारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥१६॥

जिन्हें न विद्या है, न तपस्या, न दान, न ज्ञान, न शील, न गुण और न धर्म है, वे पृथ्वी के भार हैं और मनुष्य शरीर धारी मृग की तरह वे इस मर्त्य लोक में घूम रहे हैं।

मूर्खोऽपि मूर्खं दृष्ट्वा च चंदनादपि शीतलः।
यदि पश्यति विद्वांसं मन्यते पितृघातकम् ॥१७॥

मूर्ख मूर्ख को देख कर बहुत प्रसन्न होता है वह चन्दन से भी अधिक शीतल हो जाता है। पर जब वह विद्वान् को देखता है तब वह उसे अपना पितृघाती समझता है।

गुणिगणगणनाऽऽरंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य।
तेनाऽम्बा यदि सुतिनी वद वंध्या कीदृशी भवति ॥१८॥

गुणियों की गणना के समय जिसके नाम के लिए आदर से कलम न उठे ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने से यदि माता पुत्रवती हो सकती है तो कहो वन्ध्या कैसी होती है।

अंतःसारविहीनस्य सहायः किं करिष्यति।
मलयेऽपिस्थितो वेणुर्वेणुरेव न चंदनः ॥१९॥

जो स्वयं दुर्बल है, जिसके भीतर कुछ नहीं है उसको सहायक मिलने का क्या फल हो सकता है, मलय—पर्वत पर का बांस बांस ही रहता है वह चन्दन नहीं हो जाता।

मुक्ताफलैः किं मृगपक्षिणां च मिष्टान्नपानं किमु गर्दभानाम्।
अंधस्य दीपो बधिरस्य गीतं मूर्खस्य किं धर्मकथाप्रसंगः ॥२०॥

पशु-पक्षियों को मोतियों से क्या लाभ, गधे के लिए मिठाई निरर्थक है, अंधे के लिए दीपक, बहरे के लिए गीत और मूर्ख के लिए धर्म-कथा ये सब व्यर्थ हैं।

ये संतस्सुविवादिनः परयशःशल्येन शूलाऽऽकुलाः
कुर्वंतिस्वगुणस्तवेन गुणिनां यत्नाद्गुणाच्छादनं।
तेषां रोषकषायितोद्धतदृशां क्रोधोष्मनिःश्वासिनां-
दीप्ता रत्नशिखेव कृष्णफणिनां विद्या जनोद्वेजिनी ॥२१॥

जो सभा में विवाद करते हैं दूसरों के यश से बहुत व्याकुल होते हैं अपनी प्रशंसा करते हैं अपने गुणों का वर्णन करते और दूसरों के गुणों को छिपाते हैं, जिनकी आँखें क्रोध लाल रहती है और गर्म सांस निकला करती है। वे मनुष्यों की विद्या कृष्ण सर्पमणि के समान मनुष्यों व्यथित करने लगी है।

ग्रीवास्तंभभृतः परोन्नतिक्रयामात्रे शिरःशूलिनः
सोद्वेगभ्रमणप्रलापविपुलक्षोभामिभूतस्थितेः।
अंतर्द्वेषविषप्रवेशविषमक्रोधेन निश्वासिनः-
कष्टा नूनमपंडितस्यविकृतिर्भीमज्वरारंभभूः ॥२२॥

जिनका गला स्तम्भित हो गया है, वह हिलडुल नहीं सकता, अन्य मनुष्यों की उन्नति की बात सुनते ही जिनके सिर में शूल उत्पन्न हो जाता है, वे उद्विग्न होकर भ्रमण करने लगते हैं बकने लगते हैं और बहुत ही क्षुभित होते हैं, द्वेष विष के अन्तः प्रवेश होने के कारण विषम क्रोध से वे सांस लिया करते हैं मूर्खों की बुरी दशा है, उनके ये विकार भयानक ज्वर के कारण हैं।

मूर्खत्वं सुलभं भजस्व कुमते मूर्खस्य चाष्टौ गुणा-
निश्चिंतो बहुभोजनोऽतिमुखरो रात्रिं दिवास्वप्नभाक्।
कार्याकार्यविचारणांधवधिरोमानापमाने समः
प्रायेणामयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥२३॥

मूर्ख होना आसान है इस लिए मूर्ख होने का यत्न करो, उसके आठ गुण होते हैं। निश्चिन्तता, बहु भोजन, अधिक बोलना, रात दिन सोना, कर्तव्य अकर्तव्य के विचार में अन्धा वधिर होना, मान और अपमान को समान समझना,

प्रायः नीरोग रहना, पुष्ट शरीर होना। इस प्रकार मूर्ख बड़े सुख से जीता है।

> मूर्खं चिन्हानि षडितिगर्वो दुर्वचनं मुखे ।
> विरोधी विषवादी च कृत्याऽकृत्यं न मन्यते ॥२४॥

मूर्ख के छः चिन्ह हैं, अहंकार, दुर्वचन बोलना, विरोध रखना विष के समान बोलना और कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान न रखना।

> अरण्य रुदितं कृतं शवशरीरमुद्वर्त्तितं
> स्थलेऽब्जमवरोपितं सुचिरमूषरे वर्षितम् ।
> श्वपुच्छमवनामितं बधिरकर्णजापः कृतो
> धृतोऽन्धमुखदर्पणो यदबुधोजन सेवितः ॥२५॥

जो मैंने मूर्ख मनुष्य की सेवा की वह निष्फल हुई। वह अरण्यरोदन के समान हुई, मुर्दे के शरीर में उबटन लगाने के समान हुई। ज़मीन में कमल रोपने के समान हुई। ऊसर में वृष्टि के समान निरर्थक हुई, वैसी सेवा करके मैंने कुत्ते की पूंछ सीधी करने का प्रयत्न किया, बहरे से बातें की और अन्धे के सामने दर्पण रखा।

> निर्गुण इति मूढ इति च द्वावेकार्थाभिधायिनौ विद्धि ।
> पश्य धनुर्गुणशून्यं निर्जीवं वदिह धर्मिति ॥२६॥

निर्गुण और मूढ़ इन दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है। देखो गुणहीन धनुष निर्जीव हो जाता है। धनुष की रस्सी को भी गुण कहते हैं।

> वैरीभीश्वपदिवचवरणश्वेनागवरफला-
> शारीहारकपोरकपुरपदारोचाय मूर्खं नमः ।

पैनानभ्रकुश्रयोपिजगतः कुर्वंति सर्वज्ञता,
भूतिं ये न विना तु हार पदवीं संतोपि कष्टं गताः ॥२७॥

पैसों, अच्छे रेशमी वस्त्र, श्वेत छत्र, हार, घोड़ा आदि आडम्बरों को नमस्कार । इनके द्वारा मूर्ख मनुष्य भी संसार में अपने को सर्वज्ञ बना लेता है, और इनके बिना विद्वान् सज्जन भी बुरी दशा भोगते हैं।

कर्कश तर्कविचार व्यग्रः किं वेत्ति काव्य हृदयानि।
ग्राम्य इव कृषिविलग्नश्चंचलनयनावचोरहस्यानि ॥२८॥

कठोर तर्कशास्त्र के विचार में जो व्यग्र हैं वे काव्य-रहस्य क्या समझ सकेंगे ? जिस प्रकार खेती करने वाला-ग्रामीण चंचलाक्षी के वचनों का तत्त्व नहीं समझ सकता।

दरिद्र-निंदा

उत्थाय हृदि लीयंते दरिद्राणां मनोरथाः ।
बालवैधव्यदग्धानां कुलस्त्रीणां कुचाविव ॥ १ ॥

बालविधवा कुलस्त्रियों के स्तनों के समान दरिद्रों के मनोरथ हृदय ही में उठते हैं और वहीं विलीन हो जाते हैं।

हे दारिद्रय नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं त्वत्प्रसादतः ।
पश्याम्यहं जगत्सर्वं न मां पश्यति कश्चन ॥ २ ॥

हे दारिद्र, तुमको नमस्कार, तुम्हारी कृपा से मैं सिद्ध हो गया हूँ। मैं तो समस्त संसार को देखता हूँ पर मुझे कोई नहीं देखता।

इह लोकेपि धनिनां परोपि स्वजनायते।
स्वजनोऽपि दरिद्राणां तत्क्षणाद्दुर्जनायते ॥ ३ ॥

इस लोक में दूसरे भी धनियों के स्वजन बन जाते हैं, और दरिद्रों के स्वजन भी दुर्जन हो जाते हैं।

रोगी चिरप्रवासी परान्नभोजी परावसथशायी।
यज्जीवति तन्मरणं यन्मरणं सोऽस्य विश्रामः ॥ ४ ॥

रोगी, सदा प्रवास में रहने वाला, दूसरे का अन्न खाने वाला, दूसरे के स्थान में रहने वाला जो जीता है उसका जीवन मरण है और उसका मरण विश्राम है।

परीक्ष्य सत्कुलं विद्या शीलं शौर्यं सुरूपताम्।
विधिर्ददाति निपुणः कन्यामिव दरिद्रताम् ॥ ५ ॥

उत्तम कुल, विद्या, शील, शूरता, सुन्दरता आदि देख कर कन्या के समान ब्रह्मा दरिद्रता प्रदान करता है। अर्थात् गुणवान् दरिद्र होते हैं।

दारिद्र्यानल संतापः शांतः संतोषवारिणा।
याचकाशाविघातांतर्दाहः केनोपशाम्यति ॥ ६ ॥

दरिद्रता की अग्नि का सन्ताप सन्तोष के जल से शान्त हो गया, पर याचकों की आशा नष्ट करने से जो दाह उत्पन्न हुआ है वह कैसे शान्त होगा।

अर्था न संति न च मुंचति मां दुराशा
दानाच्च संकुचति दुर्ललितं मनो मे।
याञ्चा हि लाघवकरी स्ववधे च पापं
प्राणाः स्वयं व्रजत किं प्रविलंबितेन ॥ ७ ॥

धन नहीं है, पर दुराशा मुझे नहीं छोड़ती, दान करने से भी मेरा दुलारा मन सङ्कुचित नहीं होता, मांगने से

इसकी होती है [illegible] करने से [illegible] होता है, हे प्राण! अब तुम स्वर्ग चले आपः विलाप करने से क्या लाभ।

> [illegible]–
> [illegible] ।
> [illegible]–
> [illegible] ॥२९॥

मत रोओ बेटा, कपड़े नहीं हैं इसलिए मत रोओ, तुम्हारे पिता जब आवेंगे और मुझ सोती को नंगा देखेंगे तो वे वस्त्र और गले का हार देंगे। उस स्त्री का पति भी अपनी झोपड़ी के पास आ गया था अपनी स्त्री की ये बातें सुनकर वह बड़ा दुखी हुआ दुःख की सांसें उसने लीं, आंसू से उस का मुंह भीग गया और पुनः वह लौट गया।

> कंथाखण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वाङ्के गृहाणार्भकं
> रिक्तं भूतलमत्र नाथ भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः ।
> दम्पत्योरिति जल्पतोर्निशि यदा चोरः प्रविष्टस्तदा
> लब्धं कर्पटमन्यतस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः ॥२०॥

कंथरी का यह टुकड़ा मुझे दो या बच्चों को तुम्हीं ले लो, यहां की ज़मीन खाली है आप के नीचे पुआल है। रात को स्त्री पुरुष इस तरह की बातें करते थे उसी समय उनके घर में चोर आये। उनकी बातें सुन कर दूसरी जगह से चुरा कर जो वस्त्र वे ले आये थे वह उन पर डाल कर वे चले गये।

> वृद्धोऽन्धः पतिरेष मंचकगतः स्थूणावशेषं गृहं
> कालोऽभ्यर्णजलागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो।

यद्वान्संचिततैलबिंदुघटिका भग्नेति पर्याकुला
दृष्ट्वा गर्भभराकुलां निज वधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति ॥१०॥

मेरा पति बूढ़ा है वह खाट पर पड़ा है, छान में थून भी नहीं है, बरसात के दिन आगये, बच्चे का कुशल सम्वाद भी न मिला, बड़े प्रयत्न से मिट्टी की कुल्हिया में जो तेल मैंने रखा था, वह कुल्हिया फूट गयी, इससे वह वृद्धा बहुत दुःखी हुई, और अपनी बहू का पूर्ण गर्भ देखकर वह रोने लगी।

अंबा तुष्यति न मया न स्नुषया सापि नाम्बया न मया।
अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोयम् ॥११॥

माता मुझ से प्रसन्न नहीं रहती और अपनी बहू से भी प्रसन्न नहीं रहती, और वह बहू न माता से प्रसन्न रहती है और न मुझ से। मैं भी न माता से और न बहू से प्रसन्न रहता हूँ। महाराज! कहिए, इसमें दोष किसका है।

चांडालश्च दरिद्रश्च द्वावेतौ सदृशौ सदा।
चांडालस्य न गृह्णंति दरिद्रो न प्रयच्छति ॥१२॥

चाण्डाल और दरिद्र दोनों बराबर है। चाण्डाल की कोई वस्तु कोई छूता नहीं और दरिद्र किसी को दे नहीं सकता।

नो सेवा विहिता गुरोरपि मनाङ् नो वा कृतं पूजनं–
देवानां विधिवन्न वा शिव शिव स्निग्धादयः सेविताः।
किन्तुत्वच्चरणौ सरस्वति रसादाजन्मनः सेविता
तस्मान्मां विजहाति सा भगवती शंके सपत्नी तव ॥१३॥

देवी सरस्वती, मैंने गुरुओं की सेवा न की, विधि पूर्वक देवताओं की पूजा भी न की, अपने स्वजन संबन्धियों की ओर भी न देखा, बड़े प्रेम से आजन्म तुम्हारे ही चरणों

की मैंने सेवा की । मालूम होता है इसी कारण वे देवी मुझ से रुष्ट हो गयी हैं जो तुम्हारी सौत हैं, अर्थात् लक्ष्मी ।

दारिद्र्य शोचामि भवन्तमेवमस्मच्छरीरे सुहृदित्युषित्वा ।
विपन्न देहे मयि मन्दभाग्ये ममेति चिंता क्व गमिष्यसि त्वम् ॥१४॥

दारिद्र्य, मैं तुम्हारे ही लिए चिन्तित हूँ, आज तक मित्र समझ कर तुमने मेरे यहाँ वास किया, अब मेरे मर जाने पर तुम कहाँ जाओगे ?

दग्धं खांडवमर्जुनेन बलिना दिव्यैर्द्रुमैःसेवितं
दग्धा वायुसुतेन रावणपुरी लंका पुनः स्वर्णभूः ।
दग्धः पंचशरः पिनाकपतिना तेनाऽप्ययुक्तं कृतं-
दारिद्र्यं जनतापकारकमिदं केनाऽपि दग्धं नहि ॥१५॥

बलवान् अर्जुन ने खाण्डव वन को जला दिया, जिसमें अनेक उत्तम वृक्ष थे, वायुपुत्र हनुमान ने सोने की लंका जला दी, महादेव ने कामदेव को जला दिया, इन सब ने बुरा ही किया । पर जिस दरिद्रता से जनता को हानि होती है उसको किसी ने भी न जलाया ।

द्वाविमावंभसि क्षेप्यौ गाढ़ं बद्ध्वा गले शिलाम् ।
धनिनं चाऽप्रदातारं दरिद्रं चाऽतपस्विनम् ॥१६॥

गले में मजबूत पत्थर बाँध कर इन दोनों को जल में डुबा देना चाहिए, जो धनी दाता न हो और जो दरिद्र तपस्वी न हो ।

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वह सखे दारिद्र्य भारं गुरुं
श्रांतस्तावदहं चिरान्मरणजं सेवे त्वदीयं सुखम् ।
इत्युक्तं धनवर्जितेन सहसा गत्वाश्मशाने शवं
दारिद्र्यान्मरणं वरंवरमिति ज्ञात्वैव तूष्णींस्थितम् ॥१७॥

एक दरिद्र ने मुर्दे से जाकर कहा, भाई उठो, एक क्षण के लिए उठो, यह दरिद्रता का भार थोड़ी देर उठाओ, मैं थक गया हूँ । मैं थोड़ी देर मरने का सुख भोगूँ ।

यो गंगामतरत्तथैव यमुनां यो नर्मदां शर्मदां
का वार्ता सरिदंबुलंघनविधौ यश्चार्णवांस्तीर्णवान् ।
सोऽस्माकं चिरमाश्रितोऽपि सहसा दारिद्र्य नामा सखा
त्वद्दानांऽबुसरित्प्रवाहलहरीमग्नो न स ंमाव्यते ॥१८

जिसने गंगा पार किया, यमुना पार किया, और शर्मा (कल्याण देने वाली नर्मदा पार किया, अन्य नदियों को कौन चलावे, जिसने समुद्र भी पार किये, पर दारिद्र्य नाम का हमारा मित्र सदा साथ रहा । अब वह आपके दान-जल के प्रवाह में डूब गया है, दिखायी नहीं पड़ता ।

दारिद्र्यान्मरणाद्वा मरणं संरोचते न दारिद्र्यम् ।
अल्पक्लेशं मरणं दारिद्र्यमनंतकं दुःखम् ॥१९॥

दरिद्रता और मृत्यु इनमें मुझे मृत्यु ही अच्छी लगती है, दरिद्रता नहीं । मृत्यु में थोड़े कष्ट होते हैं और दरिद्रता के कष्टों का ठिकाना नहीं ।

अत्यंत विमुखे दैवे व्यर्थे यत्ने च पौरुषे ।
मनस्विनो दरिद्रस्य वनादन्यत्कुतः सुखम् ॥२०॥

भाग्य प्रतिकूल हो जाय, सब प्रयत्न और सामर्थ्य निष्फल हो जायं, उस समय मनस्वी दरिद्र के लिए वन के अतिरिक्त और कहां सुख हो सकता है ।

दारिद्र्याद्धियमेति ह्रीपरिगतः सत्वात्परिभ्रश्यते
निःसत्वः परिभूयते परिभवान्निर्वेदमापद्यते ।

निर्विण्णः शुचमेति शोकनिहतो बुद्ध्या परित्यज्यते
निर्बुद्धिः क्षयमेत्यहो निधनता: सर्वापदामास्पदम् ॥२१॥

दरिद्रता से लज्जा आती है, लज्जित मनुष्य बलहीन हो जाता है बलहीन का पराजय होता है पराजय से ग्लानि होती है, ग्लानि से शोक होता है, शोक से बुद्धि नष्ट होती जाती है और निर्बुद्धिता से नाश हो जाता है । यह एक दरिद्रता सब विपत्तियों का मूल है ।

अये लाजानुच्चैः पथिवचनमाकर्ण्य गृहिणी
शिशोः कर्णौ यत्नात्सुपिहितवती दीनवदना ।
मयि क्षीणोपाये यदकृत दृशावश्रुशबले
तदन्तःशल्यं मे त्वमिह पुनरुद्धर्तुमुचितः ॥२२॥

रास्ते में किसी ने जोर से " लाया " कहा, गृहिणी ने इस शब्द को सुनकर बड़े यत्न से बच्चे के कान बन्द कर दिये, जिसमें भूखा बच्चा लाया का नाम न सुन सके, नहीं तो वह मांगने लगेगा । मैं निरुपाय था यह जानकर गृहिणी की आंखें भर आयीं, इस समय यह कांटे के समान मेरे हृदय में चुभ रहा है ।

दृष्ट्वैकोनाकरं वीक्ष्य मणिकङ्कणवर्जितम् ।
अतः परं परं दुःखे मणिकं कणवर्जितम् ॥२३॥

मणि जड़ित कङ्कण से शून्य स्त्री का हाथ देख कर मैं बहुत दुःखी हूं । इससे भी अधिक दुःखी माणीक (मिट्टी का बड़ा बर्तन जिसमें अन्न रक्खा जाता है) को खाली देख कर हूं ।

एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो बभाषे ।
न तेन दृष्टं कविना समस्तं दारिद्र्यमेकं गुणकोटिहारि ॥२४॥

अनेक गुणों में एक दोष छिप जाता है, जिस प्रकार चन्द्रमा का कलङ्क छिप जाता है ऐसा कहने वाले उस कवि ने यह बात नहीं जानी है कि एक दरिद्रता का दोष सब गुणों को नष्ट कर देता है।

> रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः संध्ययोर्द्वयोः
> पश्य शीतं मयानीतं जानुभानुकृशानुभिः ॥ २५ ॥

रात में जानु, दिन में भानु (सूर्य) प्रातः और सायं कृशानु (अग्नि) इस प्रकार जानु भानु और कृशानु से मैंने शीत बिता दिया।

> क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव भृशं मंदाऽशया बांधवा
> लिप्ता जर्जर कर्करी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते।
> गेहिन्या त्रुटितोंऽशुकं घटयितुं कृत्वा सकाकु स्मितं-
> कुप्यन्ती प्रतिवेशिलोकगृहिणी सूची यदा याचति ॥ २६ ॥

लड़के भूख से व्याकुल होकर मुर्दे के समान हो गये हैं, बांधव निराश हो गये हैं। घड़े के मुंह पर मकड़ी ने जाला बुन दिया है पर इन बातों को देखकर मुझे दुःख नहीं होता। गृहिणी अपना फटा कपड़ा सीने के लिए पड़ोसिन से सूई मांगती है और वह लाने से हंसकर क्रोध करती है यही हमारे दुःख का प्रधान कारण है।

> दारिद्र्य भोस्त्वं परमं विवेकि गुणाऽधिके पुंसि सदानुरक्तं।
> विद्याविहीने गुणवर्जिते च मुहूर्तमात्रं न रतिं करोषि ॥ २७ ॥

दारिद्र्य! तुम बड़े विवेकी हो। गुणवान् मनुष्यों से ही तुम्हारा अधिक प्रेम रहता है, मूर्ख, निर्गुण मनुष्यों से ही [illegible]

भद्रे वाणि ममाऽऽनने कुरु दयां वर्णानुपूर्व्या स्थिरं
चेतः स्वास्थ्यमुपैहि याहि करुणे प्रज्ञे स्थिरत्वं भज ।
लज्जे तिष्ठ पराङ्मुखी क्षणमहो तृष्णे पुरः स्थीयतां
पापो यावदहं ब्रवीमि धनिनां देहीति दीनं वचः ॥ २८ ॥

भगवती सरस्वती, कृपा करो, सुन्दर सिलसिलेवार वाक्य के रूप में मेरी जिह्वा पर वास करो। चित्तस्वस्थ [illegible] आओ, करुणे चली जाओ, बुद्धि, तुम अचल हो जाओ, लज्जे मुँह खोलो, तृष्णे, तुम आगे आओ, जब तक मैं पापी धनियों के सामने "देहि" यह दीन वचन कहूँ।

अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहाद्यैरुपभुक्तपौत्रकः ।
अलंकरिष्यत्यथ पुत्र पौत्रकान् मयाऽधुना पुण्यवतेव धार्यते ॥ २९ ॥

यह वस्त्र मेरे पिता के शरीर का भूषण रहा है, [illegible] गया था तब पितामह ने इसका उपयोग किया था, अब यह मेरे पुत्र और पौत्रों को अलंकृत करेगा। मैं इसे पुण्य के समान ही रखता हूँ।

त्वमर्थिधनदानशंकया पावकोऽस्य शिखयाहृदिस्थया ।
देव दग्धवसना सरस्वती नास्य [illegible]बहिरेति नग्नया ॥ ३० ॥

हृदय में महाराज को धन देने की चिन्ता अग्निशिखा के समान जल रही है—महाराज, उसी अग्नि में देवी सरस्वती के वस्त्र जल गये हैं इस कारण वह भिखारी मुँह के बाहर नहीं निकलती।

दौर्गत्येन समीरिता हृदयतः कंठं समारोहति
कंठात्स्खलनं कथं कथमपि प्राप्नोति जिह्वाग्रम् ।
तस्मा [illegible] जिह्वाग्रं [illegible]
वाचा प्राण [illegible] देहीति [illegible] ॥ ३१ ॥

दरिद्रता के द्वारा उत्तेजित होकर हृदय से कण्ठ तक वह आयी, कंठ से बड़े बड़े कष्टों से किसी प्रकार वह जिह्वा तक आयी। लज्जारूपी कील से वह जिह्वा में ही जड़ दिया गया। इससे बाहर नहीं निकलता। भले आदमियों के मुँह से प्राण जाने पर भी "दो" और "नहीं" ये दो शब्द नहीं निकलते।

संगनैवहि कश्चिदस्य कुरुते संभाष्यतेनादरा-
न्संप्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया-
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम् ॥ ३२ ॥

कोई इसका साथ नहीं करता, आदरपूर्वक कोई बोलता भी नहीं। उत्सव आदि में धनियों के घर जब यह जाता है तो निरादर से देखा जाता है। इसके पास थोड़े वस्त्र हैं इस कारण धनियों से यह दूर ही रहता है। मैं समझता हूँ कि दरिद्रता छठाँ पाप है।

किं करोमि क्व गच्छामि कमुपैमि दुरात्मना।
दुर्भरेणोदरेणाहं प्राणैरपि विडम्बितः ॥ ३३ ॥

क्या करूं? कहाँ जाऊं? किसके पास जाऊं! इस न भरने वाले दुरात्मा पेट से प्राणों पर आ बनी है।

ख्यातो विश्वोद्धरण विधिना नाथ विश्वंभरस्त्वं-
मन्येमा द्राजठरपिठरी पूरणे कुंठ शक्तिः।
शक्तिस्मेरे विबुध सदसि मेदमा मास्तु लज्जा-
यद्विश्वेभ्योप्यहमिहवहि भारभंगी करिष्ये ॥ ३४ ॥

नाथ, आप विश्व-संसार-का भरण करते हैं इस कारण आप विश्वम्भर कहे जाते हैं। पर मालूम होता है कि हम

लोगों का पेट भरने में आप की भी शक्ति कुण्ठित है। आप देवताओं की सभा में मुझे देख लज्जित न हों, क्योंकि मैं कह दूंगा कि मैं विश्व से बाहर हूं।

राजनीति

राजास्य जगतो वृद्धेर्हेतुर्वृद्धाभिसंमतः ।
नयनानंदजननः शशांक इव वारिधेः ॥ १ ॥

राजा इस संसार के कल्याण का कारण है, यह बात बूढ़े भी मानते हैं। उसे देख कर प्रजा प्रसन्न होती है, जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र प्रसन्न होता है।

धार्मिकं पालनपरं सम्यक्परपुरंजय ।
राजानमभिमन्यंते प्रजापतिमिव प्रजाः ॥ २ ॥

जो राजा धर्मात्मा है, प्रजा का पालन करने वाला है, शत्रुओं के नगर जीतने वाला है प्रजा उसको प्रजापति के समान मानती है।

पर्जन्य इव भूतानामाधारः पृथिवीपतिः ।
विकलेपिहि पर्जन्ये जीव्यते न तु भूपतौ ॥ ३ ॥

राजा मेघ के समान प्राणियों का आधार है मेघ पानी बरसा कर प्राणियों को सुखी करता है और राजा पालन पोषण के द्वारा उसे सुखी करता है। मेघ के टूटने पर भी प्राणी जी सकते हैं पर राजा के टूटने पर उसका जीना सम्भव नहीं।

प्रजां संरक्षति नृपः सा वर्धयति पार्थिवं ।
वर्धनाद्रक्षणं श्रेयस्तन्नाशेऽन्यत्सदप्यसद् ॥ ४ ॥

राजा प्रजा की रक्षा करता है, और प्रजा राजा को बढ़ाती है। बढ़ाने की अपेक्षा रक्षण का अधिक महत्त्व है, क्योंकि रक्षण के विना बढ़ाना रहने पर भी नहीं के समान है।

> आत्मानं प्रथमं राजा विनये नोपपादयेत् ।
> ततोमात्यांस्ततो भृत्यांस्ततः पुत्रांस्ततः प्रजाः ॥ ५ ॥

सब से पहले राजा को स्वयं विनयी बनने का प्रयत्न करना चाहिए, तदनन्तर वह अमात्य को, पुनः नौकरों को उसके पश्चात् अपने पुत्रों को फिर प्रजा को वह विनयी बनाये।

> राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
> लोकास्तदनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ ६ ॥

राजा यदि धर्मात्मा हो तो प्रजा भी धर्मात्मा होती है, राजा पापी हुआ तो प्रजा भी पापी हो जाती है, लोक राजा का ही अनुवर्तन करते हैं। जैसा राजा होता है प्रजा भी वैसी ही होती है।

> नृपाणां च नराणां च क्रमयोस्तुल्यमूर्तिता ।
> आधिक्यं तु क्षमा धैर्यमाज्ञा दानं पराक्रमः ॥ ७ ॥

राजा भी दूसरे मनुष्यों के समान ही होता है। दोनों के हाथ पैर मुंह आदि समान ही होते हैं पर क्षमा, धीरता, आज्ञा देने की शक्ति और पराक्रम ये राजा में अधिक होते हैं।

> सदानुरक्तप्रकृतिः प्रजापालनतत्परः ।
> विनीतात्मा नरपति भूर्यसीं श्रियमश्नुते ॥ ८ ॥

जिस राजा में दीवान सेना आदि का प्रेम रहता है, जो सदा प्रजा का पालन करने में तत्पर रहता है, और जो विनयी होता है वह विशाल लक्ष्मी का अधिकारी होता है।

प्रजां न रञ्जयेद्यस्तु राजा रक्षादिभिर्गुणैः ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकं ॥ ९ ॥

जो राजा रक्षा आदि गुणों के द्वारा प्रजा को प्रसन्न न कर सके उसका राज्य व्यर्थ है। जिस प्रकार बकरी के गले का स्तन निरर्थक होता है।

अजामिव प्रजां हन्याद्यो मोहात्पृथिवीपतिः ।
तस्यैका जायते तृप्तिर्द्वितीयस्य कथंचन ॥ १० ॥

जो राजा अज्ञान के कारण बकरी के समान अपनी प्रजा को मारता है, इससे केवल उसी की तृप्ति होती है, इससे केवल वही प्रसन्न होता है।

प्रजापीडन संतापात्समुद्भूतो हुताशनः ।
राज्ञः कुलंश्रियं प्राणांश्चादग्ध्वाविनिवर्तते ॥ ११ ॥

प्रजापीडन के ताप से जो आग उत्पन्न होती है वह राजा का कुल, लक्ष्मी और प्राणों को जलाकर बुझती है।

यथा बीजांकुरः सूक्ष्मः प्रयत्नेनाभिवर्द्धितः ।
फलप्रदो भवेत्काले तद्वल्लोकाः सुरक्षिताः ॥ १२ ॥

जिस प्रकार एक छोटे बीज की यत्नपूर्वक रक्षा की जाय तो वह समय पाकर फलता फूलता है उसी प्रकार प्रजा की रक्षा की जाय तो वह समय पर फल देती है।

हिरण्यधान्यरत्नानि श्रियां वारण वाजिनः ।
तथान्यदपि यत्किंचित्प्रजाभ्यः स्यान्महीपतेः ॥ १३ ॥

सोना, अन्न, रत्न, स्त्री, हाथी घोड़ा तथा और भी सब चीज़ें राजा को प्रजा से मिलती हैं।

उत्खातान्प्रतिरोपयन्कुसुमितांश्चिन्वंल्लघून्वर्धय
न्नत्युच्चान्नमयन्पृथूंश्चलघयन्विश्लेषयन् संहतान्
क्षुद्रान्कंटकिनोवहिर्नियमयन्स्वारोपितान्पालय-
न्मालाकार इवप्रयोग निपुणो राजा चिरं तिष्ठति ॥ १४ ॥

जो राजा बाग के माली के समान उखड़े हुओं को रोपता है, फूले हुओं से फूल चुनता है, छोटों को बढ़ाता है, बड़े हुओं को नवाता है, बड़े हुओं को छोटा बनाता है मिले हुओं को अलग अलग करता है छोटे छोटे कटीलों (पेड़ या छोटे शत्रु) को बाहर निकालता है अपने रोपे हुओं का पालन करता है, इस प्रकार प्रयोग निपुण राजा बहुत दिनों तक राज्य करता है।

अकृत्वा निजदेशस्य रक्षां यो विजिगीषते।
सनृपः परिधानेन वृत्तमौलिः पुमानिव ॥ १५ ॥

जो राजा अपने देश की रक्षा बिना किये ही दूसरे देशों पर चढ़ाई करता है वह उस मनुष्य के समान है जो धोती को माथे पर लपेट लिये हो। अर्थात् धोती न पहन कर धोती का साफा बांध ले।

विजिगीषुररिर्मित्रं पार्ष्णिग्राहोथ मध्यमः।
उदासीनेतरांतर्धि रित्येषा नृपतेः स्थितिः ॥ १६ ॥

राजा का शत्रु, उसके मित्र, सीमा पर के राजा, अपने और शत्रु के बीच का राजा उदासीन—दूर का राजा, यही राजा की स्थिति है, इन्हीं से उसका सम्बन्ध है।

निर्विशोपि यथा सर्पो फणाटोपैर्भयंकरः ।
तथाडंबरवान् राजा न परैरभिभूयते ॥ १७ ॥

जिस प्रकार विषहीन सर्प फण फैलाकर भयंकर बनता है, लोगों को भयभीत करता है, उसी प्रकार आडंबर रखने वाला राजा शत्रु से पराजित नहीं होता।

पुष्पैरपिनयोद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ।
जये भवति संदेहः प्रधान पुरुषक्षयः ॥ १८ ॥

फूलों के द्वारा युद्ध करना बुरा है, तीखे बाणों के द्वारा युद्ध की तो बात ही अलग है क्योंकि युद्ध में जय का निश्चय नहीं और अच्छे अच्छे वीरों के नाश का भय बना रहता है।

भूमिर्मित्रं हिरण्यंवा विग्रहस्य फलत्रयं ।
नास्त्येकमपि यद्येषां न तु कुर्यात्कथंचन ॥ १९ ॥

भूमि, मित्रता और सोना (धन) ये तीन युद्ध के फल है। जिस युद्ध में इन तीनों में का एक भी न हो, वैसा युद्ध कभी न करे।

साम्नैवहिप्रयोक्तव्यमादौकार्यं विजानता ।
साम्ना सिद्धानिकार्याणि विक्रियां यांति न क्वचित् ॥ २० ॥

साम के द्वारा ही कार्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि साम के द्वारा जो कार्य सिद्ध होते हैं वे नष्ट नहीं होते।

नविश्वसेदमित्रस्य मित्रस्यापि न विश्वसेत् ।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृंतति ॥ २१ ॥

शत्रुओं पर विश्वास न करे और मित्रों पर भी विश्वास न करे। क्योंकि विश्वास से जो भय उत्पन्न होता है वह जड़ मूल से नाश कर देता है।

शपथैः संधितस्यापि न विश्वासं व्रजेद्रिपोः ।
राज्यलोभाद्यतो वृत्रः शक्रेण शपथैर्हतः ॥ २२ ॥

शत्रु शपथ करे तो भी उसका विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि राज्य के लोभ से शपथ के कारण ही इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत् ।
पादलग्नं करस्थेन कंटकेनैव कंटकम् ॥ २३ ॥

किसी शत्रु को उपकार के द्वारा अपने पक्ष में करले, पुनः उसके द्वारा अपने दूसरे शत्रु का नाश करे। जिस प्रकार पैर में लगा एक कांटा हाथ में लिये हुये दूसरे कांटे के द्वारा निकाला जाता है।

नोपेक्षितव्यो विद्वद्भिरामयोरिववशया ।
वन्हिरल्पोपि संवृद्धः कुरुते भस्मसाद्वनम् ॥ २४ ॥

विद्वान् को चाहिए कि वह तिरस्कार की दृष्टि से शत्रु और रोग की उपेक्षा न करे। आग का छोटा टुकड़ा भी बढ़ कर समूचे वन का नाश कर देता है।

कौर्मं संकोचमास्थाय प्रहारानपि मर्षयेत् ।
काले काले च मतिमानुत्तिष्ठेत्कृष्णसर्पवत् ॥२५॥

समय प्रतिकूल होने पर कछुए के समान अपने अङ्गों को छिपाकर राजा शत्रु की मार भी सहले। पुनः समय आने पर बुद्धिमानी के साथ कृष्ण सर्प के समान उठ खड़ा हो।

तस्माद्भयाद्धि भेतव्यं यावद्भयमनागतं ।
आगतं तु भयं दृष्ट्वा प्रहर्तव्यमभीतवत् ॥२६॥

भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक भय सामने न आवे। जब भय सामने आ जाय तो निर्भय हो कर प्रहार करना चाहिये।

परोऽपि हितवान्बन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः ।
अहितो देहजोव्याधि हितमारण्यमौषधं ॥२७॥

दूसरा भी यदि हितकारी हो तो वह मित्र है, और मित्र भी यदि अहितकारी है तो वह शत्रु है। शरीर में उत्पन्न रोग अहित है और जङ्गल में उत्पन्न दवा हित है।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रासं ग्रस्तं परिणमेच्चयत् ।
हितं च परिणामेऽयात्तदर्थं भूतिमिच्छता ॥२८॥

अपना कल्याण चाहने वालों को चाहिए कि वह वही ग्रास उठावे जो निगल जा सके निगलने पर पच जाय और जो अन्त में हितकारी हो। राजा को वही काम हाथ में लेना चाहिए जो वे कर सकें तथा जिसका अन्त उनके लिए कल्याणकारी हो।

मा तात साहसं कार्षीर्विभवैर्गर्वमागतः ।
स्वगात्राण्यपि भाराय भवन्ति हि विपर्यये ॥२९॥

भैया, इस समय तुम्हारे पास धन हुआ है इस कारण साहस मत करो, क्योंकि धन के चले जाने पर अपना शरीर भी भारी हो जाता है, अर्थात् उस समय तुम्हें दूसरों की ज़रूरत होगी।

मा त्वं तात बलेष्विन्धा वाधिष्ठा दुर्बलं जनं ।
यदि दुर्बलदग्धानां कुले किंचिन्नरोहति ॥३०॥

भैया, तुम बलवान् होकर दुर्बलों को दुःख मत दो, क्योंकि दुर्बलों के द्वारा जलाये हुओं के कुल में कुछ भी नहीं होता ।

यानि मिथ्याभिभूतानां पतंत्यश्रूणि रोदतां ।
तानि संतापकान्घ्नंति सपुत्रपशुबांधवान् ॥३१॥

विना कारण सताये हुओं के रोने से जो आंसू गिरते हैं वे आंसू सताने वाले को पुत्र पशु तथा बन्धुओं के समेत मार डालते हैं ।

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृंतादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्रं पतंति ते ॥३२॥

धृतराष्ट्र, जो ब्राह्मणों के संबन्ध में वीरता दिखाते हैं, स्त्रियों, अपनी जाति वालों तथा गौओं के प्रति जो वीरता दिखाते हैं, वे पके फल के समान अपने गुच्छे से गिर जाते हैं ।

दैव ब्रह्मस्व पुष्टानि सैन्यानि पृथिवीपतेः ।
युद्धकाले विशीर्यंते सैकते सेतवो यथा ॥३३॥

जो सेना देवता और ब्राह्मण के बल से एकत्रित की जाती है अथवा जो स्वयं एकत्र होती है वह युद्ध के समय फिसल जाती है, जिस प्रकार बालू पर का बांध फिसल जाता है ।

प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतं महत् ।
एवं विद्वानविद्वांश्च ब्राह्मणो दैवतं परं ॥३४॥

अग्नि का संस्कार किया गया हो या न किया गया हो, पर अग्नि महान् देव है, इसी तरह विद्वान् हो या अविद्वान् हो, ब्राह्मण महान् देव है ।

अदैवं दैवतं कुर्युर्दैवतं चाप्यदैवतं ।
ब्राह्मणा लोकपालांश्च सृजेयुरतिकोपिताः ॥३५॥

क्रोध करने पर ब्राह्मण देवता को अदेवता और अदेवता को देवता बना देते हैं, नये लोकपालों की भी वे सृष्टि करते हैं।

युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ।
तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपाहि ये द्विजाः ॥३६॥

जिस समय जो धर्म हो और उस धर्म के पालने वाले जो ब्राह्मण हों उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि समय का प्रभाव उन पर भी पड़ता है। ये भी समय के अनुरूप ही होते हैं।

आक्रम्य ब्राह्मणैर्भुक्तं परिक्षीणैश्च बांधवैः ।
गोभिश्च नृपशार्दूल राजसूयादिशिष्यते ॥३७॥

ब्राह्मण यदि ज़बरदस्ती भी खा जायं, बांधवों के पालन पोषण करने के कारण जो नष्ट हो गया, जो गौ खा लें, तो इनका राजसूय यज्ञ से बढ़कर पुण्य होता है।

गतश्रीर्गणकान्द्वेष्टि गतायुश्च चिकित्सकान् ।
गतश्रीश्च गतायुश्च ब्राह्मणान्द्वेष्टि भारत ॥३८॥

जिसकी लक्ष्मी जाने वाली होती है वह ज्योतिषियों से द्वेष करता है, जिसकी आयु थोड़ी रह गयी है वह वैद्यों से द्वेष करता है, और जिसकी लक्ष्मी तथा आयु जाने वाली होती है वही ब्राह्मणों से द्वेष करता है।

कुराकुराः[illegible] विशारे[illegible] ।
[illegible] ॥३९॥

जब बुद्धि विपर्यय हो जाती है, जब सब बातें विपरीत दिखायी पड़ने लगती हैं, तब अन्याय भी न्याय के समान मालूम पड़ता है और वह मन से दूर भी नहीं होता।

न कालः खड्गमुद्यम्य शिरः कृतति कस्यचित्।
कालस्य बलमेतावद्विपरीतार्थदर्शनं ॥४०॥

काल तलवार उठाकर किसी का सिर नहीं काटता, काल का बल केवल इतना ही है कि मनुष्य उलटा समझने लग जाय।

जानन्नपिजनो दैवात्प्रकरोति विगर्हितं।
न कर्म गर्हितं लोके कस्यचिद्रोचतेकृतं ॥४१॥

मनुष्य जानता भी है पर वह निन्दित काम करता है, निन्दित काम संसार में किसी को भी प्रिय नहीं है।

मा तात संपदामग्र मा रूढोस्मीतिविश्वसीः।
दूरारोह परिभ्रंश विनिपातोति दारुणः ॥४२॥

भाई, मैं बहुत अधिक धनी हो गया हूं इस बात पर विश्वास मत करो, क्योंकि जो बहुत ऊंचा चढ़ता है उसका गिरना भी बड़ा ही भयानक होता है।

कितवा यं प्रशंसंति यं प्रशंसंति चारणाः।
यं प्रशंसंति बंधक्यः स पार्थ पुरुषाधमः ॥४३॥

धूर्त जिसकी प्रशंसा करें, चारण जिसकी प्रशंसा करें और दुराचारिणी स्त्रियां जिसकी प्रशंसा करे उसे नीच मनुष्य समझना चाहिए।

राजानो यं प्रशंसंति यं प्रशंसंति वै द्विजाः।
साधवो यं प्रशंसंति स पार्थ पुरुषोत्तमः ॥४४॥

राजा जिसकी प्रशंसा करे, ब्राह्मण जिसकी प्रशंसा करे और सज्जन जिसकी प्रशंसा करें, वह श्रेष्ठ पुरुष है।

प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यंति संहताः।
गृहीतहस्तछत्रस्य वारिधारा इवारयः ॥४५॥

जिसने बुद्धि के द्वारा अपने शरीर की रक्षा कर ली है, उसका दलवद्ध होकर भी कोई शत्रु क्या करेगा, जिसके हाथ में छाता है उसका वृष्टि क्या करती है।

बहूनामप्यसाराणां समुदायो हि दारुणः।
तस्माद्भृत्याः प्रकर्तव्यास्तेहि सर्वं क्रियाक्षमाः ॥४६॥

अनेक निर्बलों का समुदाय भी बड़ा भयानक होता है। राजा को वैसे नौकर रखने चाहिए जो सब काम कर सकें।

तृणैरावेष्यते रज्जुस्तया नागोहि बध्यते।
एवं ज्ञात्वा नरेंद्रेण भृत्या कार्या विचक्षणाः ॥४७॥

तिनकों से रस्सी बनायी जाती है जिससे हाथी भी बांध लिया जाता है यह समझकर राजा को नौकर रखने चाहिए।

ताड़ितोपि दुरुक्तोपि दंडितोपि महीभुजा।
न चिंतयति यः पापं स भृत्योर्हो महीभुजां ॥४८॥

राजा मारे गाली दें दण्ड दें फिर भी जो उनके विषय में बुरी बातें न सोचे, उनके अपकार करने का विचार न करे, वही राजा का भृत्य होने के योग्य है।

योनाहूतः समभ्येति द्वारे तिष्ठति सर्वदा।
पृष्टः सत्यं मितं ब्रू ते स भृत्योर्हमहीभुजां ॥४९॥

जो बिना बुलाये आवे, और सदा द्वार पर खड़ा रहे, पूछने पर सत्य और थोड़ा बोले, वही मनुष्य राजा के भृत्य होने के योग्य है।

> आलस्यं मुखरं क्रूरं स्तब्धं व्यसनिनं शठं।
> असंतुष्टमभक्तं च त्यजेद्भृत्यं नराधिपः ॥ ५० ॥

जो आलसी है बकवादी है, क्रूर है, जड़ है, व्यसनी है शठ है, असन्तुष्ट है, जो राजा का भक्त नहीं है, ऐसे भृत्य का राजा त्याग कर दे।

> रिक्ताः कर्माणि पटवस्तृप्तास्त्वलसामर्थ्यन्ति भृत्या ये।
> तेषां जलौकसामिव पूर्णानारिक्तताकार्या ॥ ५१ ॥

जो जब तक खाली रहते हैं तब तक बड़े प्रेम से काम करते हैं, पर पूर्ण होने पर आलसी हो जाते हैं, राजा ऐसे भृत्यों की जोंक के समान पूर्णता दूर कर दे, उन्हें खाली कर दे।

> क्रूरं व्यसनिनं लुब्धमप्रगल्भं भयाकुलं।
> मूर्खमन्यायकर्तारं नाधिपत्येन योजयेत् ॥ ५२ ॥

क्रूर, व्यसनी, लोभी, कायर, डरपोंक, मूर्ख, अन्यायकारी मनुष्य के हाथ में अधिकार न दे।

> न योगिभिर्विना राज्यं नास्ति भूपैर्हि केवलैः।
> तस्माद्यमीविधातव्यास्तेषांरक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ५३ ॥

योगियों के बिना केवल राजाओं से ही राज्य नहीं चलता इस कारण बड़े यत्न से योगियों की रक्षा करनी चाहिए।

> वेदवेदांगतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः।
> आशीर्वादपरो नित्यमेव राजपुरोहितः ॥ ५४ ॥

जो वेद वेदांग के तत्त्वों को जाने जप होम [illegible] करे, प्रतिदिन राजा की कल्याण-कामना करे, वही [illegible] पुरोहित होने के योग्य है ।

> क्रमागतो हितमतिः सर्वभावपरीक्षकः ।
> धीरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥ ५५ ॥

वंश-परम्परा से जो आया हो, हित चाहने वाला हो, लोगों के भाव परखने वाला हो, धीर हो, जैसा सुने वैसा कहने वाला हो ऐसे मनुष्य को दूत बनाना चाहिए ।

> प्रवीणो वाक्पटुर्धीमान् स्वामिभक्तश्च निःस्पृहः ।
> अनुद्धतः सत्यवादी च एष शासनलेखकः ॥ ५६ ॥

प्रवीण, वक्ता, बुद्धिमान, स्वामिभक्त, अलोभी और सत्यवादी, ऐसा मनुष्य राजा का शासनलेखक (मीरमुंशी) होना चाहिए ।

> इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः ।
> अप्रमत्तः स्वामिभक्तः प्रतीहारः स उच्यते ॥ ५७ ॥

इङ्गित और आकार समझने वाला, बलवान, देखने में सुन्दर, प्रमाद न करने वाला और स्वामिभक्त मनुष्य प्रतीहार कहा जाता है ।

> मेधावी वाक्पटुर्धीमान् [illegible] जितेन्द्रियः ।
> सर्वशास्त्रसमालोकी [illegible] लेखकः स्मृतः ॥ ५८ ॥

मेधावी, वक्ता, बुद्धिमान [illegible] करने वाला जितेन्द्रिय और सब शास्त्रों का जानने वाला हो वह लेखक कहा जाता है ।

शूरोर्थशास्त्रनिपुणः कृतशास्त्र कर्मा
संग्रामकेलिचतुरश्चतुरंगयुक्तः।
भर्तुर्निदेशवशगोभिमतश्चतंगे,
सेनापतिर्नरपतेर्विजयागमाय ॥ ५९ ॥

धीर, अर्थशास्त्र का ज्ञाता, शस्त्र प्रयोग में चतुर, स्वामी की आज्ञा मानने वाला और राज्य में प्रतिष्ठा रखने वाला सेनापति राजा को विजयी बनाता है। अर्थात् सेनापति में उक्त गुण होने चाहिए।

काणाः कुब्जाश्च षंढाश्च तथा वृद्धाश्च पंगवः।
एतेऽन्तःपुरे नित्यं नियोक्तव्याः क्षमाभृता ॥ ६० ॥

काना, कुबड़ा, नपुंसक बूढ़े और पंगु रनिवास में मुक़र्रर करने चाहिए, क्योंकि ये लोग क्षमाशील होते हैं।

सिद्धान्नमिव राजेंद्र सर्वसाधारणास्त्रियः।
परोक्षे च समक्षे च रक्षितव्याः प्रयत्नतः ॥ ६१ ॥

पकाये हुए अन्न के समान स्त्रियाँ सब के उपयोग में आ सकती हैं। इस कारण परोक्ष या प्रत्यक्ष सर्वदा इनकी रक्षा करनी चाहिए।

सूक्ष्मेभ्योपिप्रसंगेभ्योरक्ष्यानार्योहि सर्वदा।
द्वयोर्हि कुलयोः शोकमावहेयुररक्षिताः ॥ ६२ ॥

छोटी छोटी बातों से भी स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि बिना रक्षा किये पतिकुल और पितृकुल दोनों को दुःखी बना सकती हैं।

महिष्या हृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ६३ ॥

महारानी को सदा प्रसन्न रहना चाहिए, घर के कामों में प्रवीण होना चाहिए, अपने सब सामान स्वच्छ तथा सुन्दर रखने चाहिए, और हाथ खोल कर व्ययन करना चाहिए ।

> धर्मशास्त्रार्थकुशलाः कुलीनाः सत्यवादिनः ।
> समाः शत्रौ च मित्रे च नृपतेः स्युः सभासदः ॥ १४ ॥

जो धर्मशास्त्र जानते हों, कुलीन हों सत्यवादी हों शत्रु और मित्र दोनों को एक दृष्टि से जो देखें, वे ही राजा के सभासद बनाये जांय ।

> न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते येन वदंति धर्मं ।
> नासौ धर्मो यत्र नैवास्ति सत्यं न तत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धं ॥ १५ ॥

वह सभा नहीं है जहां अनुभवी वृद्ध न हों, वे वृद्ध नहीं हैं जो धर्मानुकूल न बोलें । वह धर्म नहीं है जहां सत्य न हो, और वह सत्य सत्य नहीं है जो कपटहीन न हो ।

> सभायां न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वा समंजसं ।
> अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १६ ॥

सभा में जाय ही नहीं, यदि जाय तो ठीक ठीक कहे, क्योंकि सभा में जाकर बिना बोले या उलटा बोले मनुष्य पापमार्गी होता है ।

> तस्मात्सभ्यः सभां गत्वा रागद्वेषविवर्जितः ।
> वचस्तथा विधं ब्रूयाद्यथा न नरकं व्रजेत् ॥ १७ ॥

इस कारण सभ्य मनुष्य सभा में जाय, रागद्वेष दूर करके वह ऐसी बात कहे जिससे नरकगामी होना न पड़े ।

माता पिता गुरुर्भ्राता भार्या पुत्रः पुरोहितः ।
न दंड्यो नाम राज्ञोस्ति स्वधर्मे योनुतिष्ठति ॥ ६८ ॥

माता, पिता, गुरु, भाई, स्त्री, पुत्र और पुरोहित ये राजा के, जो अपने धर्म का पालन करते हैं, दण्डनीय नहीं हैं।

अवध्यो ब्राह्मणो बालः स्त्री तपस्वी च रोगवान् ।
क्रियते व्यंगताहुर्पो ततो दोषैर्न लिप्यते ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण, बालक, स्त्री तपस्वी और रोगी, इनसे कोई बड़ा भारी अपराध भी हो जाय तो भी राजा को चाहिए कि वह इनका वध न करे, केवल कोई अङ्ग काट ले इससे उसे पाप नहीं होता।

न तु हन्यान्महीपालो दूतं कस्यां चिदापदि ।
दूतान्हत्वातु नरकमाविशेत्सचिवैः सह ॥ ७० ॥

बड़ी भारी आपत्ति की सम्भावना रहने पर भी राजा दूत को न मारे, दूत का वध करने से राजा अपने दीवानों के साथ नरकगामी होता है।

विशोधयेन्महीपालो मंत्रिशालामशेषतः ।
अयुक्तोनाईतिस्थानुमस्यां मंत्ररहस्यवित् ॥ ७१ ॥

विचार करने के समय राजा मन्त्रिशाला को खूब दुरुस्त करा ले, बिना सावधान हुए वह मन्त्रिशाला में न बैठे।

मंत्र तंत्रेषु प्रीतिर्देशकालोचितस्थितिः ।
परचरात्रिभवेद्भक्तः सोमान्यः पृथिवीपतेः ॥ ७२ ॥

जो मंत्र-तन्त्र में प्रेम रखता है, देशकाल के अनुसार रह सकता है, और जो राजा में प्रेम रखता हो, वह राजा का मान्य हो सकता है।

अंतःसारैरकुटिलैः सुस्निग्धैः सुपरीक्षितैः ।
मंत्रिभिर्धार्यते राज्यं सुस्तम्भैरिव मंदिरं ॥ ७३ ॥

भीतर से बलवान् सीधे स्नेही और खूब परीक्षित मन्त्रियों के द्वारा ही राज्य स्थिर रहता है जिस प्रकार मज़बूत खम्भों पर मकान ठहरा रहता है।

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः ।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने
नृपतिजनपदानां दुर्लभः कार्यकर्ता ॥ ७४ ॥

राजा का हित चाहने वाला मनुष्य प्रजा का शत्रु हो जाता है, प्रजा का हित चाहने वाला राजा का विरागभाजन हो जाता है राजा उसे निकाल देता है । इस प्रकार दोनों ओर के विकट विवाद में ऐसा मनुष्य मिलना बड़ा कठिन है जो राजा और प्रजा दोनों का कल्याण करे।

षट्कर्णो भिद्यते मंत्रश्चतुःकर्णः स्थिरोभवेत् ।
द्विकर्णस्य तु मंत्रस्य ब्रह्माप्यंतं न गच्छति ॥ ७५ ॥

छ कानों में पहुचने पर मंत्र प्रकाशित हो जाता है, चार कानों में वह स्थिर रहता है, कोई तीसरा नहीं जानता, और जो मन्त्र दो ही कानों में रहे, उसका पता ब्रह्मा को भी नहीं लगता।

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमता मुक्ता हन्ति राष्ट्रं सनायकं ॥ ७६ ॥

धनुर्धारी का छोड़ा हुआ बाण एक मनुष्य को मार सकता है या न भी मार सकता है । पर बुद्धिमान् की बुद्धि

का यदि विनियोग किया जाय तो वह समूचे राज्य तथा राज्य के अधिपति का भी नाश कर देती है।

> न तद्रथैर्न नागेन्द्रैर्न हयैर्नच पत्तिभिः ।
> कार्यं संसिद्धिमभ्येति यथा बुध्या प्रसाधितं ॥ ७७ ॥

रथों हाथियों घोड़ों और सैनिकों से भी जो कार्य सिद्ध नहीं होता, वह बुद्धि के द्वारा सिद्ध हो जाता है।

> दुर्योधनः समर्थोपि दुर्मंत्री प्रलयं गतः ।
> राज्यमेकश्चकारोच्चैः सुमंत्री चन्द्रगुप्तकः ॥ ७८ ॥

दुर्योधन समर्थ था, पर बुरे मन्त्री के कारण उसका नाश हो गया। एक चन्द्रगुप्त ने ही राज्य किया जिसका मन्त्री श्रेष्ठ था, योग्य था।

> अशृण्वन्नपिबोद्धव्यं मंत्रिभिः पृथिवीपतिः ।
> यथा स्वदोषनाशाय विदुरेणाम्बिकासुतः ॥ ७९ ॥

राजा न सुने तो भी मन्त्रियों को राज्य की बातें उससे कहनी चाहिए। जिस प्रकार स्वयं दोषमुक्त होनेके लिए विदुर धृतराष्ट्र को समय समय पर समझा दिया करते थे।

> पृष्टो ब्रूते मितं ब्रूते परिणामे सुखावहं ।
> मंत्री चेत्प्रियवक्तास्यात्केवलं स रिपुः स्मृतः ॥ ८० ॥

पूछने पर बोले, थोड़ा बोले और वैसा बोले जो परिणाम में सुखकारी हो। जो मन्त्री केवल प्रियवक्ता हो वह शत्रु है, वह राजा और राज्य का नाश कर देता है।

> सुलभाः पुरुषान् राजन्सततं प्रियवादिनः ।
> अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ताश्रोता च दुर्लभः ॥ ८१॥

महाराज प्रिय बोलने वाले मनुष्यों का घारा नहीं है पर अप्रिय किन्तु हितकारी व त क। बोलने और सुनने वाला दोनों ही दुर्लभ हैं ।

दुर्गाणि राज कार्याणि सजलानि दृढ़ानिच ।
मृण्यमन्नं च तेष्वेव स्थापनीयं प्रयत्नतः ॥ ८२ ॥

राजा को सजल और मज़बूत किला बनवाना चाहिए, और धन अन्न उसी में यत्न पूर्वक रखना चाहिए ।

दुर्गं बहुविधं ज्ञेयं पर्वतस्य जलस्य च ।
प्राकारस्य वनस्यापिभूमेरपि भवेत्क्वचित् ॥ ८३ ॥

किला अनेक प्रकार का होता है, पर्वत का किला, जल का किला, चार दीवारी का किला, वन का किला और कहीं कहीं पर जमीन का भी किला होता है ।

न गजानां सहस्रेण न रथैर्नैव वाजिनां ।
तथा सिध्यंति कार्याणि यथा दुर्गं प्रभावतः ॥ ८४ ॥

हज़ारों हाथियों रथों और घोड़ों से जो कार्य नहीं होता, वह काम किले से हो जाता है ।

विषहीनो यथा नागो मदहीनो यथा गजः ।
सर्वेषां पश्यतां याति दुर्गहीनश्च भूपतिः ॥ ८५ ॥

विषहीन सांप, मदहीन हाथी जिस प्रकार सबके देखते देखते ही अपमानित हो जाते हैं, उसी प्रकार दुर्गहीन राजा भी ।

शतमेकोहि संधत्ते दुर्गस्थोहि धनुर्द्धरः ।
तस्माद्दुर्गं प्रशंसंति नीतिशास्त्रविदोजनाः ॥ ८६ ॥

किले में रहकर एक धनुर्धारी भी सौ वीरों से युद्ध कर सकता है, इसी कारण नीतिशास्त्र जाननेवाले दुर्ग की प्रशंसा करते हैं ।

> एकः शतं योधयते प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
> शतं सहस्राणि तथा सहस्रं लक्षमेव च ॥ ८७ ॥

किले के चार दीवारी पर से एक धनुर्धारी सौ आदमियों को लड़ा सकता है. सौ मनुष्य हज़ार को और हज़ार लाख को लड़ा सकते हैं ।

> त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
> नियोजयेत्तथैवैतांस्त्रिविधेष्वपि कर्मसु ॥ ८८ ॥

उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं, इनको उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के कार्यों में लगावे ।

> तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनं ।
> अर्धराज्यहरं भृत्यं यो न हन्यात्स हन्यते ॥ ८९ ॥

जो धन और पराक्रम में बराबर हो, रहस्य जानता हो, उद्योगी हो और आधे का हिस्सेदार हो, ऐसे को जो नहीं मरवा डालता, वह खुद मारा जाता है ।

> निर्विशेषं यदा राजा समं भृत्येषु तिष्ठति ।
> तत्रोद्यमः समर्थानामुत्साहः परिहीयते ॥ ९० ॥

जो राजा अपने सब भृत्यों को समान देखता है, उसके उद्योगी भृत्यों का उत्साह कम हो जाता है ।

> प्रसादो निष्फलो यस्य यस्य क्रोधो निरर्थकः ।
> न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिवाङ्गनाः ॥ ९१ ॥

जिसकी प्रसन्नता निष्फल हो, जिसका क्रोध निरर्थक हो, वैसे स्वामी को लोग नहीं चाहते, जैसे स्त्रियाँ वृद्ध को पति बनाना नहीं चाहतीं ।

त्यजेत्स्वामिनमत्युग्रं मत्युग्रात्कृपणं त्यजेत् ।
कृपणादविशेषज्ञं तस्माच्च कृतनाशकं ॥९२॥

जो स्वामी बड़ा क्रोधी हो उसका त्याग कर दे, उसकी अपेक्षा भी जो कृपण हो उसका त्याग करे, कृपण की अपेक्षा जो भृत्यों के कार्यों का अन्तर न समझे उसका त्याग करे, उसकी अपेक्षा भी उसका त्याग करे जो भृत्य के कार्यों को भूल जाय ।

अविवेकिनि भूपाले नश्यति गुणिनां गुणाः ।
प्रवासरसिके कांते यथा साध्व्यास्तनोन्नतिः ॥९३॥

जहाँ का राजा अविवेकी रहता है वहां गुणियों के गुण नष्ट हो जाते हैं । जिस प्रकार प्रवासी पति की स्त्री के स्तनों का बढ़ना रुक जाता है ।

किंशुके किं शुकः कुर्यात्फलितेपि बुभिक्षितं ।
अदातरि समृद्धेपि किं कुर्युरुपजीविनः ॥९४॥

शुक भूखा होने पर भी फलित पलाश वृक्ष पर क्या लाभ उठा सकता है ? इसी प्रकार मालिक धनी भी हो पर कृपण हो तो भृत्यों को क्या लाभ हो सकता है ।

सेवया धनमिच्छद्भिः सेवकैः पश्यत्कृतं ।
स्वातन्त्र्यं यच्छरीरस्य मूढैस्तदपि हारितं ॥९५॥

सेवा के द्वारा धन चाहने वाले सेवकों ने क्या किया है ! उसे देखो । मूर्खों ने अपने शरीर की स्वतन्त्रता भी बेच दी ।

वरं वनं फलं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनं।
पुंसां विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम् ॥ ९६ ॥

वन का वास अच्छा, फल भोजन भी अच्छा, भार ढोकर जीना भी अच्छा, अथवा जीवन का भार होना भी अच्छा, पर विवेकहीन पुरुषों की सेवा द्वारा धनार्जन अच्छा नहीं।

जीवंतोपि मृताः पञ्च व्यासेन परिकीर्तिताः।
दरिद्रो व्याधितो मूर्खः प्रवासी नित्यसेवकः ॥ ९७ ॥

व्यासदेव ने इन पाँच मनुष्यों को जीते हुए भी मृत बतलाया है, दरिद्र, रोगी, मूर्ख, प्रवासी और सेवक।

न कश्चिच्चंड कोपानामात्मीयोनाम भूभृतां।
होतारमपिजुह्वंतं स्पृष्टो दहत्येव हुताशनः ॥ ९८ ॥

क्रोधी राजाओं का कोई भी अपना नहीं होता। हवन करनेवाले होता को भी अग्नि जलाता ही है। इसी प्रकार क्रोधी राजा भी अपने सेवक को जला सकता है।

गृध्राकारोपि सेव्यः स्याद्धंसाकारैः सभासदैः।
हंसाकारोपि संत्याज्यो गृध्राकारैः सभासदैः ॥ ९९ ॥

राजा चाहे गीध के आकार का हो और सभासद हंस के आकार के हों, फिर भी वे राजा की सेवा करेंगे ही गे। हंस के आकार का भी मनुष्य यदि निर्धन है तो गीध के आकार वाला भी उसका त्याग कर देगा।

चक्रं सेव्यं नृपः सेव्यो न सेव्यः केवलो नृपः।
पश्य चक्रस्य माहात्म्यं मृत्पिंडः पात्रतांगतः ॥ १०० ॥

राजा के चक्र (नौकर चाकर आदि) की सेवा क
चाहिये, केवल राजा की नहीं। चक्र का बड़ा महत्व है,
चक्र के कारण मृत्पिण्ड पात्र बन गया।

गंतव्या राजसभा द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।
यद्यपि न भवन्त्यर्थास्तथाप्यनर्था विनश्यंति ॥ १०१ ॥

राजसभा में जाना चाहिए, राजसम्मानित मनुष्यों
देखना चाहिए। यद्यपि इनसे कोई फल नहीं होता है,
विपत्ति का नाश अवश्य होता है।

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्थाश्चाफलप्रदाः ।
मध्यभावेन सेव्यंते राजा वह्निर्गुरुः स्त्रियः ॥ १०२ ॥

बहुत पास जाने से नाश हो जाता है, दूर रहने से
फल नहीं होता। इस कारण राजा, अग्नि, गुरू और स्त्री
सेवा मध्य भाव से करनी चाहिए।

आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं
विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा ।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च
यः पार्श्वतो भवति तं परिवेष्टयंति ॥ १०३ ॥

राजा पास वाले मनुष्य पर ही प्रसन्न रहता है, वह चा
मूर्ख हो, अकुलीन हो या अयोग्य हो। प्रायः राजा, स्त्रियाँ
लताएं उसी का आलिंगन करतीं हैं जो उनके पास रहता है

यस्मिन्नेवाधिकं चक्षुरारोपयति पार्थिवः ।
कुलीनो वाकुलीनो वा स श्रियो भाजनं भवेत् ॥ १०४ ॥

राजा जिसकी ही ओर अधिक ध्यान दे, वह कुलीन हो
या अकुलीन वह लक्ष्मी का भाजन हो जाता है।

धवलान्यातपत्राणि वाजिनश्च मनोरमाः ।
सदा मत्ताश्च मातंगाः प्रसन्ने सति भूपतौ ॥ १०५ ॥

राजा जब प्रसन्न हो जाता है तब श्वेत छत्र, सुन्दर घोड़े, और मतवाले हाथी मिलते हैं ।

राजमातरि देव्यां च कुमारे मुख्य मन्त्रिणि ।
पुरोहिते प्रतीहारे सर्व वर्तेत राजवत् ॥ १०६ ॥

राजमाता, महारानी, राजकुमार, प्रधान मंत्री, पुरोहित और प्रतीहार इनका राजा के समान आदर करे ।

यत्राहवेषु वध्यंते सानर्थमपराङ् मुखाः ।
विकटैरायुधैर्याति ते स्वर्गः योगिनो यथा ॥ १०७ ॥

जो युद्ध में विना पीठ दिखाये भयानक अस्त्रों के द्वारा मारा जाता है वह स्वर्ग जाता है, जिस प्रकार योगी लोग स्वर्ग जाते हैं ।

पदानि क्रतु तुल्यानि आहवेष्वनिवर्तिनां ।
राजा सुकृतमादत्ते हतानां विपलायिनां ॥ १०८ ॥

जो लोग युद्ध में नहीं मुड़ते, आगे बढ़ते जाते हैं, उनका एक एक पैर बढ़ना यज्ञ के समान है । जो युद्ध से भाग आते हैं, उनका पुन्य राजा ले लेता है ।

तवाहंवादिनं क्लीबं निर्हेतिं परसंगतिं ।
न हन्याद्विनिवृत्तं च युद्ध प्रेक्षणमागतं ॥ १०९ ॥

इतने प्रकार के मनुष्यों को युद्ध में न मारना चाहिए, जो कहे कि मैं आपकी शरण हूं, जो नपुंसक हो, जो शस्त्रहीन हो, जो युद्ध से लौटा जाता हो और जो युद्ध देखने आया हो ।

राजा के चक्र (नौकर चाकर आदि) की सेवा चाहिये, केवल राजा की नहीं । चक्र का बड़ा महत्व है चक्र के कारण मृत्पिण्ड पात्र बन गया ।

गंतव्या राजसभा द्रष्टव्या राजपूजिता लोकाः ।
यद्यपि न भवन्त्यर्थास्तथाप्यनर्था विनश्यन्ति ॥ १०७ ॥

राजसभा में जाना चाहिए, राजसम्मानित देखना चाहिए । यद्यपि इनसे कोई फल नहीं निपत्ति का नाश अवश्य होता है ।

नृपः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं-
यथेष्टं स्वच्छंदप्रवहति किल मत्तोगज इव ।
ततो मानाध्मातः पतति स यदा शोक गहने
तदामात्ये दोषान्क्षिपति न निजं वेत्य विनयं ॥ ११५ ॥

कामी राजा कोई कार्य नहीं कर सकता, और वह हिताहित भी नहीं समझता, मतवाले हाथी के समान जो चाहता है, वही करता है। अभिमान में फूलकर जब वह बड़ी विपत्ति में फँसता है, तब सारा दोष मन्त्री को दे देता है, पर अपनी बुराइयों को नहीं समझता।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणा मा विपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्य तुल्यो विपाकः ॥ ११६ ॥

अच्छा या बुरा कोई भी कार्य करने के पहले उसके फल का निश्चय कर लेना चाहिए, जल्दी में किये हुए काम विपत्ति के लिए होते हैं, उनसे सदा कष्ट उठाना पड़ता है।

आयाचतुर्थं भागेन व्ययं कर्म प्रवर्तयेत् ।
प्रभूत तैलदीपोऽपि चिरं भद्राणि पश्यति ॥ ११७ ॥

अपने चौथे हिस्से का व्यय करना चाहिए, जिस दीपक में अधिक तेल रहता है वह बहुत देर तक जलता है।

अर्थानामर्जनं कार्यं वर्धनं रक्षणं तथा ।
भक्ष्यमाणो निरादायो सुमेरुरपि हीयते ॥ ११८ ॥

अर्थका अर्जन करना चाहिए, आय के बिना केवल खर्च करने से सुमेरुका भी नाश हो सकता है, वह भी खतम हो सकता है।

द्विजा अपि न गच्छंति यां गतिं नापि योगिनः ।
स्वाम्यर्थं संत्यजन्प्राणांस्तां गतिं याति सेवकः ॥ ११० ॥

ब्राह्मणों को भी जो गति नहीं मिलती, योगियों को भी जो गति नहीं मिलती, सेवक स्वामी के लिए प्राण त्याग कर के उस गति को पाता है।

राजा तुष्टोपि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ।
तेपि संमान मात्रेण प्राणैः प्रत्युपकुर्वते ॥ १११ ॥

राजा प्रसन्न होकर अपने भृत्यों को केवल सम्मानित करता है, और वे भी सम्मानित होने के कारण प्राणों से उस उपकार का प्रत्युपकार करते हैं।

सारासारपरिच्छेत्ता स्वामी भृत्यस्य दुर्लभः ।
अनुकूलः शुचिर्दक्षः प्रभोर्भृत्योपि दुर्लभः ॥ ११२ ॥

यथार्थ और अयथार्थ का ज्ञान रखने वाला स्वामी भृत्य को दुर्लभ है और अनुकूल शुद्ध तथा दक्ष भृत्य भी स्वामी को दुर्लभ है।

पान भक्षास्तथा नार्यो मृगया गीत वादिने ।
एतानि युक्त्या सेवेत प्रसंगो ह्यत्र दोषवान् ॥ ११३ ॥

शराब, भोजन, स्त्रियां, आखेट, गाना बजाना इनका नियमित उपयोग करे, क्योंकि इनमें आसक्ति से हानि होती है।

अतितेजस्विपिनृपः पानासक्तो न साधयत्यर्थान् ।
तृणमपि दग्धुमशक्तो वड़वाग्निः स पिबन्नब्धिं ॥ ११४ ॥

शराबी राजा चाहे बड़ा तेजस्वी हो, पर वह कोई काम सिद्ध नहीं कर सकता। वड़वाग्नि एक तिनके को भी नहीं जला सकता। क्योंकि वह समुद्र पान करता है।

नृपः कामासक्तो गणयति न कार्यं न च हितं-
यथेष्टं स्वच्छंदश्चरति किल मत्तोगज इव ।
ततो मानाध्मातः पतति स यदा शोक गहने
तदामात्ये दोषान्क्षिपति न निजं वेत्य विनयं ॥ ११५ ॥

कामी राजा कोई कार्य नहीं कर सकता, और वह हिताहित भी नहीं समझता, मतवाले हाथी के समान जो चाहता है, वही करता है। अभिमान में फूलकर जब वह बड़ी विपत्ति में फँसता है, तब सारा दोष मन्त्री को दे देता है, पर अपनी बुराइयों को नहीं समझता।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यजातं
परिणतिरवधार्या यत्नतः पंडितेन ।
अतिरभसकृतानां कर्मणा मा विपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्य तुल्यो विपाकः ॥ ११६ ॥

अच्छा या बुरा कोई भी कार्य करने के पहले उसके फल का निश्चय कर लेना चाहिए, जल्दी में किये हुए काम विपत्ति के लिए होते हैं, उनसे सदा कष्ट उठाना पड़ता है।

आयाच्चतुर्थं भागेन व्ययं कर्म प्रवर्तयेत् ।
प्रभूत तैलदीपोऽपि चिरं भद्राणि पश्यति ॥ ११७ ॥

अपने चौथे हिस्से का व्यय करना चाहिए, जिस दीपक में अधिक तेल रहता है वह बहुत देर तक जलता है।

अर्थानामर्जनं कार्यं वर्धनं रक्षणं तथा ।
भक्ष्यमाणो निराधारा सुमेरुरपि हीयते ॥ ११८ ॥

अधिक अर्जन करना चाहिए, आय के बिना केवल खर्च करने से सुमेरु का भी नाश हो सकता है, वह भी खतम हो सकता है।

कर्मणा मनसा वाचा चक्षुषा च चतुर्विधं ।
प्रसादयति लोकं यस्तं लोकोनुप्रसीदति ॥ ११९ ॥

कर्म मन वचन और चक्षु इन चारों के द्वारा जो लोक को प्रसन्न कर सकता है उसी पर यह लोक प्रसन्न होता है।

संभोजनं संकथनं संप्रश्नोथसमागमः ।
ज्ञातिभिः सहकार्याणि न विरोधः कदाचन ॥ १२० ॥

जाति वालों के साथ भोजन, वार्तालाप, कुशल प्रश्न, आना जाना करना चाहिए, विरोध कभी नहीं करना चाहिए।

संहतिः श्रेयसी राजन्विगुणेष्वपिबंधुषु ।
तुषेनापि परित्यक्ता न प्ररोहंति तंडुलाः ॥ १२१ ॥

बंधु गुणहीन भी हों पर उनकी संहति अच्छी होती है, चावल जब भूसो को छोड़ देता है तब उसको आंकुर उत्पन्न करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

मृदोः परिभवोनित्यं वैरं तीक्ष्णस्यनित्यशः ।
उत्सृज्य तद्द्वयं तस्मान्मध्यां वृत्तिं समाश्रयेत् ॥ १२२ ॥

कोमल प्रकृति वाले मनुष्य का पराजय होता है, तीखी प्रकृति वाले का लोगों से विरोध हो जाता है। इस कारण इन दोनों का त्याग करके मध्यम वृत्तिका अवलम्बन करना चाहिए।

अबुद्धिमाश्रितानां च क्षंतव्यमपराधिनां ।
नहि सर्वत्र पांडित्यं सुलभं पुरुषे क्वचित् ॥ १२३ ॥

मूर्ख मनुष्य के अपराधों को क्षमा कर देना चाहिये, क्योंकि सब मनुष्यों में पाण्डित्य होना सम्भव नहीं है।

तेजस्विनि क्षमोपेते नातिकर्कशमाचरेत् ।
अति निर्मंथनादग्निश्चंदनादपि जायते ॥ १२४ ॥

क्षमाशील तेजस्वी मनुष्य के प्रति कठार व्यवहार नहीं करना चाहिए, क्योंकि अधिक रगड़ने से चन्दन से भी अग्नि उत्पन्न हो जाती है।

किमप्यसाध्यं महतां सिद्धिमेति लघीयसां ।
प्रदीपो भूमिगेहांतर्ध्वांतंहंति न भानुमान् ॥ १२५ ॥

कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो बड़ों से सिद्ध नहीं होते, किन्तु वे छोटों के द्वारा ही सिद्ध होते हैं। घर के भीतर का अन्धकार दीपक हटाता है, सूर्य नहीं।

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुमप्यागतेच्छायां नोपसंहरतेद्रुमः ॥ १२६ ॥

घर आये हुए शत्रु का भी उचित अतिथि-सत्कार करना चाहिए।[पेड़ उसको भी छाया देते हैं जो उन्हें काटने आता है।

हंतुमेषोऽपसरतिमृगेंद्रः संकुचत्यपि ।
बुद्धिमंतः सहंते च निधाय हृदि किंचन ॥ १२७ ॥

मारने वालों को देखकर भेड़ा भाग जाता है, और सिंह सकुचा जाता है, बुद्धिमान मनुष्य मन में कुछ विचार कर विपत्ति का सामना करते हैं।

व्रजंति ते मूढधियः पराभवं भवंति मायाविषु ये न मायिनः ।
प्रविश्य हि घ्नंति शठास्तथा विधा न संवृतांगा निशिता इवेषवः ॥ १२८ ॥

वे मूर्ख मनुष्य पराजित होते हैं जो मायावियों के प्रति मायावी नहीं होते। ऐसे मनुष्यों के भीतर घुसकर शठ उनका

वध करते हैं, जैसे, नङ्गे वदन वाले मनुष्य का वध तीखे वाण करते हैं।

कोहं कौ देशकालौ समविषम गुणा केरयः के सहायाः
का शक्तिः कोम्युपायः फलमिह चकियत्कीदृशीदैवसंपद।
संपत्तौ को निषधः प्रविदित वचनस्यैत्तरं किंनुमेस्या-
दित्येवं कार्यसिद्धावव्हितमनसोइस्तगाः संपदः स्युः ॥१२९॥

मैं कौन हूँ, कैसा देश काल है, अच्छे बुरे गुण वाले कितने शत्रु हैं और कितने सहायक हैं, मेरी शक्ति क्या है, उपाय क्या है, इसका फल क्या है, भाग्य अनुकूल है कि नहीं, सम्पत्ति में रुकावट क्या है, मेरा रह य प्रकट होने पर मैं क्या उत्तर दूँगा, इस प्रकार कार्य-साधन में जो सावधान रहते हैं सम्पत्ति उनके हाथ में रहती है।

स्वधर्मे राघवश्चैव ह्यधर्मे दशकंठकः।
एवं वदंति लोकाश्च यतो धर्मस्ततो जयः॥ १३०॥

स्वधर्म में रामचन्द्र थे और अधर्म में रावण। लोग कहते हैं कि जिधर धर्म रहता है उधर विजय रहती है। रामचन्द्र विजयी हुए, और रावण पराजित।

धर्मः प्रागेवचिंत्यः सचिवगतमतिः सर्वदा लोकनीयो
प्रच्छाद्यौरोपरोगौ मृदु कठिन रसौ योजनीयौ च काले।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचयनचरैर्मंडलं वीक्ष्यणीय-
मात्मायन्नेनरक्ष्योरण शिरसिपुनः सोपिनापेक्षणीयः ॥१३१॥

धर्म का विचार पहिले करना चाहिए, मन्त्री को अपना मत वतला कर सब राज्यकार्य सदा देखना चाहिए, क्रोध और रोग छिपाना चाहिए, समय पर कोमल या कठिन रस की योजना करनी चाहिए। प्रजासंबन्धी बातों को विश्वसनीय

घरों के द्वारा जानना चाहिए, अपने राज्य का निरीक्षण करना चाहिए, यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए, पर रण में उसकी भी उपेक्षा कर देनी चाहिए, ।

क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये
यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे ।
प्रिया सुनारीष्वधनेषु बंधुषु
धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः ॥ १३२ ॥

यज्ञ, विवाह, दुःख, शत्रुनाश, यश बढ़ाने वाले कार्य, मित्रों का संग्रह, प्रिय स्त्री, गरीब बन्धु इनके लिए धन का खर्च होना बुद्धिमान् नहीं गिनते ।

स्वाम्यमात्यश्च राज्यं च कोशो दुर्गं बलं सुहृत् ।
एतावदुच्यते राज्यं सत्त्व बुद्धिव्यपाश्रयं ॥ १३३ ॥

राजा मन्त्री, राज्य, ख़ज़ाना, क़िला, सेना और मित्र ये ही राज्य कहे जाते हैं। यह राज्य पराक्रम और बुद्धि पर स्थित है।

संधि विग्रह यानानि संस्थितिः संश्रयस्तथा ।
द्वैधीभावश्चभूपानां षड्गुणाः परिकीर्तिताः ॥ १३४ ॥

संधि, विग्रह, आक्रमण, घेरा, शरणागत, भेद ये राजाओं के छः गुण कहे जाते हैं।

उत्साहस्य प्रभोर्मन्त्रस्यैव शक्तित्रयं जगुः ।
आत्मनः सुहृदश्चैवतन्मित्रस्योदयास्त्रयः ॥ १३५ ॥

राजा की तीन शक्तियाँ होती हैं, उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मन्त्र शक्ति । उसका उदय भी तीन प्रकार का होता है, अपना उदय, मित्र का उदय और मित्र के मित्र का उदय ।

वध करते हैं, जैसे, नङ्गे वदन वाले मनुष्य का वध तीसे श
करते हैं।

कोऽहं कौ देशकालौ समविषम गुणा केऽरयः के सहायाः
का शक्तिः कोऽभ्युपायः फलमिहचकियत्कोऽतुशीदैवमंद्य।
संपत्तौ को निबधः प्रविदित वचनस्यैत्तरं किंनुमेस्या-
दित्येवं कार्यसिद्धावहितमनसोऽहस्तगाः संपदः स्युः॥११

मैं कौन हूँ, कैसा देश काल है, अच्छे बुरे गुण वाले कित
शत्रु हैं और कितने सहायक हैं, मेरी शक्ति क्या है, उपाय क
है, इसका फल क्या है, भाग्य अनुकूल है कि नहीं, सम्पत्ति
में रुकावट क्या है, मेरा रह य प्रकट होने पर मैं क्या उत्त
दूँगा, इस प्रकार कार्य-साधन में जो सावधान रहते हैं
सम्पत्ति उनके हाथ में रहती है।

स्वधर्मे राघवश्चैव ह्यधर्मे दशकंठकः।
एवं वदंति लोकाश्च यतो धर्मस्ततो जयः॥ १३० ॥

स्वधर्म में रामचन्द्र थे और अधर्म में रावण। लोग कहते
हैं कि जिधर धर्म रहता है उधर विजय रहती है। रामचन्द्र
विजयी हुए, और रावण पराजित।

धर्मः प्रागेवचिन्त्यः सचिवगतमतिः सर्वदा लोकनीयो
प्रच्छादीरोरागी मृदु कठिन रसौ योजनीयौ च काले।
ज्ञेयं लोकानुवृत्तं वरचयनचरैर्मंडलं वीक्षणीय-
मात्मायन्नेनरक्ष्योरण शिरसिगुनः संशितारेशणीयः॥१३१॥

धर्म का विचार पहिले करना चाहिए, मन्त्री को अपना
मन बतला कर सब राज्यकार्य सदा देखना चाहिए, क्रोध
और रोग छिपाना चाहिए, समय पर कोमल या कठिन रस
की योजना करनी चाहिए। प्रजासंबन्धी बातों को विश्वासी

चरों के द्वारा जानना चाहिए, अपने राज्य का निरीक्षण करना चाहिए, यत्न पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए, पर रण में उसकी भी उपेक्षा कर देनी चाहिए, ।

> क्रतौ विवाहे व्यसने रिपुक्षये
> यशस्करे कर्मणि मित्रसंग्रहे ।
> प्रियासु नारीष्वधनेषु बंधुषु
> धनव्ययस्तेषु न गण्यते बुधैः ॥ १३२ ॥

यज्ञ, विवाह, दुःख, शत्रुनाश, यश बढ़ाने वाले कार्य, मित्रों का संग्रह, प्रिय स्त्री, गरीब बन्धु इनके लिए धन का ख़र्च होना बुद्धिमान् नहीं गिनते ।

> स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रं च कोशो दुर्गं बलं सुहृत् ।
> एतावदुच्यते राज्यं सत्त्व बुद्धिव्यपाश्रयं ॥ १३३ ॥

राजा मन्त्री, राज्य, ख़ज़ाना, क़िला, सेना और मित्र ये ही राज्य कहे जाते हैं । यह राज्य पराक्रम और बुद्धि पर स्थित है ।

> संधि विग्रह यानानि संस्थितिः संश्रयस्तथा ।
> द्वैधीभावश्च भूपानां षड्गुणाः परिकीर्तिताः ॥ १३४ ॥

संधि, विग्रह, आक्रमण, घेरा, शरणागत, भेद ये राजाओं के छः गुण कहे जाते हैं ।

> उत्साहस्य प्रभोर्मन्त्रस्यैव शक्तित्रयं जगुः ।
> आत्मनः सुहृदश्चैव तन्मित्रस्योदयास्त्रयः ॥ १३५ ॥

राजा की तीन शक्तियाँ होती हैं, उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मन्त्र शक्ति । उसका उदय भी तीन प्रकार का होता है, अपना उदय, मित्र का उदय और मित्र के मित्र का उदय ।

साम दानं भेद दंडौ विदुराय चतुष्टयं।
हस्त्यश्वरथपादाताः सेनांगस्याच्चतुष्टयं ॥ १३६ ॥

साम, दान, दण्ड और भेद ये चार राजा के उपाय हैं
हाथी, घोड़ा, रथ और पैदल ये चार सेना के अंग हैं।

दुष्टाविनीत शत्रूणां भयकृद्दुष्पमित्रं।
शस्त्रधारणमौज्वस्यं रक्षो विद्युद्ग्रहापहं ॥ १३७ ॥

शस्त्र धारण करना दुष्ट और अविनयी शत्रु को भयभी
करता है, यह एक मित्र के समान है, बल का द्योतक है तथ
राक्षस, विद्युत् और ग्रह के दोषों को दूर करनेवाला है।

वर्षानिलरजोघर्म हिमादिनां निवारणम्।
राज्यलक्ष्मी गृहं वर्ण्यं चक्षुष्यं छत्रधारणं ॥ १३८ ॥

छत्र धारण करना वर्षा, हवा, धूल, धूप, शीत आदि से
रक्षा करता है. राजा की लक्ष्मी का यह आश्रय है, वर्ण बढ़ाने
वाला और नेत्रों का तेज बढ़ाने वाला है।

चामरं श्रीकरं दिव्यं राज्यशोभाकरं परं।
सिंहासनं सुखैश्वर्यं करं लोकानुरंजनं ॥ १३९ ॥

चामर धारण करने से शोभा होती है, उससे राज्य की
भी शोभा होती है, यह दिव्य है। सिंहासन से सुख और
ऐश्वर्य बढ़ता है और लोग प्रसन्न होते हैं।

सुमनो वर रत्नानां धारणं दिव्य रूपकृत्।
पापलक्ष्मीप्रशमनं चंदनाद्यनुलेपनं ॥ १४० ॥

फूलों की माला और रत्नों की माला धारण करने से
... हो जाता है। चन्दन आदि के अनुलेपन से पाप दूर
... है, शोभा बढ़ती है।

स्नानं नाम मनः प्रसाद जनन दुःस्वप्न विध्वंसने-
शौचस्यायतनं मलापहरणं संवर्धनं तेजसां।
रूपोद्योतकरं रिपुप्रमथनं कायाग्नि संदीपनं-
नारीणां च मनोहरं श्रमहरं स्नाने दशैतेगुणाः ॥ १४१ ॥

स्नान करने से मन प्रसन्न होता है, बुरे स्वप्न नहीं आते वह शुद्धि का स्थान है, मल स्वच्छ करता है, तेज बढ़ाता है, रूप बढ़ाता है, शत्रुओं को नष्ट करने वाला है, शरीर की अग्नि को दीप्त करने वाला है, स्त्रियों के लिए मनोहर है थकावट दूर करने वाला है। स्नान में ये दश गुण हैं।

तांबूलं मुखरोगनाशिनिपुणं संवर्धनं तेजसो
नित्यं जाठरवह्निवृद्धिजननं दुर्गंध दोषापहं।
वक्त्रालंकरणं प्रहर्षजननं विद्वन्नृपाप्रेरणे
कामस्यायतनं समुद्भवकरं लक्ष्म्या सुखस्यास्पदं ॥ १४२ ॥

ताम्बूल (पान) मुंह के रोगों को नष्ट करता है, तेज बढ़ाता है, जठराग्नि को बढ़ाता है और दुर्गन्ध नष्ट करता है मुंह की शोभा बढ़ाता है, मन प्रसन्न करता है, काम वर्द्धक है, लक्ष्मी बढ़ाता है, और सुखी करता है।

देवता तिथि विप्राणां पूजनं पापनाशनं।
लोकद्वयेपि शुभकृद्दानं धर्म यशस्करं ॥ १४३ ॥

देवता अतिथि और ब्राह्मण की पूजा से पाप नष्ट होता हैं, दान से धर्म होता है यश बढ़ता है और इससे दोनों लोकों में कल्याण होता है।

सुत भृत्य सुहृद्वैरिस्वामि सद्गुरुदैवते।
एकैकोत्तरतो वृद्ध्या श्रीकराः पत्रमूर्धिनि ॥ १४४ ॥

पुत्र भृत्य मित्र शत्रु स्वामी गुरु और देवता इनको एक मिर्च भी एक एक ही बढ़ावें। अर्थात् पुत्र को एक ही, भृत्य को दो, मित्र को तीन, शत्रु को चार, स्वामी को पांच गुरु को छः और देवता को सात।

> राजानं प्रथमं विंदेत्ततो भार्यां ततोधनं।
> राजन्यसतिलोकेस्मिन् कुतो भार्या कुतो धनं ॥ १२१ ॥

पहले राजा को प्राप्त करे तब स्त्री और पुनः धन राजा के बिना स्त्री कहां मिलेगी और धन कहाँ मिलेगा।

> यः कुलाऽभिजनाऽऽचारैरतिशुद्धः प्रतापवान्।
> धार्मिको नीतिकुशलः स स्वामी युज्यते भुवि ॥ १२२ ॥

जो कुलीन आचारवान् शुद्ध प्रतापी, धार्मिक और नीति निपुण हो वही संसार में स्वामी हो सकता है।

> कथं नाम न सेव्यंते यत्नतः परमेश्वराः।
> अचिरेणैव ये तुष्टाः पूरयन्ति मनोरथान् ॥ १२३ ॥

परमेश्वरों (धनियों) की क्यों न सेवा की जाय, जो शीघ्र ही प्रसन्न होकर मनोरथ पूर्ण करते हैं।

> सुहृदामुपकार कारणाद् द्विषतामप्यपकार कारणात्।
> नृप संश्रय इष्यतेबुधैर्जठरं को न बिभर्ति केवलं ॥ १२४ ॥

मित्रों के उपकार करने के लिए और शत्रुओं के अपकार करने के लिए विद्वान् राजाश्रय चाहते हैं। केवल पेट तो कोई भी पाल लेता है।

> बालोऽपिनाऽवमंतव्यो मनुष्य इति भूमिपः।
> महती देवताह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥ १२५ ॥

बालक राजा का भी मनुष्य समझ कर तिरस्कार नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह मनुष्य शरीरधारी एक बड़ा देवता है।

यस्य प्रसादे पद्माऽऽस्ते विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयोहि सः ॥ १५० ॥

जिसकी प्रसन्नता में लक्ष्मी रहती हैं, पराक्रम में विजय, और क्रोध में मृत्यु, वह राजा स ॅ तेजोमय है।

यस्मिन्नेवाऽधिकं चक्षुरारोहयति पार्थिवः।
सुतेऽमात्येप्युदासीने सलक्ष्म्याऽऽश्रीयते जनः ॥ १५१ ॥

राजा जिसकी ओर प्रेम से देखें, वह पुत्र हो, मन्त्री हो या उदासीन हो, वही लक्ष्मी का भाजन होता है।

राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां-
तेनाऽद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण।
तस्मिंश्चसम्यगनिशं परितुष्यमाणे
नाना फलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ १५२ ॥

राजन् यदि तुम इस पृथिवी रूपी गौ को दूहना चाहते हो तो बछड़े के समान अपनी प्रजा को पुष्ट करो, उसके अच्छी तरह पुष्ट हो जाने पर यह भूमि कल्पलता के समान अनेक फल देगी।

सत्याऽनृता च परुषा प्रियवादिनी च
हिंस्रा दयालुरपिचार्थपरा वदान्या।
नित्यव्यया प्रचुर नित्यधनाऽऽगमा च
वेश्यांगनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ १५३ ॥

राजा की नीति वेश्या के समान अनेक रूप की होती है। कहीं सत्य, कहीं झूठी, कहीं कठोर, कहीं प्रियवादिनी, कहीं

हिंसक कहीं दयालु, कहीं लोभी, कहीं दानी, और कहीं पु खर्चने वाली और कहीं खूब धन बटोरने वाली।

राजंस्त्वद्दर्शनेनैव गलंति त्रीणितत्क्षणात्।
रिपोः शस्त्रं कवेर्दैन्यं नीवीबंधोमृगीदृशां ॥ १५४ ॥

राजन् आपके दर्शनमात्र से ही तीन चीजें गिर जाती हैं शत्रु का शस्त्र, कवि की दीनता, और स्त्रियों का वस्त्र, अर्थात् आप वीर, दाता और सुन्दर हैं।

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्र-संरक्षणं च।
येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवापाश्रयेण ॥ १५५ ॥

जिसका हुक्म न चला, कीर्ति न हुई, जिसने ब्राह्मणों का पालन न किया, दान न दिया, भोग न किया, मित्रों की रक्षा न की, ये छः गुण जिसके न हुए, उसको राजा का आश्रित होने का क्या लाभ हुआ।

बहुधा राज्यलाभेन यत्तोषस्तव भूपते।
बहुधाराऽऽज्य लाभेन यत्तोषो मम भूपते ॥ १५६ ॥

राजन् अनेक राज्यों के लाभ से जो प्रसन्नता आपको हुई वही प्रसन्नता मोटी धार से घी मिलने के कारण मुझे हुई।

राजसेवा मनुष्याणामसिधाराऽवलेहनं।
पंचाननपरिष्वंगो व्यालीवदनचुंबनं ॥ १५७ ॥

राजा की सेवा मनुष्यों के लिए तलवार की धार चाटना है, सिंह का आलिंगन करना है, और सर्पिणी का चुम्बन करना है।

इच्छेदस्तु सुखं निवस्तु भवनीगच्छेत स राज्ञःसभां
कृशाणों गिरमेव संमदिवदेत्कार्यं विदध्यात्कृती। [illegible]

अक्लेशाद्धनमर्जयेद्धिषतेराश्रयेद्दुर्लभान्-
कुर्वीतोपकृतिं जनस्य जनयेन्कस्यापिनाऽपक्रियां ॥ १५८ ॥

जो सुखपूर्वक राजसभा में रहना चाहे, उसे राज सभा जाना चाहिए, उस विद्वान् को सभा में उत्तम वचन बोलने चाहिए, और अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए, बिना परिश्रम के मालिक से धन कमाय, मित्रों को प्रसन्न करे, लोगों का उपकार करे, पर अपकार किसी का न करे।

अयुक्तं युक्तं वा यदि किमपि भर्त्रा विगदिता-
स्तुयात्तद्वाग्मित्वं अहमपि गुणांस्तस्य विनयात्।
विदग्धैरुद्धुष्टं कथमपि सभायामभिनये-
त्स्वकार्यं संतुष्टे क्षितिभृति निरूद्धयेव कथयेत् ॥ १५९ ॥

मूर्ख स्वामी योग्य अयोग्य जो कुछ कहे उसकी स्तुति करे, उसके मूर्ख-गुण की भी प्रशंसा करे, सभा में अपनी निस्पृहता का अभिनय करे, इस प्रकार जब राजा प्रसन्न हो जाय, तो एकान्त में अपना अभिप्राय कह सुनाये।

सिद्धयन्ति कर्म सुमहान्त्यपि यानि दोषा-
संभावना गुणमवेहि तमीश्वराणां।

जिस शत्रु ने शीघ्रही राज्य पाया है, प्रजा पर उसका दब दबा अभी नहीं बैठा है वह थोड़े ही परिश्रम से उखाड़ा जा सकता है। क्योंकि वह शीघ्र रोपा गया है इसलिए जड़ जमी नहीं है।

सप्रतिबंधं कार्यं प्रभुरधिगंतु सहायवानेव।
दृश्यन्त्यपि न पश्यति दीपेन विना स चक्षुरपि॥ १६२॥

जिस कार्य में विघ्न है वैसे कार्यों की सिद्धि विना सहायक के नहीं होती। आंख वाला भी मनुष्य अन्धकार में विना दीपक की सहायता के नहीं देख सकता।

मित्रं स्वच्छतया रिपुं नयबलैर्लुब्धं धनैरीश्वरं-
कार्येण द्विजमादरेण युवतिं प्रेम्णाशनैर्बांधवान्।
अत्युग्रंस्तुतिभिर्गुरुं प्रणतिभिर्मूर्खं कथाभिर्बुधं-
विद्याभिर्रसिकंरसेन सकलं शीलेन कुर्यादशे॥ १६३॥

शुद्धता से मित्र को, नीति से शत्रु को, लोभी को धन से प्रभु को कार्य से, ब्राह्मण के आदर से, युवती को प्रेम से भोजन से बन्धुओं को, स्तुति से गुरु को, खुशामद से मूर्ख को, विद्या से विद्वान् को, रस से रसिक को और शील से सब को वश करे।